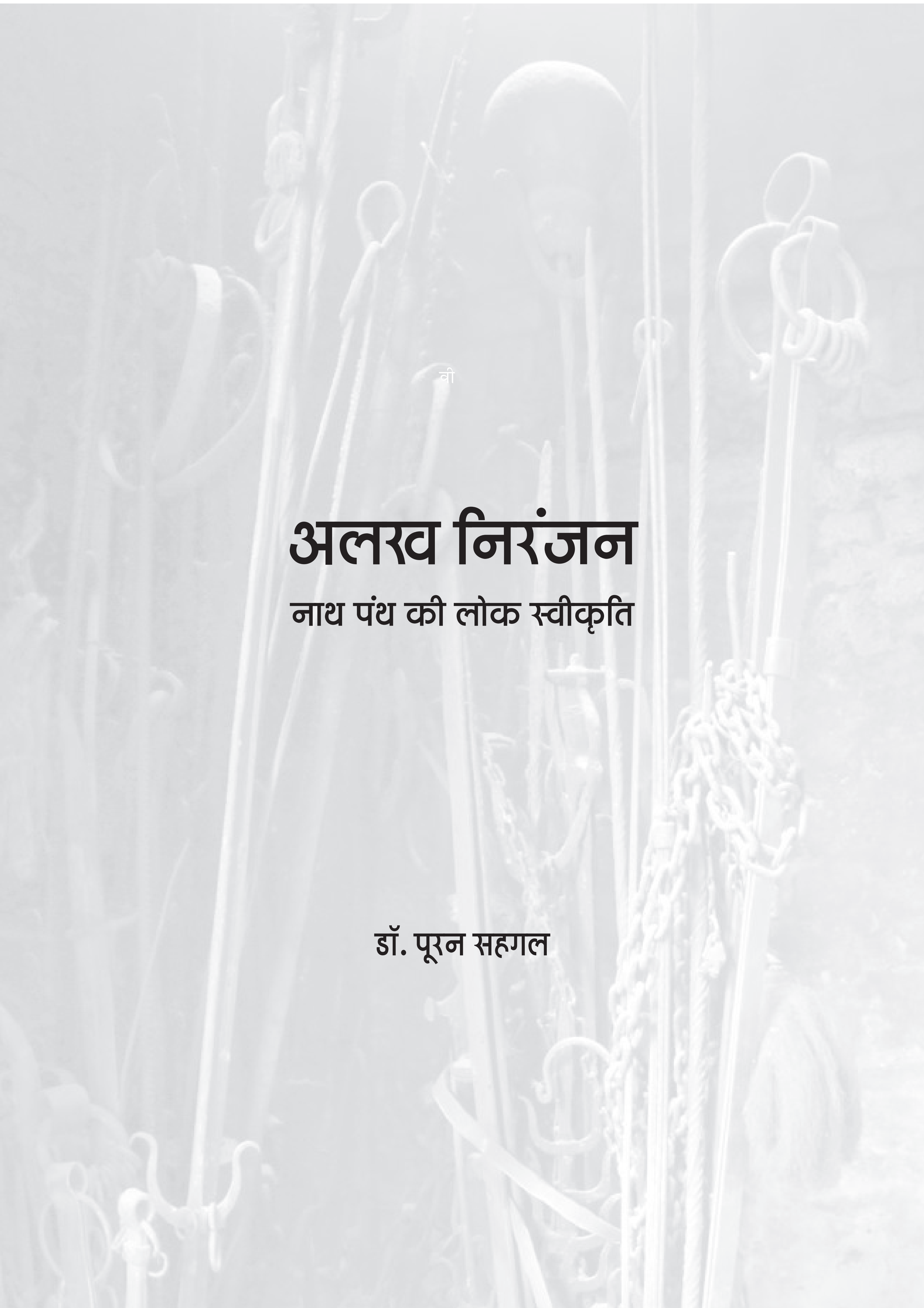

# अलख निरंजन

## नाथ पंथ की लोक स्वीकृति

डॉ. पूरन सहगल

# अखल निरंजन

## नाथ पंथ की लोक स्वीकृति

डॉ. पूरन सहगल

प्रधान सम्पादक
**वन्दना पाडेण्य**

सम्पादक
**अशोक मिश्र**

आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल का प्रकाशन

प्रकाशक – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स, भोपाल–462002
फोन – 0755–2661948, 2661640
E-mail : mplokkala@rediffmail.com
mptribalmuseum@gmail.com
web. : www.mptribalmuseum.com

प्रकाशन वर्ष – वर्ष 2015 प्रथम संस्करण

स्वत्वाधिकार – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

मुद्रण – मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल

मूल्य – 300/– रुपये (तीन सौ केवल)

- पुस्तक से सम्बन्धित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्य क्षेत्र भोपाल होगा।
- पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री लेखक की है, आवश्यक नहीं कि प्रकाशक इससे सहमत हों।

**ISBN - 978-93-83899-13-5**

नाथ सम्प्रदाय भारत में आध्यात्मिक साधना और तत्वार्थ की एक विशिष्ट परम्परा है। इस मत के आदिगुरु नाथ रूपी परमेश्वर हैं। नाथ मत में परतत्त्व या परब्रह्म को अव्यक्त, अनाथ एवं अनादि कहा गया है, उनकी एक स्वरूप भूत शक्ति (निज शक्ति) है, जो उनसे सर्वथा अभिन्न है। साधारणत: इसे इच्छा स्वरूप में जाना जा सकता है। परवर्ती कालों में नाथ परम्परा पर शाक्त और शैव आगम का प्रभाव पड़ा। अनेक विचारक इसे शिव-शक्ति रूप तथा योग और तंत्र का मिश्रित सम्प्रदाय भी मानते हैं।

नाथ पंथ के साधक नाथपंथ को अनादि काल से प्रचलित मानते हैं। नाथ सम्प्रदाय के सम्बन्ध में लम्बे समय तक विविध धारणाएँ प्रचलित रही हैं। नाथ शब्द का प्रयोग भी कई रूपों में मिलता है। गोरक्ष सिद्धांत संग्रह में नाथ शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'ना' का अर्थ है अनादि रूप शिव और 'थ' का अर्थ है स्थापित होना। इसका एक अर्थ क्रमश: मुक्ति मार्ग को बताने वाला और संसारी अज्ञान को स्थगित करने वाला भी ग्रहण किया जाता है।

अकादमी ने निर्गुण और सगुण धारा के भक्त कवियों, संतों-साधकों द्वारा रचे तथा उनकी छाप के अलग-अलग बोलियों के लोकपदों का संकलन एवं अनुवाद प्रकाशित किये हैं। मध्यप्रदेश के लगभग सभी सांस्कृतिक जनपदों में नाथ पंथ की विचारधारा का प्रसार और उसकी आचरण परम्परा के बारे में जानकारियाँ मिलती रही हैं- पर उसका स्वतंत्र संग्रह नहीं हो पाया था। चौमासा के अंक 54 में आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी जी के 'नाथ पंथ में हठयोग साधना' आलेख को प्रकाशित किया गया था। नाथ पंथ के लोक स्वीकृति की पड़ताल की मूल प्रेरणा इसी आलेख से प्राप्त हुई है। आलेख ज्यों का त्यों साभार इस पुस्तक में भी प्रकाशित किया जा रहा है।

अकादमी के अनुरोध पर अपनी यायावरी प्रवृत्ति के लिए लोक परम्परा में विशेष रूप से हिन्दी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं के मध्य ख्यात डॉ. पूरन सहगल ने मध्यप्रदेश के मालवा जनपद की नाथ परम्परा के लोक पदों का संकलन और अनुवाद का कार्य किया है। अत्यंत दुरूह कार्य का प्रतिफल आपके हाथ में हैं। आशा है पाठक अपनी प्रतिक्रिया देंगे।

**-सम्पादक**

# नाथ साधना में हठयोग

*शमनं भवतापस्य योगं भजत सत्तमा: -गोरक्षसंहिता:*

भेद या सांप्रदायिकता पद्धति में होती है, गंतव्य में नहीं। व्यवहार में गंतव्य है-मानवता और परमार्थ में स्व-भाव की उपलब्धि। दोनों का परिच्छेद देश, काल, सम्प्रदाय और व्यक्ति नहीं करते। गंतव्य एक अवश्य है, पर मार्ग या प्रस्थान तो पथिक की रूचि और संस्कार ही तय करता है- फलत: पद्धति परिच्छिन्न होती है -गंतव्य अपरिच्छिन्न। पद्धति पर देश, काल, सम्प्रदाय और व्यक्ति का प्रभाव पड़ता है, अत: वह परिवर्तनशील होती है, होनी भी चाहिए। हठयोग ऐसी ही एक पद्धति है- पारमार्थिक गंतव्य के निमित्त यह 'हठयोग' भी अपने आप में पूर्ण पद्धति नहीं है, प्रत्युत 'राजयोग का सोपान है। 'हठयोग' साधक को 'राजयोग' की पात्रता प्रदान करता है। हठयोग-प्रदीपिका में कहा है-

*श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै येनोपदिष्टा हठयोग विद्या।*
*विभ्राजते प्रोन्नत राजयोग मारोढुमिच्छोरपि रोहिणीव।*

श्लोक में गुरु आदिनाथ या शिव को प्रणाम किया जा रहा है, जिन्होंने हठयोग विद्या का भगवती पार्वती को उपदेश दिया। यह हठयोग पद्धति राजयोग के साधक के लिए एक सीढ़ी है। हठयोग विद्या का उपदेश केवल राजयोग के निमित्त है-

*केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते।*

नाथपंथ या सिद्ध मत में हठयोग को राजयोग से अलग करके नहीं देखा जा सकता। हठयोग से प्राणवायु का निरोध होता है और राजयोग से मनोनिरोध। मनोनिरोध के लिए प्राणनिरोध आवश्यक है। सामान्यत: यह माना जाता है कि बद्ध मनुष्य के देह, शुक्र, प्राण और मन-चारों चंचल हैं और चारों में से किसी एक के स्थिर या निरुद्ध होने से शेष अन्य भी स्थिर या निरुद्ध हो जाते हैं। इसीलिए ऐसा समझा जाता है कि इन चारों की चंचलता और स्थिरता समकालीन है। यदि ऐसी स्थिति है, तब प्राण-निरोध से चित्तनिरोध हो ही जाएगा-फिर प्राणनिरोध-योगी हठयोग को चित्तनिरोधोपयोगी राजयोग का सोपान मानना कहाँ तक संगत है? इस समस्या को समाहित करते हुए मर्मी सिद्धों का कहना है कि गंतव्य तक पहुँचने के अनेक मार्ग हैं और प्रत्येक मार्ग

गंतव्य तक पहुँचा देने में समर्थ है- फिर भी यदि पूर्णता लाभ करना हो तो अपनी अध्यात्म स्थिति के अनुसार थोड़ा बहुत, सब तरफ प्रयत्न करना पड़ता है-प्राधान्य किसी एक का होता है। कविराज गोपीनाथ का कहना है- 'जगत के पदार्थ समुदाय जैसे परस्पर मिश्रित हैं-जिस किसी एक विशिष्ट पदार्थ में सब पदार्थों के अंश न्यूनाधिक परिमाण में सन्निविष्ट हैं, केवल प्राधान्यवश किसी गुण और क्रिया की अभिव्यक्ति होती है, वैसे ही सभी साधनमार्ग परस्पर मिले हुए हैं, पर मिले रहने पर भी जिस पथ पर जिस अंश की प्रबलता रहती है, उसमें वही जागृत रहता है, अन्यान्य अंश दबकर प्रसुप्त रहते हैं। योग्यता के अनुसार पथ का निर्देश होने पर गम्य स्थान में यदि जाना हो तो सभी पथिकों (?) (पंथों) के सुप्त अंश का जागरण कर लेना चाहिए, नहीं तो साम्यावस्था में प्रवेश का अधिकार पैदा नहीं होता। यदि कोई साधक ब्रह्मचर्य की साधना में बिन्दु के शोधन और स्थिरीकरण के विषय में निरंतर चेष्टा करते हों, तो वे प्राण , मन आदि के साधन का यथावत् अभ्यास न करने पर ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठा अथवा बिंदु सिद्ध की उपलब्धि नहीं कर सकेंगे। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए। यदि ऐसा न होता तो पृथक-पृथक योगांगों के साधन का उपदेश न रहता। (भारतीय संस्कृति और साधना, पृ.288) इस उद्धरण से स्पष्ट हो गया कि प्राणसाधना के पथ पर आरूढ़ साधक उसी के जागृत वैशिष्ट्य की उपलब्धि कर सकेगा-अन्य के सुप्त वैशिष्ट्य का नहीं-और ऐसा न होने पर पूर्णता का उदय न हो सकेगा।

निष्कर्ष यह कि प्राणनिरोध से-हठयोग के पथ से ही चित्तनिरोधक राजयोग के पथ का समग्र वैशिष्ट्य उद्घाटित नहीं हो सकता, इसीलिए एक को दूसरे का सोपान बनना ही पड़ेगा। यह तो स्पष्ट ही है कि काम, शुक्र, प्राण और मन में उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर हैं। जैसे देह मल हटने से प्राण राज्य में प्रवेश होता है, वैसे ही प्राण-मल हटने से मनोराज्य में प्रवेश होता है। मन का पता लगते ही प्राण-क्रिया मन की क्रिया में परिणत हो जाती है। वस्तुत: होता यह है कि पूर्व-पूर्व का मलापसारण उत्तरोत्तर के प्रवेश द्वार का अनावरण करता है-इसी तरह उत्तरोत्तर के स्वभावचालित होने से पूर्व-पूर्व का स्थैर्य होता जाता है। देह के धरातल पर जो स्थान इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों में प्रवाहित होने वाले नि:श्वास और प्रश्वास रूप वायु की क्रिया का है, वही सुषुम्णा के मध्य प्रवाहित सूक्ष्मप्राण की ऊर्ध्व गति और अधोगति की क्रिया की है। वही क्रिया मन के धरातल पर वज्रानाड़ी मध्य सूक्ष्म मन की संकल्प-विकल्पात्मक क्रिया है। साधनावश जब यह संकल्प-विकल्पात्मक वृत्ति तिरोहित होने लगती है, तब चित्रानाड़ी का विकास होता है और विज्ञानमय कोष खुल जाता है, जहाँ शुद्ध संकल्पमय मन स्थिर हो जाता है। यहाँ भी संकल्पमयता की दो अवस्थाएँ सक्रिय रहती हैं-आविर्भाव तथा तिरोभाव। इस अवस्था का साधक विज्ञान अथवा संकल्प के भी त्याग की साधना करता है। अन्नमय कोष से नि:श्वास-प्रश्वास का, प्राणमय कोष में प्राण की ऊर्ध्वगति-अधोगति का, मनोमय कोश में संकल्प-विकल्प का, विज्ञानमय कोश में संकल्प के आविर्भाव-तिरोभाव का और आनंदमय कोश में निर्विकल्प के सद्भाव-असद्भाव

का द्वंद्व चलता ही रहता है। आनंदमय कोश में भी नि:संकल्प दशा नहीं आती। संकल्प के आविर्भाव-तिरोभाव के आवर्तन से धीरे-धीरे वह भी मिटती जाती है और एक ऐसा क्षण आ जाता है, जब संकल्पवृत्ति का भी आत्यंतिक तिरोभाव हो जाता है। संकल्प ही ज्ञान और इच्छा है और उसकी निवृत्ति परमानंद। यह आनंदमय कोश में ब्रह्मनाल में उपलब्ध होता है। इसके पश्चात् जो अवस्था उदित होती है- वह 'अवस्था' नहीं-'स्वभाव' है-'सहज' है-'समरस' दशा है। नाथ पंथ का हठयोग इसी में पर्यवसित होने वाले राजयोग का सोपान है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर हठयोग का अर्थ किया जाता है-

| | |
|---|---|
| हठयोग | ह+ठ-योग = इड़ा+पिंगला-योग / सामरस्य / देहस्तर |
| प्राणसाधना | ह+ठ-योग=प्राण+अपान-योग / सामरस्य / प्राणस्त स्तर |
| राजयोग | ह+ठ-योग = संकल्प-विल्प / योग / सामरस्य / मनोमय |
| | ह+ठ-योग=संकल्प+आविर्भावतिरोभाव- योग / सामरस्य / विज्ञानमय |
| | ह+ठ-योग=नि:संकल्प+सद्भाव-असद्भाव / सामरस्य / आनंदमय |
| राजयोग- | द्वंद्वातीत=रजस्+रेतस+योग / सामरस्य / स्व-भाव |

सिद्धमत या नाथमत में प्रस्थापित 'योग' को कहीं-कहीं महायोग भी कहा गया है-गंतव्य (प्राणापान समीकरण्य) के लिए अपेक्षित साधना-भेद या व्यापार भेद से वही चार नामों से पुकारा जाता है-मंत्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग। मंत्रयोग जपयोग है-सामान्यत: श्वास के बहिर्गमन में 'हं' और अंतरप्रवेश में 'स:' का उच्चारण होता रहता है। गुरुकृपा से पश्चिम मार्ग या सुषुम्ना में वही उलटकर 'सोऽ- हम' रूप में चलने लगता है- फलत: वहाँ अणिमादियुक्त ज्ञान की उपलब्धि होती है। लययोग से अभिप्राय है-चित्त के लय का-स्थैर्य का-निरोध का। इस स्थिति की उपलब्धि के असंख्य प्रकार है। हठयोग का अर्थ है- सूर्य और चंद्र का ऐक्य साधन। इससे देह शुद्धि होती है। इसके बाद ही जीव और शिव का रज और रेत का समरसी भाव होता है- जो वृद्धावस्था में सर्वथा अवियुक्त रहते हुए भी ब्रह्मपथ के दो ध्रुवांतों में वियुक्त से स्थित रहते हैं। जीव और शिव या रजस् तथा रेतस् का समरसीभाव ही राजयोग की सिद्धि है- पिण्ड पद सामरस्य है।

*रजसो रेतसो योगाद् राजयोग इति स्मृत:।।*

पिण्डपद सामरस्य क्या है? इस मूलतत्त्व का स्वरूप क्या है? प्रसिद्ध सिद्ध जलंधरनाथ ने अपने सिद्धांत वाक्य में कहा है कि उसे द्वैत कहे या अद्वैत अथवा वस्तुत: योगियों का तत्त्व दोनों से परे है-

*द्वैतं वाऽद्वैत रूपं द्वयत उत परं योगिनां शंकरं वा।*

उनके मत में तत्त्व के विषय में अद्वैत कहते बनता है न ही द्वैत-एक कहा जाता है, तब दूसरे का अभाव नहीं है-वहाँ भाव और अभाव परस्पर विरोध खोकर विद्यमान हैं-वही स्थिति द्वैत और अद्वैत की भी है-जब तक दोनों का सामरस्य न हो-तब तक पूर्ण सत्य का साक्षात्कार नहीं होता। नाथपंथ जड़ और चेतन का विरोध नहीं मानता-यदि ऐसा मानेगा-तब पिण्डपद सामरस्य होगा किस तरह? पिण्ड की सिद्धि यानी जड़ का चिन्मयीकरण-चिन्मय परमपद से सामरस्य-तभी संभव है जब जड़ में वह संभावना बनकर प्रसुप्त हो। वास्तव में जड़ चेतना का ही प्रसुप्त रूप है-सर्वथा भिन्न नहीं।

'सिद्धसिद्धांत पद्धति' में कहा गया है कि पिण्ड के छ: स्तर हैं-आदिपिण्ड, साकार पिण्ड, महासाकार पिण्ड, प्राकृत पिण्ड, अवलोकन पिण्ड और गर्भ पिण्ड। आदिपिण्ड ही सिद्ध पिण्ड है। परिपक्व देह है- जो प्रारब्ध की सीमा से परे है। यह निराकार है-इसकी स्वरूपभूता शक्ति के अवरोहण क्रम में शक्तिचक्र का विकास होता है-जो इस प्रकार है-निजा, परा, अपरा, सूक्ष्मा और कुण्डलिनी। साकार पिण्ड से गर्भ पिण्ड तक प्रत्येक पिण्ड की एक-एक शक्ति है-

| | |
|---|---|
| स्वरूपशक्ति | छह पिण्ड-परमपद, स्वगंतत्त्व, स्वरूपभूतशक्ति, संवलित (निराकार)<br>(पंचशक्तिघटित होने से 25 गुण सम्पन्न) |
| पाँच गुण निजाशक्ति<br>परा | पाँच साकार पिण्ड अपराशक्ति के अनुरूप पद महाकाश से महा पृ. पर्यन्त |
| पाँच गुण उन्मुखता<br>अपरा | चार महासाकार पिण्ड पर (शक्ति के अनुरूप पद)<br>(अष्टमूर्ति) |
| पाँच गुण स्पंदन<br>सूक्ष्मा | शिव, भैरव, श्रीकृष्ण, सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु, विधि<br>तीन प्राकृत पिण्ड-शून्य (शक्ति के अनुरूप पद) |
| पाँच गुण अहन्ता<br>कुण्डली | (पांच भौतिक) शरीर<br>दो अवलोकन पिण्ड-निरंजन (शक्ति के अनुरूप पद) |
| वेदनशीला | (नर नारीमय:) |
| पाँच गुण स्थूलता | एक गर्भ पिण्ड-परमात्मा (शक्ति के अनुरूप पद)<br>(दश धातुमय:) |

दस अस्थि, मज्जा, मेदा, शुक्र, माँस, रक्त, लोभ, वात, पित्त, कफ

आदिपिण्ड से, महाकाश से पृथिवी पर्यन्त पाँच तत्त्व विकसित होते हैं-इन्हीं पाँचों तत्त्वों के संधात से साकार पिण्ड की उत्पत्ति होती है। इन तत्त्वों में से प्रत्येक में पाँच-पाँच गुण होते हैं-फलत: साकार पिण्ड में भी पच्चीस गुण होते हैं। यह अष्टमूर्ति हैं-शिव, भैरव, श्रीकृष्ण,

सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और विधि। साकार पिण्ड-सापेक्ष निराकार पिण्ड भी सृष्टि के अन्तर्गत है- परमतत्त्व उभयातीत और निराकार है। इन छः पिण्डों में से कोई भी सिद्ध पिण्ड नहीं कहा जा सकता। बात यह है कि जब तक परमपद के साथ सामरस्य न हो-तब तक पिण्ड सिद्धि नहीं मानी जाती और पिण्डसिद्धि ही नाथ संतों के गंतव्य की अभिधा है-यही पिण्डपद सामरस्य है-यही शिवशक्ति की समरस दशा है। शिव शक्ति की ही नित्य सिद्ध अवस्था है। सिद्ध मत में इसी अवस्था को 'निरूत्थान दशा' कहते हैं। यह शक्ति की आत्मलीन अवस्था है। इसे कुलाकुल स्वरूप भी कहा जा सकता है। अकुल एक, अखण्ड अधर्मक तत्त्व है और कुल परंपरा शक्ति है। इस परंपरा में कुल शक्ति में कुल पाँच प्रकार हैं-सत्व, रज, तम, जीव एवं काल। सत्वरजस्तमोमयी प्रकृति है। क्रमागत सांख्य में दो ही तत्त्व हैं- प्रकृति और पुरुष। किन्तु प्राचीन सांख्य-जो वेदांत के समकक्ष पड़ता है-में इन दो के अतिरिक्त एक 'काल' नामक और तत्त्व पड़ता है। प्रचलित सांख्य में दिक् और काल का समावेश आकाश में ही है। दूसरा अंतर यह भी है कि प्रचलित सांख्य में प्रकृति को नित्य परिणामिनी कहा गया है और 'चलंचगुणवृत्तम्' कहकर उसे नित्य चल भी। यहाँ या प्राचीन सांख्य में प्रकृतिगत परिणाम स्वाभाविक नहीं, नैमित्तिक कहा गया है और वह निमित्त है काल। फलतः निमित्त के रोध से तिरुदृश ही नहीं, सदृश परिणाम भी रुद्ध हो जाता है। प्राचीन सांख्य की भाँति तदनुयायी पाँचरात्र भी यही मानता है। कालरोध से प्रकृति की गुणातीत अवस्था भी है-यहाँ तक तो प्राचीन सांख्य भी जाता है, पर सिद्धों की भाँति ये अकुलशक्ति की अवस्था नहीं मानते। अकुलशक्ति निधर्मक है और कुल शक्ति पंच प्रकार।

जिस 'पिण्ड' और 'कुलशक्ति' की बात अभी की गई है, उस संदर्भ में बात को आगे बढ़ाते हुए कहा जा सकता है कि यही कुलशक्ति या कुण्डलिनी शक्ति पिण्ड की आधारभूत शक्ति है। यदि पिण्डसिद्धि करनी है तो आधारभूत कुण्डलिनी शक्ति को-जो प्राकृत पिण्ड में अप्रबुद्ध या सुप्तावस्था है-प्रबुद्ध करना होगा। इसके प्रबोध से ही मध्यशक्ति या परासंवित् विकसित होती है। एतदर्थ योगबल अथवा गुरुनिर्दिष्ट क्रियाकौशल का सहारा लेना पड़ता है। नाथपंथ की और मार्गों से जो असाधारण वैशिष्ट्य है-वह यही पिण्ड सिद्धि। अप्रबोधावस्था में कुण्डलिनी शक्ति चक्रबद्ध है। नादमयी शक्ति अवरोहण क्रम में वर्णमयी होती हुई अनेक मण्डलों का निर्माण करती हुई मूलाधार में कुण्डलित होकर प्रसुप्त अवस्था में पड़ी रहती है। यह चक्र प्रबोधावस्था में बाधक और प्रबोध में सहायक होते हैं। बात यह है कि नाथों की मान्यता है कि कायाशुद्धि के बिना पूर्णमुक्ति नहीं मिल सकती। जब तक आधार शुद्ध न हो, वह मुक्ति धारण नहीं कर सकता। कच्चे घड़े में यदि पानी भर दिया जाय, तो वह फूट जायेगा और श्रम संचित जल बह जायेगा। इसी प्रकार यदि दोषपूर्ण देह में ज्ञानोपलब्धि कर भी ली जाय, तो देहदोष-जो दबा हुआ है-विस्फोट कर सकता है और ज्ञानी च्युत हो सकता है- इसीलिए यह आवयश्क है कि कायाशोधन कर लिया जाय-उसका चांचल्य शांत कर लिया जाय-पिण्ड स्थैर्य

संपादित कर लिया जाय। नाथपंथ का यह भी एक वैशिष्ट्य है कि-शुष्क ज्ञान मार्ग से ही यह ज्ञान के साथ पूर्ण मुक्ति के लिए योग की भी सहायता लेता है। उसकी दृष्टि में ज्ञानसंग है तो अज्ञान से युद्ध के लिए योग का बल भी अपेक्षित है। देहशुद्धि का सर्वोपरि मार्ग है-हठयोग। एक ओर हठयोग से कायाशुद्धि होती है और दूसरी ओर राजयोग की पात्रता आहित होती है, ताकि चित्त स्थैर्य हो सके। यदि कायाशुद्धि न हो तो वायु प्रकृतिस्थ नहीं होती और वायु प्रकृतिस्थ न हो तो ताप मुक्ति नहीं होती। सो, कायाशुद्धि अत्यावश्यक है। कायाशुद्धि का मतलब है- योगाग्नि द्वारा सप्तधातुमय देह का आत्यंतिक ध्वंस। सप्तधातुमय देह के ध्वस्त होने पर योगदेह व्यक्त होती है। यह स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह के भी परे है। ज्ञान-लाभ हो जाने के बाद जब भौतिक देह समाप्त हो जाती है-तब सिद्धों का साहचर्य लाभ होता है, फिर इन्हीं सिद्धों से योग की दीक्षा मिलती है-यह योग है-हठयोग। हठयोग से प्राणापान का साम्य होता है और इस साम्य से तीव्र चिदाग्नि का जागरण होता है, इसी चिदाग्नि से सप्त धातुज देह का ध्वंस होता है और अभिनव चिर देह का आविर्भाव होता है-तभी मुक्ति की चतुष्पाद प्रतिष्ठा होती है। हठ-योग से प्राणजय की प्रणाली नाथमत बताता है और योग का मूल स्तंभ ही पिण्ड की आधार शक्ति कुण्डलिनी का उत्थापन है। निष्कर्ष यह कि नाथ मार्ग शक्ति प्रबोध से संबद्ध है। पिण्डाधार शक्ति कुण्डलिनी है-और वह है अप्रबोधावस्था में। प्रबोध पिण्डसिद्धि के लिए आवश्यक है और प्रबोधक है प्राणापान सामरस्य और तदर्थ अपेक्षित है-हठयोग।

हठयोग की सर्वोपरि विशिष्टता है-प्राण के ब्रह्मरंध्र में लयपूर्वक कुण्डलिनी जागरण तथा षटचक्र भेदन पूर्वक नादानुसंधान के द्वारा मन का उन्मनीकरण। यह बात अनेक बार स्पष्ट की जा चुकी है कि हठयोग मूलत: प्राणसाधना है। प्राणसाधना नाड़ी शोधन के बिना संभव नहीं है। क्योंकि जिन नाड़ियों में प्राण संचार करता है मलावरुद्ध होती है-अत:निर्मल नाड़ियों में वायुसंचार का जो सौकर्य संभव है, वह समल नाड़ियों से संभव नहीं है। इसीलिए कहा गया है-

*शुद्धिमेतियदा सर्व नाड़ीचक्रं मलाकुलम्।*
*तदैव जायते योगी प्राण संग्रहणे क्षम:।।*

दोनों बातें परस्पर सापेक्ष भी हैं-प्राणशोधन से भी नाड़ी शोधन होता है। कुछ आचार्यों का मत है कि आसनाभ्यास के साथ-साथ केवल पूरक और रोचक नामक प्राणक्रिया ही नाड़ी शोधन में उपयोगी है-अशुद्ध नाड़ी में रेचक का अधिकार नहीं होता। दूसरे लोगों की धारणा है कि नाड़ी शुद्धि के लिए षट्कर्म अत्यंत उपयोगी है, जबकि याज्ञवल्क आदि आचार्य प्रणायाम से ही षट्कर्म का उद्देश्य सिद्ध मान लेते हैं। षट्कर्म है-नेति, धौति, नौली, वस्ति, त्राटक और भस्त्रा (कपालभाति)। इस प्रकार प्राणसाधना के लिए अपेक्षित नाड़ीशोधन की विभिन्न विधियाँ निर्दिष्ट हुई हैं।

नाड़ियों के सम्बन्ध में कुछ और भी प्रासंगिक बातें ज्ञातव्य है। नाड़ियों की संख्या कहीं

72000 और कहीं 75000 कही गई हैं। उनमें चौदह प्रधान हैं–कहीं–कहीं दस नाड़ियों के ही प्राधान्य की बात की गई है। ये प्राणवाहिनी नाड़ियाँ नाभिमण्डल से निकलकर चारों ओर फैली हुई और ये स्वयं वायुनिर्मित हैं तथा वायु के ही यातायात का माध्यम हैं। इन्द्रिय, मन यहाँ तक कि बुद्धि–सबकी क्रिया इसी वायु के कारण है। योगक्रिया की परावस्था में जब वायु की गति का रोध हो जाता है, तब न केवल वृत्ति निरोध होता है, प्रत्युत नाड़ीजाल ही संदृत हो जाता है–तब स्व–भाव का साक्षात्कार होने पर वृत्तिनिरोध की भी निवृत्ति हो जाती है और निरुत्थान तथा व्युत्थान का समरसी भाव हो जाता है। यही निर्वाण या निर्वात दशा है। शास्त्रीय परिभाषा में वायु को शक्ति भी कहते हैं– अत: वायु का निरोध या शक्ति की लय एक ही बात है। यह निरोध या लय ध्वंस नहीं है–क्योंकि इस धारा में किसी का ध्वंस होता ही नहीं है–दोनों का अर्थ साम्य है। साम्य प्रलय है और साम्यच्युति सृष्टि। साम्यच्युति ही वायु या शक्ति की स्पंदन है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वायु या शक्ति की प्रवाह का प्रवाह मार्ग ही नाड़ी है। यह प्रवाह मार्ग व्यष्टि में नाड़ी के नाम और समष्टि में रश्मि के नाम से प्रख्यात है। दोनों का जाल व्यष्टि और समष्टि में प्रकाशमान होकर व्याप्त है–जो एक दूसरे को काटती हुई जटिल हो गई हैं। मृत्यु के समय लिंगात्मक जीव इन्हीं नाड़ी पथों का समाश्रयण कर गतागत करता है। इस दृष्टि से नाड़ी और Nerve पर्याय नहीं है।

इन जटिल और वक्रभावापन्न नाड़ियों में प्रवाहमान वायु भी जटिल और वक्र है। दीर्घकालीन अभ्यास और वैराग्य से इसे सरल किया जा सकता है। इसका सरल पथ ही सुषुम्ना है–यह आपेक्षिक सरलता ही है। कहा जाता है कि वज्रिणी सुषुम्णा में और चित्रिणी–वज्रिणी में है और ब्रह्मनाड़ी चित्रिणी में है। वायु क्रमश: सूक्ष्म और सरल होते–होते निरपेक्ष स्थिति में आ जाती है और तब वह शून्य में प्रवेश करती है–यही शक्ति का जागरण या चिन्मयी भवन है।

वक्रभावपन्न वायु जब क्रिया के प्रभाव से निर्गम स्थान में आकर एकत्र होती है, तब वहाँ एक घनीभूत तेज का विकास होता है। यही वह ज्ञानाग्नि है, जो कर्म को भस्म करती है। नाभिचक्र में इसी का विकास होता है। इस ज्योति और परज्योति में संयोजक सरल रश्मि ही सुषुम्णा है–दोनों के बीच का व्यवधान ही ग्रंथित्रय है और सूक्ष्मरूप से देखने पर वे चक्ररूप में प्रतीत होते हैं। इनका भेद होने पर ही अपर और परज्योति का मिलन होता है। यह अपर ज्योति ही प्रबुद्ध कुण्डलिनी है। ग्रंथि और चक्रों का भेद इसी के द्वारा होता है। यही ब्रह्मद्वार को सार्धत्रिवलयाकारा अष्टप्रकृति रूपा कुण्डलिनी अवरूद्ध कर प्रसुक्त है–फलत: भेदराज्य चल रहा है। साधना द्वारा अग्नि और वायु के संयोग से इसका जागरण करना है। फिर यह सरल यात्रा करती है।

कुण्डलिनी के जागरण के अनेक उपाय बताये गये हैं–

1. कुण्डलिनी जागरण के संदर्भ में ही बंधों की बात आती हैं। एक वर्ग यह मानता है कि

सरस्वती नाड़ी की चालना तथा वायु के निरोध से जागरण संपन्न किया जा सकता है। यद्यपि इसके चालन से अतिरिक्त प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी प्राणायाम और बंध की उपयोगिता तो होती ही है। मूलबंध के द्वारा अधोगामी अपानवायु ऊपर की ओर गतिशील होकर अग्निमण्डल में प्रवेश करती है और अग्निशिक्षा को बढ़ाकर प्राण का स्पर्श करती है। उड्डीयानबंध कुंभक के अव्यवहितोत्तर संपन्न होता है। इसके अभ्यास से प्राण ऊर्ध्व गतिशील होता है। जालंधर बंध पूरक के अनंतर किया जाता है। इसके द्वारा नाड़ियों का मुख बंद होता है- अधोगामी अमृतप्रवाह निरुद्ध होता है और वायु की गति सब नाड़ियों से लौटकर सुषुम्णा में प्रविष्ट होती है। उड्डीयान बंध के प्रभाव से प्राण सिर के मध्य में प्रवेश करता है।

2. मूलबंध द्वारा अध: स्थित वायु को ऊपर चढ़ाकर कुंभक का अवलंबन करने का ही वह निरुद्ध वायु अग्निस्थान में स्थित अग्नि को आघात कर जगा देता है-फिर प्रदीप्त अग्नि और वायु सम्मिलित रूप में प्रबोधार्थ सक्रिय होते हैं।

3. ऊर्ध्वगामी अपान के नाभिप्रदेश के अधोदेश में स्थित वह्निमंडल में प्रवेश करते ही अग्नि ज्वाला धधक उठती है। तब अग्नि और अपान एकत्र होकर उष्ण प्राण का स्पर्श करते हैं। उससे देहज वह्नि प्रदीप्त होती है। इस ताप से प्रतप्त कुण्डलिनी जागकर सरल पथ ग्रहण कर लेती है।

सुषुम्णा मुख कहाँ माना जाय-इस विषय में अनेकविध मत हैं। शंकाराचार्य और सुरेश्वराचार्य मूलाधार को ही सुषुम्णा मुख मानते हैं, क्योंकि सिद्ध योगियों के मतानुसार नाभिस्थकन्द या मध्य सुषुम्णा मुख और कुण्डलिनी का वास हैं। वैदिक लोग हृदय देश को ही नाड़ी निर्गम का मूल मानते हैं। इसीलिए साधना का आरंभ वे हृदय देश से ही करते हैं, जबकि सिद्धजन नाभिमण्डल से। दूसरे लोग मूलाधार से और कुछ लोग भौंहों के मध्य से ही आरंभ करते हैं।

शक्ति स्पंदातमा होने से नादस्वरूपा है और नाद ही वर्णरूप में व्यक्त होता है-जो ब्रह्माण्ड के प्रतिनिधि पिण्ड में वर्णमय चक्रों द्वारा अपने को बिखेरती हुई प्रसुप्त प्राय होकर मूलाधार में कुण्डलित हो जाती है। प्रत्यावर्तन बेला में इनको आत्मसात् करती हुई सहस्त्रारस्थ शिव से सामरस्यापन्न हो जाती है। चक्रों की संख्या के विषय में मत-मतांतर हैं। नादात्मा शक्ति की ही स्फुटता वर्णमयी शक्ति है। यही वर्णमयी सृष्टि अर्थमयी सृष्टि का मूल है। नाद मूल शक्ति है, अत: वर्ण भी शक्ति मय ही है-इनका स्फुट-स्फुटतर होना चक्र-दर-चक्र की सृष्टि है। यह ब्रह्माण्ड भवन का मूल ढाँचा या ठाठ है। प्रबुद्ध कुण्डलिनी इन आत्म परिणति रूप वर्णचक्रों को आत्मसात् करती हुई शिव या परज्योति से एकरस नहीं होगी, तब तक सामरस्यापादन नहीं होगा।

**- डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी**

## दधीचि की अस्थियों वाला वज्रांग शोधार्थी डॉ. पूरन सहगल

पिछले दिनों डॉ. पूरन सहगल ने 'नाथपंथ की लोक स्वीकृति' पर शोध परक काम किया। यद्यपि वे बार–बार कहते रहे कि मैं शोध नहीं कर रहा। यह तो केवल लोक मत का सर्वेक्षण है। उन्होंने पूरा दशपुर जनपद पाँव–पाँव नाप डाला। लगभग एक सौ नाथों का साक्षात्कार उन्होंने लिया। दस–बारह से भी ज्यादा प्राचीन जागृत एवं सुप्त नाथ धूनियों पर वे सशरीर गए। वहाँ लोगों से मिले। उनका नाथों, नाथ पंथ और नाथों की धूनियों, आसनों और स्थानों के बारे में मत जाना। उनकी शोध विधि अत्यंत सहज होती है। वे कहीं भी बैठ जाते हैं। होटल में, बस में, दस–बारह जनों के जमावड़े में। फिर सहज भाव से चर्चा छेड़ देते हैं। उस पर जब चर्चा शुरू होती है, तब वे मौन दर्शक बनकर लोगों के मत सुनते रहते हैं। और अन्त में वह राम–राम कहकर उठ जाते हैं। बस से उतर जाते हैं या होटल से चाय का प्याल समाप्त कर बाहर आ जाते हैं।

उन्होंने जितने मठों पर जाकर वहाँ के वर्तमान नाथों से चर्चा की, तब वे वहाँ गेरुए वस्त्र पहनकर गए। उनका मानना था कि समान वेशभूषा देखकर आदर भी मिलेगा और अपनापन भी। भगवा लुंगी, कुर्तानुमा शर्ट और गले में रुद्राक्ष माल कभी–कभी शीश पर पगड़ी। तब वे सचमुच एक सिद्ध योगी लगते थे। अपनी नाथ पंथ की जानकारी से वे नाथों को प्रभावित कर उनसे अनेक उत्तर प्राप्त कर लेते थे। एक बार नहीं कई बार मुझे उनके साथ रहने का अवसर मिला। भानपुरा अंचल के ताखाजी, हिंगलाजगढ़, संधारा, कँवला, दूधाखेड़ी, धर्मराजेश्वर आदि स्थलों पर मैं उनके साथ रहा। अस्सी वर्ष की उम्र को स्पर्श करती उनकी अथक देह उमंग से जिस प्रकार शोध संलग्न दिखती थी, तब मैं अपनी उम्र को भूलने लगता था।

जब वे नाथों के द्वार पर पहुँचकर घोष करते थे। 'आदेश' तब भीतर से फौरन नाथजी बाहर आकर करबद्ध प्रतिघोष करते थे। 'आदेश आदिपुरुषों का' ऐसा लगता था कोई गोरख किसी भरथरी को चेतमान कर रहा है। वैशाख–जेठ की चिलचिलाती धूप और आग की लपटों जैसी लू की परवाह किए बगैर दधीचि की अस्थियों वाला यह

युवा–वृद्ध डॉ. पूरन सहगल राम काज पूर्ण किए बिना विश्राम करने की सोचता भी नहीं था।

ऐसा ही शोध श्रम उन्होंने 'पीथल खीची के कड़ावे' खोजने में किया था। मालवी लोक साहित्य में वीर रस की वह अद्भुत वीरगाथा है। तब भी मुझे उनके साथ रहने का अवसर मिला। अनेक देवरों, लोक गायकों और लोक मर्मज्ञों से वे मिले। एक शोधार्थी की तरह। न अधैर्य, न आलस्य और न अहंकार। यदि किसी ने कहा अमावस वाली चौदस को आना। तब वे धैर्यपूर्वक प्रणाम कर वापिस आ गए और चौदस को फिर पहुँच गए।

वे प्राचीन हवेलियों पर शोध कर रहे थे। तब संधारा की भूतही हवेली (लोक धारणा अनुसार) में निर्भय होकर घुस गए और भीतर जाकर चमगादड़ों–कबूतरों से जूझते रहे। वे कहते मुझसे बड़ा भूत तो भीतर हो ही नहीं सकता।

नाथ पंथ और उसकी लोक स्वीकृति की पाण्डुलिपि जब वे तैयार करने बैठे, तब बिना विश्राम किए आठ दिन में कृति तैयार कर दी। ऐसे शोध ऋषि से विद्यार्थी–शोधार्थी आदि प्रेरणा नहीं ले सकें, तब वे अपने जीवन में बहुत बड़ी चूक कर बैठेंगे। दूसरों को सम्मान देने में डॉ. पूरन सहगल अत्यंत उत्साहित और उमंगित हो उठते हैं। यदि इनकी **'नाथपंथ की लोक स्वीकृति'** तथा **'पीथल खीची के कड़ावे'** प्रकाशित हुई, तब मैं जानूँगा मेरा भी श्रम सार्थक हुआ। मैं वंदित हूँ डॉ. पूरन सहगल की शोध साधना के प्रति ।

**–डॉ. प्रद्युम्न भट्ट, भानपुरा (म.प्र.)**

# सच बोलता है लोक

भारत एक चित्र–विचित्र छवियों वाला देश है। इसके मनमोहक रुपांकन, चित्रांकन, इसकी प्राकृतिक रूप छवियाँ, इसकी मनभावन ऋतुएँ, सुहाने मौसम, यहाँ के पहाड़–पठार, मैदान, तलहटियाँ रंग–बिरंगी घाटियाँ सब मनभावन हैं।

वेदों से लेकर विनोबा तक गौतम से लेकर गाँधी तक अनेक दर्शन, अनेक विचार, अनेक धर्म, पंथ, सम्प्रदाय। कहीं सगुण, कहीं निर्गुण, कहीं ग्रंथ आस्था तो कहीं मूर्ति आस्था। सबका लक्ष्य एक, मार्ग भले भिन्न किन्तु पहुँच अभिन्न। अल्लाह और ईश्वर, राम और रहीम, ईसा सबके के आदर्श–आदेश समान, कहनी भले भिन्न, करनी भी भिन्न किन्तु विचरनी तो अभिन्न ही है।

सबका का लक्ष्य लोक कल्याण । सबका आधार सत्य, शील, शुचिता, दया, करुणा, सदाचार फिर भी कई बार अभिव्यक्ति में विभिन्नता। मत अनेकता में भी मूल रूप से मतेकता।

जिस प्रकार एक शतदल कमल अपनी निर्मल, उज्ज्वल और सुन्दर तथा कोमल पंखुड़ियों से जल में मुस्कराता हुआ सबको मोहित करता खड़ा रहता है। भले ही वह शतदल है। भिन्न–भिन्न पंखुड़ियों से अपनी छवि फैला रहा है, तथापि वह एक नाल से भी जुड़ा है। उसकी सभी पंखुड़ियाँ उसी नाल से अपना जीवन सत्व प्राप्त करती हैं, जिस कमलनाल पर वह खिला है। उसी कमल नाल पर वह खिलखिलाकर इठला रहा होता है। वह कमलनाल ही उसकी जीवन शक्ति है।

भारतीय संस्कृति भी वैसी ही नाल है। जिस पर अनेक धर्म–सम्प्रदाय और पंथ विकसित हैं। भारतीय संस्कृति से वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाए। अपने अस्तित्व को बरकरार रखते हुए भी वे भारतीय संस्कृति से प्रभावित हुए हैं।

लोक तो अत्यंत संवेदनशील होता है, वह तुरंत प्रभावित हो उठता है। यदि हम एक सुन्दर खिलौना किसी बालक को सौंप दें। वह यदि राम का खिलौना है और वह राम को तो नहीं जानता, वह राम–खिलौने के सौंदर्य से प्रभावित होता है। खेलते–खेलते यदि वह खिलौना रूप खो दे। उसका श्रृँगार सरूप से कुरूप हो जाय, तब वह बालक

उस खिलौने से विमुख हो जाता है। उसे वह त्याग देता है। यदि उसे दूसरा सुन्दर खिलौना दिख जाए या प्राप्त हो जाय, तब वह उसे ही अपना सखा बना लेता है।

यही स्थिति हमारे यहाँ विचारों, विचारकों और पंथ–सम्प्रदायों की भी होती रही है। लोक तो निर्मल हृदय होता है। प्रत्येक विचार किसी पूर्व विचार के विकल्प के रूप में ही प्रकट होता है। पूर्व विचार से अधिक लोक कल्याणी भी होता है। जबकि दोनों विचार लोक मंगलकारी होते हैं। समय के साथ या कहूँ युग के साथ वैचारिक बदलाव भी आता है। जो नया आता है, वह लुभाता है। स्वीकृत होने लगता है। लोक स्वीकृति मिलते ही वह विचार लोक की जीवनशैली में ढलने लगता है। लोक उसे जीता है। उसे स्वीकृति प्रदान करता है। यदि वह विचार सदा चिरन्तन बना रहता है, तब तो वह सदा–सर्वदा चैतन्य एवं सर्वमान्य बना रहता है अन्यथा लोक उससे उदासीन होने लगता है। वैसी स्थिति में फिर कोई चैतन्यमान विचारक अपना नया विचार लेकर उदित होता है। नया सवेरा–नया प्रकाश फैलता है और जनमानस उसी सूर्य को स्वीकार कर लेता है। उसके उदय होने पर अपनी जाग खोलता है। अपनी दिनचर्या प्रारम्भ करता है और फिर उसके अस्त होने पर विराम करता है।

लोक स्वीकृति या अस्वीकृति कभी भी चिरस्थाई नहीं होती। परिवर्तित होती रहती है। यही प्रकृति का भी नियम है। कभी शीत, कभी ग्रीष्म, कभी वर्षा, कभी पतझड़ कभी वसंत। पत्ते झड़ते हैं। नई कोपलें फूटती हैं। वृक्ष फिर हरियाता है। जो वृक्ष नहीं हरिया पाता, वह ठूण्ठ बन जाता है। उपेक्षित खड़ा रहता है। कोई लक्कड़हारा उस पर कुठाराघात करता है और उसे वहाँ से हटा देता है। कभी–कभी तना कटने के पश्चात् भी उसकी जड़े धरती के भीतर जीवित बनी रहती है। वह धरती से ऊर्जा प्राप्त कर फिर से जीवित होने लगता है। उसमें नन्हीं–नन्हीं कोपलें फूटती हैं। फिर कोपलें बढ़ती हैं। एक समय ऐसा भी आता है, जब वह ठूण्ठ बना और तना तक से वंचित वृक्ष फिर से हरा–भरा हो जाता है। पहले से भी ज्यादा हरा–भरा। छायादार, फूलदार और फलदार।

जो जमीन से जुड़ा रहता है, वह कभी भी नहीं मरता। सूख जाना, मुर्झा जाना, ठूण्ठ बन जाना, ये सब परिवर्तन झेलना पड़ते हैं। संघर्ष जीवन का सबसे बड़ा शक्तिदायक होता है। वह जीना सिखाता है। हरा हो जाना सिखाता है। विचार या पंथ भी ऐसा ही होता है। वृक्ष की भाँति। सबको शीतल छाया और प्राण वायु देता है। पशुओं और पक्षियों के लिए ही नहीं, प्राणी मात्र के लिए मंगल कामनाएँ प्रकट करता है। उसके लिए जाति–वर्ग, छोट–मोट का भेद नहीं होता, वह सबको सुमार्ग दिखाता है। सदाचार का मार्ग प्रशस्त करता है।

पंथ के प्रवर्तक जिसे बहुधा अवतार कहा जाता है। भारतीय मनीषा में ऐसे लोक पुरुष लोक में आस्था का केन्द्र बन जाते हैं। उनका चरित्र ही लोक को अपनी ओर आकर्षित करता है। उसके आदर्शों पर ही पंथ या सम्प्रदाय का प्रवर्तन होता है।

नाथ सम्प्रदाय या पंथ के प्रवर्तक गोरख माने जाते हैं। उन्होंने समाज में बढ़ रही कुरीतियों को दूर करने के लिए इस पंथ का प्रवर्तन किया। नाथ पंथ का आधार विश्व के श्रेष्ठ देव शिव से जोड़ा गया। उन्हें आदिनाथ अर्थात् आदिपुरुष अथवा आदिदेव कहा जाता है। वे नाथ पंथ के भी आदिनाथ कहे गये ।

भारत लोक नायकों का पूजक देश है। आध्यात्मिक क्षेत्र हो अथवा राजनैतिक अथवा सामाजिक। एक आदर्श पुरुष ऐसा अवश्य होता है, जिसको आदर्श मानकर हम अपनी जीवन शैली निर्धारित करते हैं। राम–कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद साहब, नानकदेव, रामानंदजी, दयानंद, विवेकानंद, गोरख, कबीर, पीपा, रैदास, धन्ना, सैन, सीता–सुलक्षणी, आदि उसी प्रकार के श्रेष्ठ आचरण वाले आदर्श संत पुरुष है, जो लोकमान्य हुए। उनके आदर्श कार्यों के प्रति, लोक कल्याणी आदर्शों के प्रति लोक आकर्षित हुआ और लोग उन्हें अपना आदर्श मानकर उनके अनुगामी या अनुयायी हो गए।

नाथ पंथ का उद्‌गम देखें तब हम पाएँगे कि यह पंथ भारतीय धर्म साधना का ही एक अंग है–

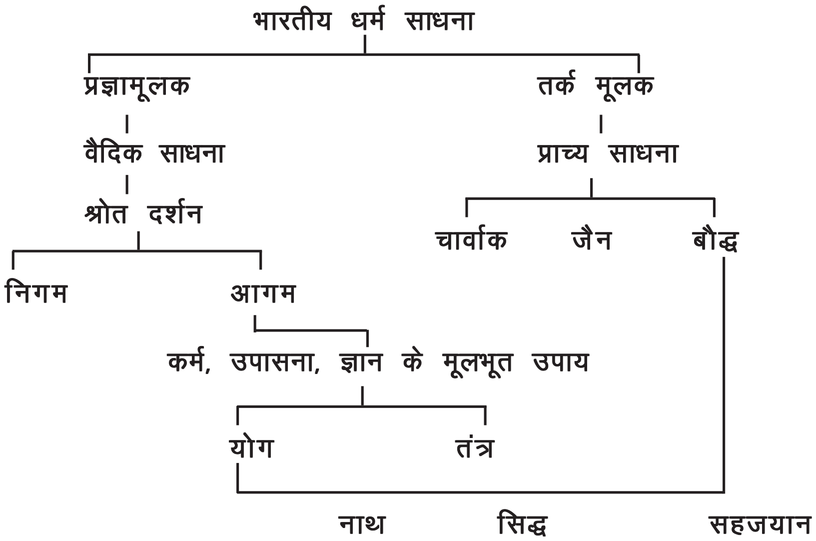

उपरोक्त तालिका से इतना तो ज्ञात हो जाता है कि नाथ पंथ कोई बाहरी अवधारणा नहीं है और न ही भारतीय धर्म साधना से विलग कोई आध्यात्मिक दृष्टि। कर्म–उपासना और ज्ञान का योग ही नाथ पंथ का मूल आधार है।

गोरखनाथ ने नाथ पंथ की स्थापना बुद्ध धर्म में आई विकृतियों से समाज को मुक्ति दिलवाने के लिए की। इसी प्रकार भगवान गौतम बुद्ध ने हिन्दू धर्म (सनातन धर्म) में आए आडम्बरों, कुरीतियों, कर्मकांड की कठोरता, जातिवाद, मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, प्राकृतिक शक्तियों की पूजा जैसे अनेक भटकावों एवं विकृतियों को मिटाकर सम्यक दृष्टि, संकल्प और वाणी आदि सम्यक भावों का संदेश समाज को दिया। बुद्ध के अष्टांग मार्ग में एक सूत्र है सम्यक समाधि। इसमें राग–द्वेष, हिंसा, प्रतिकार आदि से मुक्त होकर सहज एवं सरल जीवन जीने का संदेश था। उन्होंने जिन दस शील भावों का प्रावधान किया था उनमें सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य प्रमुख थे। बुद्ध के संदेशों में करुणा पर विशेष ध्यान दिया गया।

यदि हम इन सभी सिद्धांतों और आचारों पर ध्यान दें, तब हम पाएँगे कि ये सभी आचार सनातन धर्म में भी निहित थे। सनातन धर्म ने इन आचरणों को धीरे–धीरे त्यागना प्रारंभ किया। धर्म में भटकाव आया। धर्म में अधर्म के आचरण प्रवेश कर गए। तब बुद्ध ने पुनः उन्हें उजागर किया और नये रूप में एक धर्म की स्थापना की। बुद्ध के इस धर्म को बहुत लोक स्वीकृति मिली। राज्याश्रय भी मिला। कई राजाओं एवं सम्राटों ने इस धर्म को अपना लिया। उनमें अशोक सम्राट का नाम सर्वज्ञात है। कालान्तर में बुद्ध धर्म में वे सभी आडम्बर और कुरीतियाँ प्रवेश कर गई, जिनके विरुद्ध भगवान गौतम बुद्ध ने एक नई दृष्टि स्थापित की।

गोरखनाथ ने एक अवतारी पुरुष की भाँति जन्म लिया। उन्हें मत्स्येन्द्रनाथ का शिष्य और आदिनाथ का पौत्र शिष्य मानकर उनका स्वागत किया गया। उन्होंने समाज में आए दुराचरण और अतिवाद, भ्रष्टाचार, छल, कपट, आडम्बर आदि कुरीतियों को दूर करने के लिए एक नए धर्म (पंथ) नाथपंथ की स्थापना की। नाथपंथ के सूत्र सिद्धांत आचार–लगभग वहीं थे, जो बुद्ध ने स्थापित किए थे। गोरखनाथ ने जिस धर्म साधना का प्रवर्तन किया, वह संयम, शील, सत्य और समाधि पर आधारित माना जा सकता है। क्या यही सिद्धांत बुद्ध ने नहीं कहे थे? कुछ विद्वान तो नाथ पंथ को वज्रयानी धारा का ही एक रूप मानते हैं। स्वयं गोरख पूर्व में वज्रयानी साधक थे। बाद में शैव हुए। गोरखनाथ का एक नाम 'रमण व्रज' भी था। भगवान की नाथ रूप में भावना नाथ पंथ की एक प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है। इसका प्रारम्भ बौद्ध तंत्रों में ही प्रारम्भ हो गया था। बाद में नाथ पंथ वज्रयानी प्रभाव से मुक्त हो गया और एक स्वतंत्र पंथ के रूप में स्थापित हुआ। बौद्ध धर्म के पराभव के फलस्वरूप नाथ पंथ का प्रादुर्भाव हुआ

और इसे लोकप्रियता मिलने लगी। यदि हम गोरखनाथ के साहित्य का अध्ययन करें तो किन्तु उनमें कहीं भी बुद्ध दर्शन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित नहीं होता।

कुल मिलाकर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नाथ पंथ शैव सम्प्रदाय की ही एक शाखा मानी जा सकती है। नाथ अपनी परम्परा आदिदेव शिव से मानते हैं तथा उन्हें आदिनाथ निरूपित करते हैं।

यदि हम और गहराई से अध्ययन करें तो हम पाएँगे कि आदिनाथ भगवान शिव को लोकमान्य रूप में तथा मत्स्येन्द्रनाथ को तंत्र शास्त्र के मर्मज्ञ ज्ञाता के रूप में हम पाएँगे। दोनों विभूतियों का लाभ नाथ पंथ की स्थापना में फलदायी हुआ। गोरखनाथ ने योगकर्म को अधिक व्यवस्थित एवं निर्मल बनाने का प्रयत्न किया। बाद में जब मध्यकाल में भक्ति आंदोलन का अभ्योदय हुआ, तब सबसे शक्तिशाली पंथ के रूप में गोरख द्वारा प्रवर्तित नाथ पंथ ही समाज में प्रभावशाली था।

मध्ययुग आते–आते नाथ पंथ भी उन सब आडम्बरों और कुरीतियों का शिकार हो चुका था, जिनके विरुद्ध गोरखनाथ ने इस पंथ की स्थापना की थी।

नाथ पंथी साधना का संबंध योग अर्थात् कुण्डली जागरण से है। कुण्डली साधना का लक्ष्य और प्राप्य है, भीतर घट में गगन मंडल में जो औंधेमुँह मृत कुंड है। यही चन्द्रतत्व है। इसमें निरन्तर झरते रहने वाले अमृत का पान करना ही साधक के लिए योग साधना का अभीष्ट होता है। हठ योग में इसकी साधना नाथ पंथ में की जाती है।

*गगन मंडल में औंधा कुंवा, तहं अमृत का वासा।*
*सुगरा होय सो झर–झर पिया, निगुरा जाहि पियासा।।*

नाथ पंथी साधना में गुरुमंत्र साधना का महत्त्व कहा गया है, तथापि साधक जब तक काया शुद्धि नहीं कर लेता, तब तक वह साधना का अधिकारी नहीं माना जाता। हठ योग में इन्द्रिय, मन और प्राण को एकीकृत करना होता है।

नाथ पंथी साधना में जिस इन्द्रिय निग्रह की बात कही गई है, उसका लोक में स्त्री (नारी) भर्त्सना के रूप में प्रचार हुआ। वज्रयान में जिस मुद्रा साधना में नारी के सहचर्य का प्रावधान किया गया था, गोरखनाथ ने उसकी वर्जना की। इस प्रकार नाथ पंथी साधना निर्मलता, सद्चरित्रता एवं इन्द्रिय निग्रह के रूप में प्रकट हुई। इस साधना को लोक ने सराहा और उसी भाव से उसे मान्यता भी दी।

यदि हम नाथ पंथ को सिद्धों (बौद्धों) की साधना पद्धति का परिवर्तित रूप मानें,

तब किसी को भी इसमें एतराज नहीं होना चाहिए। गोरख बानी में कहा गया है—

*हंसिबा बोलिबा रहिवा रंग, काम क्रोध न करिबा संग।*
*हंसिबा खेलिबा गावा गीत, दिढ़ करि राखि अपना चित्त।।*

आत्म संयम और इन्द्रिय निग्रह हठ योग साधना का मूलमंत्र है। यद्यपि गोरखनाथ ने पंचमकारों के सेवन को सहज साधना में वर्जित माना है, तथापि पश्चात् काल में पंचमकारी साधना (मत्स, मांस, मदिरा, मुद्रा और मैथुन) के कारण नाथ पंथ विकृतियों से घिर गया और् लोक में इसके लिए उसे बुरा समझा जाने लगा। यह पंच मकार वस्तुतः सांकेतिक था, किन्तु फिर यह सचमुच में प्रयुक्त होने लगा। योगी के लिए गोरख अपनी बानी में कहते हैं—

*हबकि न चलिबा ठबकिन चलिबा, धीरे धरिवा पाँव।*
*गरब न करिबा सहजै रहिबा, भंड़त गोरख राँव।*

धीरे—धीरे गोरख द्वारा निर्धारित आदर्श भंग होने लगे। जिन आदर्शों के लिए गोरख ने एक निर्मल, संयमित और समाज सुधारक पंथ की स्थापना की थी, वे सब खंडित होने लगे। नाथ पंथ कई फिरकों में बंटता चला गया। यह विभाजन लोक कल्याण के लिए नहीं था, अपितु मठाधीशों के वर्चस्व के कारण था। सब स्वयं को श्रेष्ठ बताना चाहते थे। प्रारम्भ में जो मुद्रणाएँ कान में पहनी जाती थीं, वे काष्ठ, सीप, तांबे फिर चाँदी की होते—होते स्वर्ण की होने लगी।

नाथ साधु छल—कपट, ठगी तक उतरने लगे। उनके इस आचरण से एक कहावत बनी—

*चेला चाँटा कभी न मूंडो, जब मूंडो तब चेली।*
*चेला देगा पैसा धेला, चेली देगी थैली।।*

ये नाथ साधू बाँझों को संतान देने, गड़ा धन बताने, गंड्डा —ताबीज करने, झाड़—फूँक करने, मारक और मोहनी, वशीकरण मंत्रों का प्रयोग करने जैसे दुष्कृत्यों में लिप्त होकर धनार्जन, भोग विलास की स्थिति में पहुँचने लगे। इनके कारण पंथ की लोक स्वीकृति बाधित होती चली गई। गोरख का नाथ पंथ, नाद पंथ बनने लगा। अलख—अलख का नाद कर सिद्धनाथ अपना मायाजाल फैलाने लगे। फलतः लोगों में इन साधुओं के प्रति आस्था के स्थान पर भय का भाव जागृत हो उठा। एक समय कहा जाता था— 'जहाँ नाथ वहाँ मत शिव का साथ' अब उसका उल्टा होने लगा था।

*जहाँ रुका हो नाथ, वहाँ मत रुको रात।*

जहाँ नाथ का वास हो, रात रुकना असुरक्षित माना जाने लगा था। नाथ साधुओं ने बाँझ स्त्रियों को अपनी ओर आकर्षित करना प्रारम्भ किया। संतान प्राप्ति की लालसा में ऐसी स्त्रियाँ तथा अनेक कुल्टा स्त्रियाँ नाथों के सम्पर्क में जाकर अपनी देह पिपासा शांतकर धन्य होने लगी। बौद्ध सिद्धों की वज्रयानी साधना से बढ़कर नाथों की पंचमकारी साधना भ्रष्ट हो गई। स्वच्छंदता और दुराचरण के कारण पंथ उपेक्षित होने लगा।

ऐसे साधु बहुधा मठ भ्रष्ट साधु होते थे। मैंने अनेक मठों पर जाकर शोध किया हैं। यद्यपि अनेक मठ, डेरे, मढ़ियाँ या आसन जो भले ही अब अस्तित्व में नहीं रह गए, तथापि उनकी यश कीर्ति आज भी लोक जीवन में कायम है।

इस ग्रंथ में लोक में व्याप्त कुण्डा पंथ, काँचली पंथ और शंका ढाल जैसे विकृत परम्परागत पंथों का उल्लेख मैंने किया है। ये सभी पंथ नाथ पंथ के दुष्प्रणाम हैं। इन विकृतियों का निवारण लोक ही कर सकेगा। यह प्रसंग ठीक वैसे ही है, जैसे सागर मंथन से अमृत तो निकला ही था, साथ में गरल भी निकल आया था। उस गरल का पान कौन करे? वज्रयान की मुद्रा साधना के गरल का पान गोरख ने कर लिया था। किन्तु गोरख के इस नाथ पंथ के मंथन से निकला गरल समाज को विचलित और प्रदूषित कर रहा है। इस विकृति को सुकृति में बदलने के लिए कोई भी दिखलाई नहीं दे रहा। क्या हम फिर किसी बुद्ध या गोरख की प्रतीक्षा करें। तब क्या होगा? यह गरल समाज को कब तक प्रदूषित करता रहेगा? मध्यकाल में रामानंद का भक्ति आंदोलन गोरखपंथ की गंगा के प्रदूषण को शुद्ध करने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

मैंने जिन–जिन भी नाथ स्थलों का भ्रमण किया है, वहाँ–वहाँ मुझे नाथों के विषय में और नाथ पंथ के प्रति जो सद्भावना और सुकीर्ति का आभास हुआ, वह अत्यंत सकारात्मक है। मैंने अपने सर्वेक्षण में पाया कि जो अंतर गोशाला में या किसी धनी (स्वामी) के बाड़े में रहने वाली गायों और गली मोहल्लों में छुटचरी करने वाली आवारा गायों में पाया जाता है, वैसा या वैसा ही अन्तर मठ की मर्यादा में रहने वाले नाथ साधुओं और मठभ्रष्ट, पंथ भ्रष्ट अथवा स्वच्छंद आचरण करते हुए छुटचरी करने वाले नाथपंथ के साधुओं में पाया जाता है।

मैंने इस ग्रंथ का सृजन केवल ग्रंथों को पढ़कर अथवा विद्वानों–विचारकों के विचारों–मंत्रों को पढ़कर नहीं किया है। लोक में रच–बस कर, लोक के पास जाकर लोक का अभिमत जानकर किया है। इसमें पंथ के प्रत्येक पक्ष पर विचार किया गया है। केवल कुछ साधुओं की विकृत मानसिकता और दुराचारी प्रवृतियों के कारण किसी पंथ को अच्छा या बुरा कैसे कहा जा सकता है ?

मेरा सम्पर्क अनेक नाथ पंथी साधुओं और मठाधीशों से रहा है। मैंने उन्हें लोक मन से जानने समझने का प्रयत्न किया है। मेरा सम्पर्क आज भी अनेक नाथ पंथ के साधुओं से जीवंत है। मेरी आस्था भी उनके प्रति अटूट है। लोक धारणाओं से भी मैं अवगत हूँ। मैं अपने अध्ययन को मठों—आसनों और मढ़ियों तक ले गया। लोक उनसे प्रभावित होता है। उन नाथ स्थलों और उस अंचल के लोगों से ही उनके प्रति आस्था—अनास्था, स्वीकृति—अस्वीकृति का आभास हो सकता है। लोक जो कहता है वही सत्य है। लोक निर्पेक्ष होता है। उसने तो एक गीत में राम को भी फटकार लगा दी— **'राम जी आछी नी करी।'** हे राम! आपने ठीक नहीं किया। सीता को गर्भावस्था में वन में भेज दिया। यह आपका न्याय नहीं है। राम के प्रति इतना स्पष्टवादी लोक ही हो सकता है। (देखें **'लोकरमंता राम'—** डॉ. पूरन सहगल।) लोक सदा निर्भीक, चेतमान और निर्पेक्ष रहता है।

मैंने यह ग्रंथ लोक को ही आधार बनाकर लिखा है। लोक ही तो मेरा धाता —विधाता और संधाता है। लोक ही मेरा निदेशक है। लोक बोलता है। वह इतिहास (अतीत) का दर्पण है। मेरा यह सृजन शोध प्रबंध नहीं है। शोध का आधार अवश्य है। मैंने इसके प्रत्येक पक्ष पर चर्चा की। लोक मत और लोक मन को टटोलने का प्रयत्न किया है। जो लोक वाणियाँ इसमें संकलित हैं। वे सारी गुत्थियाँ खोलती हैं। वे हमें नाथों के मठों—आसनों, मढ़ियों और डेरों तक ले जाती हैं। उन्हीं के अध्ययन से हमें पता चलता है कि अपने समय के नाथ—सिद्ध साधुओं ने किस प्रकार चमत्कार किए। सिद्धियाँ प्राप्त की और उनका उपयोग लोक कल्याण के लिए भी किया। उन्हीं से यह भी ज्ञात हो जाता है कि कुछ भटके या छद्म वेशधारी नाथ साधुओं ने जहाँ लोक को छला, वहीं अपने पंथ को भी लोक में बदनाम करने का दुष्कर्म किया। कुछ छद्म भेषधारी नाथ साधुओं के कारण पंथ की कीर्ति धूमिल हुई। उसकी लोक मान्यता, आस्था और स्वीकृति पर भी प्रभाव पड़ा। इसके लिए केवल नाथ साधुओं को ही दोष देना उचित नहीं है। लोकजन अपनी अतृप्त कामनाओं को अनैतिक साधनों एवं अमर्यादित मार्गों से तृप्त करने के लिए प्रयत्न करते हैं। वे जन उन साधुओं को अनैतिक कार्यों के लिए लालायित भी करते हैं। इस प्रकार लोकजन भी समान रूप से उत्तरदायी है।

संगति का महत्त्व जिसे संतों—साधुओं ने सत्संग कहा है। उसका तत्त्व भी इन्हीं प्रसंगों से ज्ञात हो जाता है। जैसी हम संगत करेंगे, परिणाम भी वैसा ही मिलेगा। सत्संग के लिए कबीर ने कहा है—

*बजा नगाड़ा काल का दिया कबीरा रोय।*
*सत्संग ते ऊपराँ, सरगन दीखे मोय।।*

सत्संगत से ही स्वर्ग जैसा आनंद मिलता है। आचरण शुद्ध होता है। नाथ पंथ में सत्संगत पर बहुत जोर दिया गया है। नाथपंथी लोक गायक जब सारंगी लेकर भरथरी, गोपीचन्द, भगत पूरनमल आदि गाथाओं के साथ–साथ निर्गुणी वाणियाँ गाते हैं, तब कब रात बीत गई, पता ही नहीं चलता। लोगों में नाथों की इस पारम्परिक लोक गायन कला ने भी नाथों के प्रति आस्था स्थापित की है। ये साधू पूर्वजों के यश गीत गाकर अमरता का बोध करते हैं। इसी को सत्संग और कुसंग कहा गया है। जो नाथ साधु श्रेष्ठ एवं सुधी साधुओं की संगत में रहे, वे लोकमान्य, लोक पूज्य और लोक स्वीकृत हो गए।

नाथ पंथ के साधुओं द्वारा स्थापित मठों को राजाओं और जागीरदारों ने, सेठ–साहुकारों ने खूब सत्कारा है और उन्हें जागीरें और नगद दान दिया है। यह प्रसंग हमें नाथ पंथ के प्रति लोक की मान्यता और लोक स्वीकृति का बोध करवाता है। इसीलिए मैंने इन नाथ मठों को अपने लेखन का आधार बनाया। मेरे मित्र डॉ. प्रद्युम्न भट्ट ने जब इस पाण्डुलिपि को पढ़ा, तब उनकी टिप्पणी थी– यदि इसे जस का तस केवल अध्यायों में बाँटकर तथा शोध प्रबंध की शैली में विश्वविद्यालय में प्रस्तुत कर दिया जाय, तब इस पर पीएच.डी. प्राप्त की जा सकती है।' यह उनका अकादमिक चिंतन है। मैं अपने इस लेखन में अंत तक सावधान बना रहा कि यह शोध प्रबंध जैसा सूखा–सूखा और नीरस नहीं बन जाए। इसीलिए इसे पारम्परिक अध्यायों में नहीं बाँटा।

इसके लिए मैंने यात्राएँ बहुत की, चिलचिलाती धूप और आग की लपटों जैसी देह जलाती लू ने कई बार परेशान भी किया। लगातार मैं दादा बैरागी से कई दिनों तक नहीं मिला। मेरी अनुपस्थिति से वे जान जाते हैं कि फिर कहीं वनवासी हो गया होगा। जब दस दिन बाद उनसे मिला, तब उन्हें अपनी प्रगति सूचना (रिपोर्ट) सुनाई। उनकी भी यही टीप थी– 'मैं जानता था तुमने फिर किसी गहरे सागर में ऊड़ी गोत लगा ली है।'

बिना गहरी गोत लगाए तो कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। श्रद्धेय अशोक मिश्र जी को मैं सदा अपनी यात्राओं से अवगत कराता रहा। वस्तुतः यह कार्य योजना उन्हीं के उर्वरक मस्तिष्क की उपज थी। मैंने इसलिए तत्काल इसे स्वीकार कर लिया, क्योंकि इसके सफल होने में मेरी बचपन (किशोर) अवस्था से लेकर वृद्धावस्था तक का श्रम सफल हो सकता था। मैं चाहता भी हूँ कि मेरे पास जितना भी लोक संकलन है, वह तो छप जाए या किसी को सौंप दूँ। अस्सी साल उम्र का अर्थ होता है उम्र का पटाक्षेप प्रसंग। श्री बालकवि बैरागी जी का एक दोहा याद आ रहा है–

*बाल गए आँखें गईं, गए दाँत और कान।*
*हम भी अब तैयार हैं, चला गया सामान।।*

जब ये चारों इन्द्रियाँ शिथिल हो जायें, तब मान लेना चाहिए कि प्रस्थान का समय आ पहुँचा है। इसके बावजूद अभी केवल तन ही थका है, मन नहीं। उमंग और उत्साह नहीं टूटा। न तो अभी थकने का मन है न रुकने का। अभी तो बहुत काम करना है, करवाना भी है। अपेक्षाएँ बिल्कुल नहीं है। यही सुख का कारण भी है। रहीम ने कहा था—

*चाह गई चिन्ता मिटी, मनवा बेपरवाह।*
*जिनको कछु न चाहिए वे शाहं के शाह।।*

बिना फल की चिंता किए काम करते चलो। बस यही सुख और सम्यक है। यही गीता का संदेश भी है।

नाथ पंथ पर एक बात मैं अन्त में यह कहना चाहता हूँ कि यदि कुण्डापंथ, काँचली पंथ जैसी विकृत परम्पराएँ नाथ पंथ के कुप्रभाव हैं, तब अनेक लोक कल्याणी कर्म उनके सुप्रभाव और सुकृतियाँ भी हैं।

कुछ लोग नाथ सिद्धों के चमत्कारों को केवल कपोल—कल्पित मानकर उन्हें नकारते हैं। यदि नाथ सिद्धों के सिद्धि के चमत्कार कपोल कल्पित हैं, तब तो समूचा पुराण सहित, समूचे अवतारों की लीला कथाएँ, हनुमान जैसे सिद्ध भक्त के चमत्कारिक प्रसंग भी कपोल कल्पित मानना होंगे।

नाथ पंथ पर इतना अधिक लिखा गया है कि उसको एकत्र करें तब एक व्यक्ति का भार बोझ बन जाए। कुछ शोधपरक कुछ प्रबोधपरक एवं अबोधपरक। विज्ञजन परस्पर गुत्थम—गुत्था होते रहें। कुछ लोग गोरख को 7वीं शताब्दी का बताते हैं, कुछ 10 वीं शताब्दी का और कुछ थोड़ा पीछे लौट कर उन्हें छठी शताब्दी तक ले जाते हैं। धन्य हैं व सब। उनमें से एक भी विद्वान यदि देश में घूमा होता। नाथों से मिला होता। उनके साक्ष्य लिए होते, तब सम्भवतः कोई समाधानपरक निर्णय निकल आया होता। उन्होंने कुछ ग्रंथ पढ़े, अपना मत स्थापित किया। पूर्व के मत का खंडन—मंडन किया और बेताल को एक बार फिर वृक्ष पर टाँग दिया। उन्हें एक बात तो स्वीकारना होगी। क्या भर्तृहरि और भरथरी भिन्न हैं? यदि भिन्न हैं तो भरथरी का जीवन चरित्र खोजें। यदि भर्तृहरि और भरथरी एक हैं, तब उन्हें स्वीकारना होगा कि भर्तृहरि—विक्रमादित्य के अग्रज थे। अर्थात् उनका समय विक्रम संवत् से भी पूर्व का है। दूसरी बात क्या भर्तृहरि के दीक्षा गुरु गोरखनाथ थे, तब यह भी मानना होगा कि गोरख भर्तृहरि के समकालीन थे। यदि गोरख भर्तृहरि के दीक्षागुरु नहीं थे, तब कौन थे? उस महापुरुष की खोज होना शेष है। उसे खोजें। जो आज कहा गया है केवल वही सत्य नहीं है। और जो

अतीत में कहा गया था, वह भी सदा सत्य नहीं हो सकता। काल समय में नई–नई खोजें होती हैं। विचार और मत बदलते हैं। उन्हें स्वीकार भी किया जाना चाहिए।

गोरख की कहें तो गोरख यदि भर्तृहरि युग में थे, तो वे गोरख जी, कबीर, पीपा, सैन, सीता–सुलक्षणी आदि संतों से 15 वीं शताब्दी विक्रमी में गोष्ठियाँ करते दिखते कौन से गोरख थे? एक गाथा कहती हैं– **'गोरख तो जुग–जुग विया'** एक और गाथा भरथरी की कथा कहती हैं–

*गोरख होया जुग–जुग मोकरा। जुगाँ तो जुगाँ अवतार।*
*भटक्याँ न गेलो बतायो जी गोरख, भूल्याँ को कर्‌यो जी उद्धार।।*

देखें– मालवी आख्यान– डॉ. पूरन सहगल,
पृ. 70 पद 448, प्रकाशक–आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, भोपाल (म.प्र.)

जिस प्रकार विक्रमादित्य एक विरद या उपाधि बन गई, उसी प्रकार गोरख भी एक उपाधि बन गई, जिसे सिद्ध–नाथों ने धारण कर स्वयं को धन्य किया। आदि गोरख से 16 वीं शताब्दी तक गोरख अवतरित होते रहे। इसी कारण यह भूल–भुलैया चली आ रही है।

श्रद्धेय अशोक मिश्रजी यदि प्रेरित नहीं करते, तब यह कृति अस्तित्व में नहीं आ पाती। सारी सामग्री मेरे बस्ते में आवेष्ठित पड़ी रहती और समय का दीमक उसे चटकर जाता। यह काम वैसा ही है जैसा विष्णु का वेदों का रसातल से बचा लाना या पृथ्वी को बचा लाना। मैं केवल आभार कहकर उनका महत्त्व कम नहीं करना चाहता। पढ़ा था वृद्ध जामवंत ने युवा हनुमान को समुद्र तैरकर (पारकर) लंका से सीताजी की खोज का काम करने के लिए उत्साहित किया था। यहाँ एक युवा ने मुझ वृद्ध जामवंत को समुद्रतरण का जोश दिलाकर अद्‌भुत काम कर दिखाया है। अशोक मिश्रजी धन्य हैं।

मेरी खोजबीन की कठिन यात्राओं में डॉ. प्रद्युम्न भट्ट, श्री धर्मेन्द्र दुबे यदि सहयोग नहीं करते, तब मैं तो चौराहे पर ही खड़ा रह जाता। कुछ मित्रों ने आश्वासन तो बहुत दिए, किन्तु कर कुछ नहीं पाए। उन्हें इसलिए धन्यवाद कि मैं और अधिक गतिशील हुआ। पंखों से उड़ने के बजाए संकल्पों से उड़ान भरने लगा। तिनकों के सहारे से अच्छा है तैरकर पार हो जाना।

जिन–जिन मठों पर मैं गया। वहाँ–वहाँ साधुजनों ने लोकमन से मेरा सहयोग किया। उन्हें प्रणाम–वंदन।

मेरा यह काम किसी शोधार्थी के काम आ सके, तब तो मैं धन्य हुआ समझिए। डॉ. शैलेन्द्र शर्मा जी उज्जैन ने अभी फोन से बताया कि एक शोधार्थी कन्या नाथ

सम्प्रदाय पर शोध करना चाहती है। सुनकर अच्छा लगा। डॉ. शिव चौरसिया, डॉ. भगवतीलाल जी राजपुरोहित, डॉ. श्याम सुन्दरजी निगम जैसे विद्वानों से समय–समय पर चर्चा होती रही। उसका लाभ मुझे अपने इस सृजन में मिला, उनका वंदन।

पूरी कृति में कहीं–कहीं दोहराव की स्थिति बनी है उसका कारण प्रसंगों का दोहराव है। उसे मैं पुनरावृत्ति नहीं कहता, अपितु वह आवश्यक जैसा पुनः संस्मरण है। उसे स्वीकार करें।

मैंने अपने लेखन में यह सावधानी अवश्य रखी है कि मेरा लेखन किसी के प्रति अपमानजनक नहीं लगे। सबके सम्मान का पूरा ध्यान रखा है। यदि कहीं कटु लिखा है तो वह सत्य के निकट है। यदि कहीं मधुर लिखा है, तब वह भी सत्य के ही निकट है।

सत्य तो यह भी है कि मैं न तो नाथ पंथ का दर्शन जानता हूँ और न पंथ परम्परा तथा प्रथा। जितना विद्वानों से सुना–जाना, थोड़ा बहुत पढ़ा उसी समझ के आधार पर यह सब लिख दिया है। यही कारण है कि पूरी कृति में मैंने पाद टीप नहीं दिए हैं। इसका एक कारण तो मैं पूर्व में कह चुका हूँ कि मैं इसे शोध ग्रंथ नहीं बनाना चाहता। दूसरा यह कि मैंने ग्रंथों को आधार बनाकर यह लेखन नहीं किया। कुछ पुस्तकें पढ़ीं। उनका जितना भी (अल्प) ज्ञान मेरे भीतर रह गया, उतना लिख दिया। वैसे भी कोई कृति पूर्णतः परम सत्य नहीं होती। प्रत्येक विचार या जानकारी तर्क की कसौटी पर खरी कैसे उतर सकती है?

मैं तो बस इतना ही कह सकता हूँ **'जो लिख दिया सो सही। वक्त जरूरत काम आवे।'** यह पारम्परिक सूत्र है। इसे आप भी मान लें। लोक जो कहता है वही मैंने कहा है। इसलिए कह दिया सो सही। यह सत्य के निकट परम सत्य ही है।

मैंने पूरी कृति में यह प्रयत्न किया है कि आप इसे अध्यायों में पढ़ने के बजाय स्वध्याय में पढ़े। अध्ययन में पढ़े। इसमें मैंने स्वयं ही कई प्रश्न जागृत किए हैं। उनके उत्तर भी मैंने ही दिए हैं। अब इसे पढ़कर आप कुछ प्रश्न करें और उनके उत्तर भी स्वयं ही दें। अन्त में यह लोक साखी–

*गोरख–गोरख सब कहे, 'गो' राखे सो नाथ।*
*सत मत गत राखे धुरां, सोई गोरखनाथ।।*

**– डॉ. पूरन सहगल**

निदेशक
मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान
मनासा (म.प्र.)

# अनुक्रम

हम न मरिहें—मरिहें संसारा /31
गोरख का पंथ /33
नाथ पंथ की लोक स्वीकृति/161
नाथ सिद्धों की वाणी /262
परिशिष्ट— एक /279
परिशिष्ट— दो /294

# हम न मरिहें–मरिहें संसारा

युग परिवर्तन के कारणों पर पूर्व पृष्ठों पर विचार किया जा चुका है। जब भी संस्कृति, समाज और सत्यनिष्ठा पर आघात होने लगता है। जब भी दया, सुचिता, शील, करुणा और सत्य की पंचयुति में विघ्न पड़ने लगता है। जब भी धर्म में आडम्बर का वास होने लगता है। जब भी धर्म के रक्षक और समाज–संस्कृति के पहरुए और पेरोकार अपने कर्तव्य से विमुख होकर मौन धारण कर लेते हैं और जब सत्य पर असत्य का प्रभाव होने लगता है, तब कोई युगपुरुष, कोई तापस पुरुष ईश्वरीय शक्तियों से अभिषेकित होकर धरती पर अवतीर्ण होता है। उसी को हमने अवतार कहा है।

अवतार भी प्रकट होता है। हम उसे प्रकट होना कहते हैं। वस्तुतः प्रत्येक अवतार किसी न किसी माता की कोख से ही जन्म लेता है। उसमें ईश्वरीय शक्तियों का वास होता है। कुछ तो ईश्वरीय शक्ति कुछ उस दिव्य पुरुष के सदगुण, कुछ सद्गुरुओं के द्वारा ज्ञान एवं सबसे अधिक माता–पिता के रक्त–दूध में संस्कार उसे दिव्यता प्रदान करते हैं। राम, कृष्ण, गौतम, महावीर आदि दिव्य शक्तियाँ उसी श्रेणी में आती हैं। उसी परम्परा में गोरख भी माने जाते हैं। गोरख में जन्मजात–दिव्यता थी, बाद में उनकी तपस्या, संस्कार, ईश्वरीय शक्तियाँ एवं तप–तपस्या ने उन्हें अवतारी पुरुष सिद्ध कर दिया।

गोरखनाथ ने योग साधना की सैकड़ों विधियों का प्रादुर्भाव किया, परन्तु उनकी मूल शिक्षाओं का आधार हठयोग था। यम–नियम से परिपूर्ण व्यक्तित्व ही योग सिद्धि उपलब्ध कर सकता है तथा ऐसा व्यक्तित्व ही नाथ योग के लिये स्वीकार्य है। इसीलिए

उनकी योगसाधना के विभिन्न अंगों को षडग योग ही कहते हैं। गोरखनाथ ने आदिनाथ शिव, निज गुरु मत्येन्द्रनाथ से प्राप्त योग विधियों, स्वानुभूत योग विधियों तथा स्वानुभूत यौगिक अनुभूतियों को अमनस्क योग, रोजयोग, लययोग इत्यादि स्वरूपों में लिपिबद्ध किया। उनके इस अभूत–पूर्व कार्य का व्यापक प्रभाव उस काल के दार्शनिकों पर पड़ा, जिससे दार्शनिक ग्रंथ योग विद्यालोक से आलोकित हो उठे। नाथ सिद्धांत का यही अमरत्त्व है।

यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि महायोगी गोरक्षनाथ अमरकाय–सिद्ध पुरुष थे, जिन्होंने चारों युगों में नाथ योग मार्ग का प्रचार–प्रसार किया। वे अपने समय के महानतम योगसिद्ध, श्रेष्ठ दार्शनिक, धर्म क्रांति के अग्रदूत, सत्य पथ के प्रदर्शक तथा तत्वज्ञ विद्वान थे। उन्होंने योग विद्या को संसार के प्रत्येक व्यक्ति के लिये सहज एवं व्यवहारिक बनाया तथा प्रत्येक प्राणी के घट–घट में शिवत्व (अलख–निरंजन) की व्यापकता सिद्ध की। भारतीय धर्म साधना की लम्बी यात्रा में महायोगी गोरक्षनाथ के दिव्य व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मानव के आध्यात्मिक, धार्मिक एवं सामाजिक उत्थान में अप्रतिम प्रभाव एवं महत्त्वपूर्ण योगदान था। उनके द्विव्यतम योग वैभव से सम्पन्न व्यक्तित्व को देखकर बोध होता है कि वे स्वयं शिव स्वरूप हैं। नाथ साहित्य की घट–घट गोरख व्यापे की अवधारणा से स्पष्ट होता है कि वे सत्यलोक के रूप में घट–घट में विराजमान है।

# गोरख का पंथ

गोरखनाथ की साधना पद्धति समाज–सापेक्ष एवं बहुजन हिताय थी। एक ओर उनकी साधना पद्धति में अनेक धर्म–साधनाओं की अच्छाइयों का समन्वय हैं, तो दूसरी ओर उनकी बुराइयों का बहिष्कार है। अतः उनका विचार दर्शन में समन्वयवादी एवं क्रांतिकारी दोनों दृष्टिकोण निहित है। गोरखनाथ के इस समन्वय एवं क्रांति में तत्कालीन दार्शनिक क्षेत्र में एक हलचल मचा दी थी और यही उनके साहित्य की व्यापकता का मूल कारण है।

समस्त भारत की धर्म साधना पर प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से नाथ पंथ छाया हुआ है। उनकी दार्शनिक मान्यतायें लगभग सभी परवर्ती दार्शनिक साहित्यकारों में न्यूनाधिक रूप से समाविष्ट हैं। गोरखनाथ की धर्म साधना और साहित्य का परवर्ती हिन्दी लेखकों और आध्यात्म पर व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होता है।

शिव गोरक्ष महायोगी गोरखनाथजी नाथ पंथ के आराध्य देव हैं। उनके योग मर्म को जानने के लिये अनन्त सिद्धों में अतीत व अनुपम हैं–

*श्री गोरखनाथ पंथ का देव।*
*अनंत सिधा मिलि पाये भेव।।*
*पाया भेव भई परतीत।*
*अनन्त सिद्धा में गोरख अतीत।।* (नाथ सिद्धां की बानियां–126)

भगवान शिव का अवतार अंश होने के कारण गोरखनाथजी को शिव गोरक्ष कहने की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। आदिनाथ भगवान शिव ने नाथ पंथ में सबसे पहले मत्स्येन्द्रनाथ को योग महाज्ञान का उपदेश दिया और कालान्तर में उन्होंने

ही गोरखनाथ के रूप में मछिन्द्र (मत्स्येन्द्र) नाथजी से योग ज्ञान प्राप्त किया। अतः शिव के अंश अवतार होने से गोरखनाथजी शिव–गोरक्ष कहलाते हैं। 'शिव पुराण' ख–सात–अ–एक में ब्रह्माजी शिव के अवतारों का वर्णन करते हुए कहते हैं–

*शिवो गोरक्ष रूपेण, योग शास्त्र जुगो पह।*
*यमद्य गैयथा स्थाने, स्थापिता योगिनोऽपि।।*

अर्थात्–'भगवान शिव ने गोरख रूप में आकर योग और योगियों की रक्षा तथा योगशास्त्र की सत्यता को यम–नियम आदि अंगों द्वारा प्रमाणित किया।' इसी प्रकार 'महाकाल योग शास्त्र' में भी भगवान शिव ने स्वयं कहा है कि–मैं ही गोरक्ष नाथ हूँ, हमारे इस रूप का बोध प्राप्त करना चाहिए। योग मार्ग के प्रचार के लिए मैंने गोरक्ष रूप धारण किया है–

*अहमेवास्मि गोरक्षो, भद्रुपं तन्नि बोधत।*
*योग मार्ग प्रचाराय, मया रूप मिदं धृतम।।*

श्री गोरक्षनाथ और शिवजी में मूलतः कोई भेद नहीं है। श्री गोरक्षनाथ ही शिव हैं और वे ही शिव गोरख हैं। लोक में योग प्रतिष्ठा के लिये उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ जी से योग उपदेश प्राप्त किया, अन्यथा यह पृथ्वी बिना गुरु के रहती। 'गोरखबानी' (सबदी 144) में गोरखनाथजी ने गुरु की मर्यादा के संरक्षण पर प्रकाश डाला है–

*अवधू ईश्वर हमारे चैला भणीजै,*
*मछिद्र बोलिये नाती।*
*निगुरी पिरथी परले जांती ताथै,*
*हम अल्टी थामना जामी।।*

नवनाथ कथा में गोरखाथजी को वासुदेव, शिव शंकर, सच्चिदानंद, सर्वव्यापक, पतित–पावन आदि कहा गया है।

शिव गोरक्ष आज भी साधकों के मन में प्रत्यक्ष दर्शन की कामना होने पर प्रकट होते हैं तथा अपनी योग सिद्धि और व्यक्तित्व से साधकों को कृतार्थ करते रहते हैं।

## गोरक्षनाथ की गुरु शिष्य परम्परा

नाथ–पंथ के आदि गुरु आदिनाथ शिव हैं। शिव ही मूल गुरु और नाथ कुलगुरु माने जाते हैं। 'मूले मूलर भावादमूलम्'–मूल का मूल न होने से मूल अमूल और स्वयं

मूल है। ईश्वर का ईश्वर खोजना भूल है, सबके मूल आदिनाथ शिव हैं। नाथ पंथ में 'गुरु एक सेवा अनेक' मानी जाती है। मूल गुरु आदिनाथ के अतिरिक्त कोई नहीं है। आदिनाथ एक मात्र मत्स्येन्द्र के गुरु हैं। मत्स्येन्द्रनाथ एकमात्र गोरक्षनाथ के गुरु हैं, आगे गुरु परम्परा हैं।

**आदिनाथ के शिष्य**

मत्स्येन्द्रनाथ, जलंधरनाथ, वामदेव, शुक्रदेव, उपमन्यु, मनु, नारद, तुम्बुरू, मार्कन्डेय, मेधा, लोमश, दुर्वासा, वशिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, रामचन्द्र, लक्ष्मण, हनुमान, जड़—भरत, कपिल, अष्टावक्र, भारद्वाज, द्रोणाचार्य, वैशम्पायन, अत्रि, मारीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, केतु, देवल, नन्दीक्रेश, दधीचि, उतथ्य, कणाद, गोतम, शतानंद, सनकादि, सिद्धघेरण्ड, पाणिनि आदि ऋषिमुनि—सिद्धजन असंख्य हैं।

**जलंधरनाथ के शिष्य**

लौहित्यपाद, कृष्णपाद (कान्हीपा), श्रृंगारिपाद (गोपीचन्द्र) से पाद पंथ या पाव पंथ चला है।

**मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य**

गौरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, चर्पटनाथ, मंजुनाथ, चोलनाथ, अड़बंगनाथ, बटनाथ (वद सिद्ध नेमीनाथ, पारसनाथ आदि असंख्य है)।

**गोरक्षनाथ के शिष्य**

मनवतिकोटिषितिभृत—निन्यानवे कोटि तो समस्त भू—मण्डल के राजे—महाराजे मात्र सिद्ध हुये हैं, जनता का लेखा—जोखा नहीं है। उनमें बारह पंथ, अठारह पंथ तथा अन्यान्य पंथ—उपपंथों के प्रवर्तक सिद्ध तथा अनन्त कोटि सिद्ध अनेक लोगों के हुए हैं। जैसे—सत्यनाथ, धर्मनाथ, गंगानाथ, खार्पूनाथ, देवलनाथ, गौरनाथ, विचारनाथ (भर्तृहरि), पूर्णनाथ (पूरन भक्त), मनोनाथ (रसालु) षडंगनाथ, गुग्गा नाथ, बनखण्डिनाथ, संसारनाथ, फलाहरिनाथ, पिपलनाथ, पृथ्वीनाथ, हंसनाथ, हारितनाथ, खेचरनाथ, तारानाथ, रत्ननाथ, चन्द्रनाथ, छायानाथ, मण्डनाथ, नागनाथ, गोविन्दनाथ, बालकनाथ, हैहृयनाथ, गैबिनाथ, गहनिनाथ, गुहानाथ, पवननाथ, पर्वतनाथ, पाणिनाथ, भावनाथ, वीरनाथ, सयदनाथ, अमरनाथ, मणिर्कनाथ, माणिक्यनाथ, कुशलनाथ, मल्लिनाथ, घोट चोलीनाथ, बालनाथ, अचलनाथ, विमलनाथ, विलेशयनाथ, सुभिक्षनाथ, आम्रनाथ, तंगुनाथ, श्रवणनाथ, घुरगनाथ, सहजानन्दनाथ, स्वात्मारामनाथ, नागनाथ, नागार्जुननाथ, नागपाल, वसंतदेव, नरेन्द्र देव,

योगेन्द्र देव, बप्पा–रावल, गहलारायल, द्रवसाह, रामसाह, लक्ष्मण थापा, पृथ्वीनारायण, पुण्यनाथ (पुनिया), चक्रपाणि, आल्हाद, उद्वल, मललाखान, जसनाथ, जंभनाथ, रंजननाथ (रांझा), हरिपुरुष, प्रभृति विरक्त–गृहस्थ उभयश्रमस्य शिष्य मण्डल, भू–मंडल व्यापक तथा लोक–लोकान्तर व्याप्त है। एक–एक शिष्य के अनेक प्रशिष्य शाखा–प्रशाखा असंख्य है। एक–एक शिष्य के प्रशिष्य जैसे अष्टावक्र के शिष्य विदेह जनक, वैशम्पायन के शिष्य याज्ञवल्क्य, धुरंगनाथ के शिष्य श्री ग्रीवनाथ, विचारनाथ के शिष्य आरम्भनाथ, गेबिनाथ के शिष्य गव्हरनाथ, रत्ननाथ सिद्ध रावल, चौरंगीनाथ के शिष्य महानाथ, स्वात्मारामनाथ के शिष्य विश्म्बरनाथ इत्यादि। अतएव शिवावतार गोरक्षनाथ को 'नाथपंथ का प्रवर्तक देव' माना जाता है।

**नौ नाथः बारह पंथ**

*सुणो रे साधो योग मारग विस्तारा।*
*नौ नाथ पंथ है बारहा जाने नाथ लिया जग सारा ।।टेर।।*
*आदि उदय सत्य और संतोष अचल शेष अवतारा।*
*गजंकथड़ी चौरंगी और मछिन्द्र बाल रूप गोरख धारा ।।1।।*
*सत्त धर्म पाव अरु पागल है, राम रावल यह तो ठारा*
*गंग दरिया आई कपिलानी और वैराग मन्नथी बारहा।।2।।*
*राजा प्रजा देव अरु दानव नाथ लिया सब अवतारा।*
*नाद बिन्द का भेदही कहिये नहीं नाथ जी से न्यारा।।3।।*
*नाथ त्रिश्वेश्वर दाता जोग के, किया योग प्रचारा।*
*भोलानाथ यूं समझाया कर–कर निर्णय सारा।।4।।*

नाथ पंथ के चौरासी सिद्धों का उल्लेख पूर्व पृष्ठों में किया गया है। जिस प्रकार नाथ पंथ के अनुयायी हिंगलाज माता और जोगणियां माता तथा नवनाथों की पूजा, आरतें और धूप–ध्यान करते हैं, उसी प्रकार चौरासी सिद्धों की स्मृति में भी वे धूप–ध्यान करते है। गुरु का स्मरण करते हुए वे धूप–ध्यान प्रारम्भ करते हैं–

*ओम गुरुजी महाधूप एक धूप एक ओंकार कूँ।*
*दो धूप–चाँद सूरज कूँ तीन धूप चार वेद कूँ।*
*पाँचवीं धूप पंचमुख सिव कूँ छटी धूप–षड दर्शन कूँ।*
*आठवीं धूप बावन भैरव कूँ नवीं धूप–नौ दुर्गा कूँ।*
*दसवी धूप दसाँ दिसाँ कूँ।*

इसके बाद वे चौरासी सिद्धों का स्मरण कर उन्हें धूप देते हैं। इस धूप ध्यान परम्परा से यह तो ज्ञात हो जाता है कि नाथ लोग भारतीय संस्कृति के मूल आधारो एवं तत्वों से पृथक नहीं रहे। नाथ पंथ की लोक स्वीकृति की पृष्ठभूमि इन्हीं लोक सांस्कृतिक अवधारणाओं पर आधारित रही है।

सद्‌गुरु गोरखनाथ नाथ पंथ के प्रवर्तक होकर अमर पात्र भी हैं। लोक प्रचलित यह उक्ति कितनी सत्य है कि 'युग–युग में गोरख हुए, युग–युग विक्रमजीत।' महाराज विक्रमादित्य और सद्‌गुरु गोरखनाथ प्रत्येक युग में उपस्थित पाए जाते हैं। सच तो यह है कि आदि गोरख और आदि विक्रमादित्य के पश्चात् ये यश पदवियाँ या विरदें हो गई। इन अमर पात्रों/व्यक्तित्वों के समान यश अर्जित करने वाले जन राजा या योगी स्वयं को विक्रमादित्य और गोरख उपाधि से विभूषित कर लेते थे। या फिर लोक उन्हें इन उपाधियों से पुकारने लगता था। कुछ छली पंथ भ्रष्ट नाथ भी स्वयं को गोरख कहने लगते थे।

प्रस्तुत लोक पारंपरिक गोरख एवं उनके नाथ पंथ की ख्याति आदि काल से अर्थात् वैदिक काल से स्थापित करने का प्रयत्ननाथ पंथ के ही नाथ सिद्धों या विद्वानों ने किया है। इसे अतिरंजकता भी कहा जा सकता है। इसी क्रम में लोक से उपलब्ध एक गोरखनाथ की ख्याति भी संकलित है। गोरख, नाथ पंथ उसके उद्देश्य, कारण, लोक स्वीकृति या अस्वीकृति के संदर्भों सहित यह मालवी लोक गाथा अति महत्त्वपूर्ण है।

## गोरख जन्म की पारंपरिक अवधारणाएँ

महापुरुषों के जन्म को लेकर परंपरा से इतिहास, लोक और गुरु अनुयाइयों द्वारा लोकरंजक अवधारणाएँ होती रही हैं। लोक इन्हें सहेज कर रखता और अपनी आस्था स्थिर करता है।

लोक जीवन में धार्मिक व आध्यत्मिक सम्बंधित कार्यों तथा कर्म, माला, जप, मंत्र, भजन, भक्ति, दान, दया, ज्ञान, ध्यान, योगादि में गुरु गोरखनाथ का अद्वितीय प्रभाव या प्रेरणा देखी जाती है। गुरु गोरखनाथ द्वारा विरचित–निर्मित अनेकानेक चमत्कारिक मंत्र जहाँ जन–कल्याण हेतु अनेक शारीरिक, मानसिक, दैविक एवं भौतिक बाधाओं व कष्टों के निवारण हेतु प्रचलित हैं, वहीं दूसरी और उनकी सर्व व्यापकता ओर सर्वोच्चता का पता इस बात से चलता है कि सामान्यजन निष्काम भक्ति के माध्यम से भी मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रतिदिन प्रातः–सायं अपनी माला में इनका जाप व स्मरण बार–बार करते हैं।

सत्संग व जागरण इत्यादि के समय गुरु गोरखनाथ के नाम से असंख्य आख्यान, भजन व पदावलियाँ जहाँ श्रोताओं और श्रद्धालुओं को कर्णप्रिय लगकर मंत्रमुग्ध कर देती हैं, वही उनका गूढ़ रहस्य व उसमें ज्ञान भक्ति इत्यादि उपदेश व मानस पटल पर अमिट असर डालते हैं। गायक या प्रस्तुतकर्ता जब जागरण इत्यादि में इन भजनों व पदों की मीमांसा इत्यादि करते हैं तब उनकी एकाग्रता उस ओर लगी रहती है। किन्तु यह मीमांसा कुछेक लोग ही समझ पाते हैं।

गुरु गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ व योगीराज भर्तृहरि गोपीचंद के नाम से कई चमत्कारिक वार्ताएँ व कथायें जहाँ रात्रि बैठकों इत्यादि में छाई रहती हैं, वहीं दूसरी ओर गुरु गोरखनाथ के जीवन चरित्र, योगबल, मंत्र, प्रभाव एवं अनेकानेक सिद्धियों के अलौकिक एवं चमत्कारिक किस्से व प्रेरक प्रसंग बड़े चाव से सुने व गुने जाते हैं।

'गुरु गोरखनाथ की दुहाई' तो सौगंध या शपथ के रूप में आम मुहावरा बन गई है जिसका प्रयोग न्याय इत्यादि प्रसंगों तथा सत्यता परखने के दृष्टिकोण से सामान्य जनजीवन में प्रचलित है। इसे लोक स्वीकरता का प्रयोग कहा जा सकता है।

इस तरह योगीराज गुरु गोरखनाथ का महान व अद्वितीय जीवन चरित्र का प्रभाव लोक जीवन में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सामान्य जनजीवन में जितना प्रभाव गुरु गोरखनाथ का प्रत्यक्ष रूप से देखा जाता है, अन्य किसी संत–महात्मा, उद्धारक या धार्मिक युग पुरुष का नहीं। गुरु गोरखनाथ की तस्वीर सामान्य जनजीवन व लोक व्यवहार में एक ऐसे कल्याणकारी उद्धारक व धार्मिक संत–महात्मा के रूप में अंकित है, जिन्होंने अपने कठिनतम तपोबल के प्रभाव से सामान्य जन का सुगम–सरल एवं अनुकरणीय अध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त किया और गुरु गोरखनाथ के रूप में सबके हृदयों में समान रूप से अपना अद्वितीय स्थान बनाया। योगीराज गुरु गोरखनाथ शत–शत वंदनीय ।

नाथ पंथ बहुत प्राचीन है। हठ–योग प्रदीपिका में नौ नाथों का वर्णन मिलता है। महासिद्धों की संख्या कुल चौरासी बतलाई गई है। गुरु गोरखनाथ का नवनाथों में प्रमुख स्थान है। नाथ सम्प्रदाय के गुरु सिद्ध कहलाते हैं। नाथ–पंथ के गुरु में केवल गुरु गोरखनाथ सर्वाधिक चर्चित हुए है। इन्हें गोरक्षनाथ भी कहते हैं तथा शिव गोरक्ष भी।

गुरु गोरखनाथ का तंत्र–मंत्र के क्षेत्र में अपना एक अति विशिष्ट स्थान है। पूर्वी भारत के वे यशस्वी ही नहीं, वरन् चमत्कारी तांत्रिक थे। नेपाल के भगवान पशुपतिनाथ

और आसाम में कामाख्या देवी के वे ही संस्थापक थे। उन्होंने ही अनेक तंत्रशास्त्रों की रचना की है। इनमें शाबर तंत्र, गोरख तंत्र, संजीवन तंत्र प्रमुख हैं। यह नाथ–सम्प्रदाय की अमूल्य धरोहर है।

मछिन्द्रनाथ के परमशिष्य गुरु गोरखनाथ ने सहस्त्रों शाबर मंत्रों की रचना की थी, इसे तंत्र–मंत्र के विद्वानों ने संस्कृत मंत्रों के सरलीकरण की संज्ञा दी थी। गुरु गोरखनाथ ने क्लिष्ट संस्कृत मत्रों का साधारण बोलचाल की भाषा में अनुवाद तो अवश्य किया था, पर वे अपने समय के संस्कृत के उद्‌भट विद्वान भी थे। उन्होंने उन मंत्रों को सिद्ध भी किया।

गुरु गोरखनाथ ने जब शाबर मंत्र को साधना पद्धति के रूप में स्वीकार किया तो स्वयं वे इसके लोकाचार जैसी पद्धतियों से पृथक ही रहे। यद्यपि यह अभी तक भी विवाद का विषय बना हुआ है कि गोरखनाथ के समय में कुलाचार पद्धति का प्रचलन हो चुका था या नहीं? फिर भी यह लगभग निश्चित है कि गोरखनाथ का जीवन योगाचार से ही ओत–प्रोत था, यौनाचार से नहीं। उन्होंने इसे साधना में बाधक ही माना है। वे स्वयं जीवन भर इससे दूर ही रहे।

गुरु गोरखनाथ का जीवन चरित्र बहुत विशाल है। उनके द्वारा किये गये कार्य अनगिनत है। उनके द्वारा रचित शाबर मंत्र सागर के समान है। आज भी गुरु गोरखनाथ की कृपा और शाबर मंत्र शक्ति से निःसंतानों को पुत्र, निर्धन को माया और रोगियों को कंचन सी काया पाते देखा गया है।

गुरु गोरखनाथ कितने अद्‌भुत चमत्कारों से सम्पन्न थे। उनका गिनना न केवल कठिन वरन् असंभव भी है। हम उनकी ख्याति से समझ सकते हैं कि वे अनेक गुणों की खान थे। गुरु गोरखनाथ आज भी अपने अच्छे गुणों व चमत्कारी व्यक्तित्व के कारण ही पूजे जाते हैं।

सद्‌गुरु गोरखनाथ के शिष्यों में सामान्य जन थे तो उज्जैन के महाराजा भरथरी भी थे। भरथरी और भर्तृहरि में जो उच्चारण भेद है, वह लोक के मुख सुख का प्रभाव है। कुछ विद्वान गोरख को लगभग 7वीं शताब्दी में होने का तर्क गोरख और भर्तृहरि (भरथरी) को भी उतना पश्चात् सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, जो प्रमाणिक नहीं है। मच्छंदरनाथ का समय भी पहली शताब्दी प्रारम्भ का मान्य हैं और गोरख उन्हीं के शिष्य थे। इसी गोरख ने नाथपंथ की स्थापना की।

महायोगी गोरखनाथ के नाम से प्रायः सभी परिचित हैं। वह योग विद्या के

परमवेत्ता और आचार्य थे। इनका शुद्ध नाम श्री गोरखनाथ था। इनके द्वारा रचित 'गोरक्ष–संहिता' योग ग्रंथों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

इनका जन्म विक्रम की दशम शताब्दी में हुआ था। यह आयोनिज माने जाते हैं। परमयोगी भगवान मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा से इनकी उत्पत्ति हुई थी। उन्हीं से इन्होंने योग विद्या ग्रहण की थी।

योगीराज मत्स्येन्द्रनाथ ने शाबर मंत्रों की रचना की थी। उन्हें भगवान भास्कर से वर प्राप्त था कि तुम 'मुझसे सम्बन्धित मंत्र का जप करोगे तो तुम सिद्धि को प्राप्त हो जाओगे और तब मैं तुम्हारी सहायता में तत्पर रहूँगा।'

भगवान भास्कर के निर्देशानुसार उन्होंने मंत्र रचकर सिद्ध कर लिया। एक बार तीर्थ–यात्रा करते हुए वे बंगाल में जा पहुँचे। वहाँ चन्द्रागिरि नाम के ग्राम में सर्वोप दयाल नामक एक ब्राह्मण रहता था जो कि सदाचारी और ईश्वर भक्त था। उस ब्राह्मण की पत्नी का नाम सरररस्वती था। वह सुन्दर, सुशील, पतिव्रता और समझदार थी, किन्तु कोई संतान नहीं थी। इसलिए पति–पत्नी दोनों ही दुःखी थे। फिर भी वे यथाशक्ति परोपकार और अतिथि–सेवा में लगे रहते थे।

एक दिन मत्स्येन्द्रनाथ जी ने उनके द्वार पर भिक्षा माँगी। 'अलख' की पुकार सुनकर सरस्वती भिक्षा लेकर द्वार पर गई। वहाँ उसने एक अत्यन्त तेजस्वी योगी को खड़े देखा। भिक्षा देकर वह उनकी ओर याचना भरी दृष्टि से देखने लगी।

योगीराज समझ गये कि यह महिला किसी प्रकार दुःखी है। उन्होंने पूछा–देवी! तुम्हें क्या कष्ट है? सरस्वती बोली– 'महाराज! मुझे और तो कोई दुःख नहीं है, केवल संतान की ही चिंता है। आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे मुझे पुत्र की प्राप्ति हो सके।'

मत्स्येन्द्रनाथ ने 'अच्छा' कहकर झोली से थोड़ी भस्म निकाली और सरस्वती को देते हुए समझाया– 'इस भस्म को खीर में मिलाकर ऋतु स्नान के बाद रात्रि के समय सेवन करने से तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। तुम्हारे यहाँ साक्षात् हरि भगवान अंशावतार रूप से प्रकट होंगे। वह समस्त ऋद्धि–सिद्धियों के स्वामी होंगे। मैं बारह वर्ष के पश्चात् पुनः इस स्थान पर आकर उसे उपदेश दूँगा।

सरस्वती ने भस्म लेकर उन्हें प्रणाम किया। वे भिक्षा लेकर चले गये। तब उसने घर में आकर भस्म को रख लिया। फिर दोपहर के कामकाज से निपटकर बैठी ही थी कि कुछ पड़ोसिन सखियाँ उसके पास आयी। अन्य बातें चली तो सरस्वती ने योगी से भस्म प्राप्त होने की भी चर्चा की और वह भस्म उन्हें दिखाई।

तभी एक सहेली ने कहा– 'अरे बावली हुई बहिन! इन जोगी–जतियों का भी कुछ ठिकाना है। न जाने क्या दे जाँये? बहुत बार सुनते हैं कि अमुक साधु ने किसी को वश में करके घर से उड़ा लिया तो किसी ने शत्रु के कहने से विष ही खिला दिया। कोई मोहन–मंत्र के द्वारा मुग्ध करके घर का मालमता लेकर ही चला गया। इससे तुम स्वयं सच लो कि उसका कहीं कोई प्रतिकूल फल न निकल आये।'

अन्य सहेली बोली– न जाने कितनी सीधी–साधी स्त्रियाँ इन साधुओं के चक्कर में अपना धन–धर्म खो बैठती हैं। जब लूट हो जाती है, तब पुकार से भी क्या लाभ हो सकता है ? न जानें कितनी भयंकर घटनाएँ घटित हो चुकी हैं, इन साधु–संत बनने वाले ढोंगियों की कृपा से। इस प्रकार किसी ने कुछ कहा तो किसी ने कुछ। किन्तु किसी ने भी यह परामर्श नहीं दिया कि भस्म खाकर तो देखो, हो सकता है कि काम बन जाय।

सरस्वती शंकित हो गई। उसने सोचा– जो कुछ यह कह रही है, वह कुछ मिथ्या नहीं है। घटनाएँ तो ऐसी मैंने भी बहुत सुनी हैं, किन्तु मेरा हृदय कहता है कि वह साधु ऐसा नहीं हो सकता। इसके मुख पर तेज टपक रहा था। फिर भी मैं क्यों झंझट में पड़ूँ, जिसमें हानि की सम्भावना हो।

ऐसा विचार कर सरस्वती ने उस भस्म को न खाना ही उचित समझा। वह सहेलियों के बहकावे में आकर महायोगी प्रदत्त उस भस्म को ग्राम के बाहर बने एक गड्ढ़े में डाल आई। यह उसका दुर्भाग्य ही था कि उसने प्राप्त हुए अभीष्ट फल को स्वयं ही नष्ट कर दिया। उसके भाग्य में बन्ध्या रहना ही लिखा था तो भस्म खाती ही कैसे?

परन्तु, महायोगी– प्रदत्त उस अमोघ भस्म का प्रभाव तो होना ही था। जिस गड्ढ़े में भस्म डाली थी, उसमें ग्राम के स्त्री–पुरुष गोबर आदि कूड़ा कचरा डाल दिया करते थे। इसलिए भस्म को बीज रूप में अंकुरित होने की वहाँ अच्छी सुविधा थी। किन्तु भस्म रूप वह बीज धीरे–धीरे ही अंकुरित हो रहा था। उसका विकास इतनी धीमी गति से हो रहा था कि उस ओर किसी का ध्यान न हो सका। इस प्रकार एक–एक दिन बारह वर्ष का समय व्यतीत हो गया। सरस्वती भी उससे अनजान बनी हुई संतानहीन होने का दुःख भोग रही थी।

बारह वर्ष व्यतीत होने पर योगीराज मत्स्येन्द्रनाथ को सरस्वती को दिये हुए अपने वचन की याद आयी और वे उसके पुत्र को उपदेश करने के विचार से चन्द्रागिरि नामक

ग्राम की ओर चल पड़े। उन्होंने सोचा कि सरस्वती को पुत्र की प्राप्ति हो चुकी होगी और वह इस समय ग्यारह वर्ष से अधिक आयु का होगा।

सरस्वती के घर पहुँचकर उन्होंने उसके द्वार पर अलख जगाया। उसने सोचा कि कोई अतिथि भिक्षार्थ आया होगा, इसलिए भिक्षा लेकर द्वार पर गई और वहाँ बारह वर्ष पूर्व आये हुए उसी योगी को खड़ा देखा जो पुत्रोत्पत्ति के लिए अभिमंत्रित भस्म दे गया था। उसे तुरन्त उस बात की याद आ गई।

महायोगी को देखकर सरस्वती को भय हुआ कि यह भस्म के फेंक दिये जाने की बात जानकर कहीं रुष्ट न हो जाय और शाप न दे बैठे। इसलिए उसने चुपचाप भिक्षा देने के लिये हाथ बढ़ाया। किन्तु उन्होंने भिक्षा न लेकर, बालक के विषय में ही प्रश्न किया। बोले– माता! अब तो तेरा बालक सयाना हो गया होगा? उसे नहीं दिखायेगी मुझे?

सरस्वती क्या कहे, यह समझ नहीं आ रहा था। योगीराज ने उसे मौन देखकर पुनः पूछा–'उत्तर दे माता। क्या पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ?' अथवा जन्म लेकर नष्ट हो गया। मेरे द्वारा दी हुई सिद्ध भस्म निष्फल नहीं हो सकती, ऐसा मेरा विश्वास है।

विवश सरस्वती को सब बात सत्य कहनी पड़ी। वह कहती हुई भय से काँप रही थी। परन्तु मत्स्येन्द्रनाथ ने उस पर क्रोध नहीं किया। बोले –'माता! तुमने कहाँ फेंका था उस भस्म को?'

उसने विनम्रता से उत्तर दिया– महाराज! ग्राम के बाहर एक गड्ढ़ा है, उसमें कूड़ा–कर्कट, गोबर आदि डाला जाता है। वहीं उस भस्म को फेंक दिया था। उन्होंने कहा– 'चलो, वह स्थान मुझे दिखाओ तो सही। वहाँ कोई प्राणी अवश्य उत्पन्न हुआ होगा।'

सरस्वती बोली– वैसे तो वहाँ गोबर आदि के अतिरिक्त और कुछ होने की बात देखी–सुनी नहीं गई। फिर भी आप देखना चाहते हैं तो चलकर देख लें।

'चलो, कहकर मत्स्येन्द्रनाथ उसके साथ चल दिये। ग्राम के बाहर बने हुए उस गड्ढ़े को ध्यान से देखने के पश्चात् उन्होंने उसकी ओर मुख किये हुए ही आवाज लगाई– हे हरि नारायण! 'हे सूर्यपुत्र! यदि उत्पन्न हो चुके हो तो गड्ढ़े से बाहर आ जाओ। विलम्ब न करो।'

पहले तो उत्तर न मिला। किन्तु तीसरी बार उसी प्रकार पुकारने पर गड्ढ़े के भीतर से सुनाई दिया– 'मैं उत्पन्न हो चुका हूँ और इस कूड़े–कचरे तथा गोबर के नीचे छिपा हुआ बैठा हूँ।'

सरस्वती और अन्य उपस्थित व्यक्तियों को गड्ढ़े में से आई हुई आवाज को सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। मत्स्येन्द्रनाथ के संकेत पर ग्रामवासियों ने कूड़ा, गोबर आदि हटा दिया। अब देखते क्या हैं कि उसमें ग्यारह–बारह वर्ष की आयु का अत्यन्त तेजस्वी बालक बैठा हुआ है।

मत्स्येन्द्रनाथ बोले– 'पुत्र! 'अब बाहर निकल आओ। तुम्हारी उत्पत्ति मेरे द्वारा दी गई अभिमंत्रित भस्म से हुई है, तुम सूर्य भगवान के अंशावतार हो। गऊ गोबर के द्वारा तुम्हारा नाम गोरक्षनाथ या गोरखनाथ रखना उचित होगा।

बालक ने गड्ढ़े से बाहर मत्स्येन्द्रनाथ के चरण स्पर्श किये और उन्होंने भी उसे उठाकर सिर पर हाथ फेरते हुए कहा– पुत्र! तू महायशस्वी होगा।

बालक को देखकर सरस्वती की आँखों में आँसू छलक उठे। उसे अपनी मूर्खता पर पछितावा होने लगा। उसने योगीराज की ओर याचना भरी दृष्टि से देखा।

मत्स्येन्द्रनाथ ने कहा– 'माता! अब क्या हो सकता है? तुम्हारे भाग्य में पुत्र–सुख था ही नहीं, तो कहाँ से मिलता। अपनी भूल का दंड मनुष्यों को स्वयं ही भोगना होता है। अब तो तुम्हें शांत भाव से यह समझना चाहिए कि ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी।'

सरस्वती रोने लगी। योगीराज ने उसे सांत्वना देते हुए कहा– 'अब तुम परमात्मा का भजन करो। सद्गति का यही सर्वोत्तम उपाय है। पुत्र भी सद्गति के उद्देश्य से ही अपेक्षित है। किन्तु पुत्र भी कुपुत्र हो तो जीवन भर जलाता है और कुगति का कारण बन जाता है।

इस प्रकार सरस्वती को समझा–बुझाकर शांत करने के पश्चात् उन्होंने गोरखनाथ को नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित किया और बोले– 'चलो पुत्र! अब यहाँ ठहरने का कुछ प्रयोजन नहीं है।' 'जो आज्ञा गुरुदेव! कहकर गोरखनाथ उनके साथ हो लिये। मत्स्येन्द्रनाथ ने पुनः तीर्थयात्रा आरम्भ की।'

गोरखनाथ को साथ लिये तीर्थाटन पर चलते हुए मत्स्येन्द्रनाथ दिन में चलते और रात्रि में बस्ती से बाहर किसी मंदिर, मठ अथवा अन्य पवित्र स्थान पर ठहर जाते। प्रायः एक रात्रि से अधिक स्थान पर न ठहरते थे।

इस प्रकार उन्होंने उत्कल राज्य में प्रवेश किया। उनकी इच्छा भगवान जगन्नाथजी के दर्शन करने की थी। उस मार्ग में वे एक ग्राम के बाहर किसी जीर्ण मंदिर में ठहर गए। उस स्थान का नाम कनकगिरि (पर्वत) के नाम पर 'कनक–गिरि' ही था।

मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ की गुरुभक्ति की परीक्षा लेना चाहते थे। किन्तु मार्ग में वे उसके लिए उचित अवसर न पा सके। यहाँ इसके लिये उपयुक्त परिस्थिति समझकर उन्होंने गोरखनाथ को पास बुलाकर कहा– 'वत्स!' मुझे बड़े जोर से भूख लगी है। यद्यपि इसका कारण समझ में नहीं आ रहा है, तथापि भूख शांत होना आवश्यक है।

गोरखनाथ ने सादर निवेदन किया–आज्ञा कीजिए गुरुजी! मुझे क्या करना चाहिए?' मत्स्येन्द्रनाथ बोले– 'ग्राम में जाकर भिक्षा माँग लाना ही इसका उपाय हो सकता है। इसलिए तुम अभी इसके लिए ग्राम में जाकर भिक्षा माँगो।'

गुरु की आज्ञा पाते ही गोरखनाथ ग्राम की ओर चल दिये। उन्होंने अनेक घरों के द्वार पर अलख जगाया, किन्तु कहीं से भी भोजन न मिल सका। किन्तु एक ब्राह्मण के यहाँ कुछ अधिक चहल–पहल देखकर वे वहाँ पहुँचे।

उस समय वहाँ भोजन का कार्यक्रम चल रहा था। श्राद्ध में तर्पणादि के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराया जा चुका था। यह जानकर गोरखनाथ ने वहाँ भिक्षा मांगना उचित समझा और द्वार पर खड़े होकर अलख का उच्चारण किया।

द्वार पर अतिथि को भिक्षा माँगते हुए देखकर गृहस्वामिनी को प्रसन्नता हुई और वह अपने यहाँ बने हुए सब प्रकार के पदार्थ पर्याप्त मात्रा में लेकर द्वार पर गई और गोरखनाथ को भिक्षा दे दी।

गोरखनाथ अनेक प्रकार के व्यंजन प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए और भिक्षा लेकर गुरुजी की सेवा में शीघ्रता से पहुँचे। मत्स्येन्द्रनाथ ने भी भिक्षा में अनेक प्रकार के रुचिकर पदार्थ लाये हुए देखकर बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की।

योगीराज ने भोजन आरम्भ किया। वे एक–एक वस्तु का स्वाद लेते हुए उसकी प्रशंसा करते जाते थे। उसमें उड़द की दाल के बने हुए दही–बड़ी तो उन्होंने बहुत ही अच्छे बताये तथा भोजन समाप्त होने के पश्चात् बोले– 'वत्स गोरक्षनाथ! यद्यपि भोजन की सभी सामग्री बहुत स्वादिष्ट और रुचिकर लगी, तथापि यह बड़े तो बहुत ही अच्छे लगे। मेरी इच्छा अभी दो एक बड़े और खाने की है। इसलिए जहाँ से यह भिक्षा मांगकर लाये हो, वहीं पुनः जाकर कुछ बड़े माँग लाओ।

गुरु की आज्ञा की उपेक्षा करना तो गोरखनाथ के स्वभाव में नहीं था। वे तुरन्त वहाँ से चल दिये, किन्तु चित्त में एक शंका अवश्य थी कि कहीं गृहस्वामिनी देने से इंकार न कर दे।

फिर भी उस द्वार पर पहुँचकर उन्होंने अलख का उच्चारण किया। गृहस्वामिनी द्वार पर आई तो उसने वही योगी खड़ा देखा, जिसे वह कुछ समय पहले ही भिक्षा में पर्याप्त भोजन दे चुकी थी।

गृहस्वामिनी को कुछ रोष हुआ और वह कठोरतापूर्वक बोली– तुम अभी तो यहाँ से पर्याप्त मात्रा में उत्तम भोजन लेकर गये थे, फिर पुनः क्यों आ गये? क्या उसमें तुम्हारा पेट नहीं भरा?

गोरखनाथ को जो शंका थी वही हुआ। फिर भी गुरु की आज्ञा के पालनार्थ उन्होंने अत्यन्त विनीत शब्दों में निवेदन किया– 'माता! मेरे साथ मेरे गुरुजी हैं, जो कि ग्राम से बाहर एक निर्जन स्थान पर ठहरे हुए हैं। आपके द्वारा दी हुई भोजन सामग्री मैंने उनके समक्ष रख दी, जिसे खाकर वे अत्यन्त तृप्त और प्रसन्न हुए हैं।'

वह बोली– 'फिर अब क्या चाहते हो?'

गोरख ने कहा– 'गुरुजी की इच्छा दो–एक बड़े और खाने की है। वह उन्हें बहुत अच्छे लगे हैं। इसीलिए आप केवल इतनी ही कृपा करें।'

ब्राह्मणी क्रोधित हो गई। उसने कटुतापूर्वक कहा– 'जोगी! तू बड़ा जिह्वा लोलुप और पेटू लगता है। इतना सारा सामान खाकर भी तेरी तृप्ति नहीं हुई, यह आश्चर्य की बात है। बड़े खाने के लिये तेरी जीभ लहरें ले रही है और नाम लेता है अपने गुरु का।

गोरखनाथ बोले– 'माता मैं सत्य कह रहा हूँ। मैंने तो आपकी दी हुई भोजन सामग्री छुई अवश्य है, किन्तु चखी नहीं है। मैं गुरुजी की इच्छा और आज्ञा से ही आपके द्वार पर पुनः उपस्थित हुआ हूँ।'

गृहस्वामिनी ने तिरस्कार भरे स्वर में कहा– 'तू जोगी नहीं, ठग मालूम होता है। अन्यथा जोगी तेरे जैसे पेटू पूजक नहीं होते, वे दूसरों की भलाई सोचते हैं।'

गोरखनाथ इतनी कठोर बात सुनकर भी शांत बने रहे। उन्होंने विनम्र शब्दों में कहा– 'माता! तुम्हारी कोई कठिनाई है तो मैं उसे दूर करने को तत्पर हूँ। तुम जो चाहो मुझसे मांग लो, परन्तु मेरे गुरुजी की इच्छा पूर्ण करने के लिए कम से कम एक बड़ा तो मुझे दे ही दो।'

गृहस्वामिनी ने कुछ नम्र होते हुए कहा– 'जोगी तेरे पास है ही क्या, जो मुझे देगा।' वे बोले– 'मेरे पास कुछ न होते हुए भी सब कुछ है माता!' आप जो चाहो, वही मैं दे सकता हूँ। किन्तु आप मुझे केवल एक बड़ा दे दीजिये।

ब्राह्मणी ने कुछ व्यंग्यात्मक ढंग से कहा— 'अच्छा तो एक आँख के बदले में एक बड़ा तुझे दे सकती हूँ। बोल, देगा अपनी आँख ?'

'दूँगा कहकर गोरखनाथ ने दृढ़ता व्यक्त की। ब्राह्मणी बोली— 'लाती हूँ बड़ा, तब तक आँख निकालकर रखो ।'

वह भीतर गई और इधर गोरखनाथ ने अपने आँखों में बाँये हाथ की अँगुली डालकर पुतली खींच ली। नेत्र से खून का प्रवाह निकल पड़ा। ब्राह्मणी बड़ा लेकर आई तो यह दृश्य देखकर दंग रह गई।

उसने भय—कम्पित स्वर से कहा—'ले यह बड़ा!'

गोरखनाथ ने दायें हाथ में बड़ा लेकर, बायें हाथ से नेत्र की पुतली उसकी ओर बढ़ाई। गृहस्वामिनी उधर ध्यान दिये बिना ही शीघ्रता से घर में घुस गई।

उन्होंने आवाज दी— 'माता ! यह आँख तो लेती जाओ।' मैं खड़ा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

गृहस्वामिनी को अपनी बात का पश्चाताप हुआ। कुछ देर सोचती रही कि क्या किया जाय। योगी को बराबर पुकार करते देखकर उसने भीतर से ही कहा— 'जा जोगी ! मुझे नहीं चाहिए तेरी आँख। मुझे अपने वचनों पर स्वयं ही अत्यन्त खेद है।'

यह सुनकर गोरखनाथ वहाँ से चल दिये। वे यह नहीं चाहते थे कि गुरुजी को इस घटना का कुछ पता चले, इसलिए उन्होंने अपनी आँख धोकर उस पर जल में भींगा हुआ कपड़ा रखकर पट्टी बांध ली।

अब उन्होंने गुरुजी के पास आकर भिक्षा में पुनः प्राप्त बड़ा उनके समक्ष रखकर निवेदन किया— 'गुरुजी! एक ही बड़ा मिल सका है, यह लीजिये।'

मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने समक्ष बड़ा रखते हुए गोरखनाथ की एक आँख पर पट्टी बँधी देखी तो पूछ बैठे— 'वत्स! आँख पर पट्टी क्यों बँधी है?'

गोरखनाथ ने घटना को छिपाने के उद्देश्य से कहा— 'गुरुदेव? कोई विशेष बात नहीं, थोड़ा दर्द—सा हो रहा था।'

गुरुजी ने कहा—परन्तु दर्द क्यों हो रहा है? यह बात स्पष्ट कहो पुत्र!

गोरखनाथ बोले —'गुरुदेव! मैं जहाँ से भिक्षा माँगकर लाया था, वहाँ पुनः जाने पर गृहस्वामिनी कुछ रुष्ट हुई और वह एक आँख के बदले में एक बड़ा देने पर राजी हुई।'

शिष्य के साथ घटित घटना सुनते हुए मत्स्येन्द्रनाथ को कुछ क्षोभ हुआ। गोरखनाथ को शंका हुई कि गुरुजी उसका कुछ अनिष्ट न कर बैठें, इसलिए विनम्रता से बोले– 'गुरुजी ! यह घटना कुछ भ्रांति से ही घटी है, इसमें गृहस्वामिनी का कोई दोष नहीं है। मेरा निवेदन है कि आप उसे क्षमा कर दें।'

मत्स्येन्द्रनाथ बोले– 'जब तुम्हीं ने उसे क्षमा कर दिया, तब मैं भी उनका अनिष्ट क्यों करुँगा वत्स? परन्तु तुम्हारी उदारता देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ।'

गोरखनाथ बोले –'यह गुण आपके द्वारा ही दिया हुआ है गुरुदेव! अन्यथा मुझमें ऐसे विचार कहाँ से आते?'

गुरुजी ने पुनः कहा– 'बेटा गोरखनाथ! अब मुझे पूरा विश्वास हो गया है, तुम परम गुरु–भक्त हो और गुरु के कार्य में तुम अपने प्राण भी दे सकते हो। इसलिए मैं तुम्हें सर्व विद्याओं में पारंगत कर दूँगा।'

गोरखनाथ ने सिर झुका दिया। उनका आभार व्यक्त किया। तभी मत्स्येन्द्रनाथ ने उन्हें अपने सामने बैठने का आदेश दिया और पूछा– 'आँख की पुतली कहाँ है?

उन्होंने कहा– 'यह रही गुरुदेव!'

मत्स्येन्द्रनाथ ने पुतली को जल में डुबोकर स्वच्छ किया और नेत्र गोलक में यथा स्थान लगाकर मंत्र युक्त किया। जिससे नेत्र यथावत् स्वच्छ हो गया। दर्द भी मिट गया और पूर्ववत् दिखाई देने लगा।

गुरुजी को सुयोग्य शिष्य की प्राप्ति हो गई थी। वह परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो चुके थे। इसलिए उन्हें सभी प्रकार के निगमागम की शिक्षा देकर पूर्ण विद्वान बना दिया। अब गोरखनाथ भी महायोगी और परमसिद्ध बन चुके थे।

भले ही यह प्रसंग मिथक लगे। अतिरंजित लगे अथवा अव्यवहारिक लगे या फिर इसके कुछ प्रसंग अप्रासांगिक लगें यथा गोरख को सूर्य का अंशावतार बताना किन्तु लोक तो लोक है। वह जो कहे वह आनंददायक और लोकमय हो जाता है।

## मुझको मिला है तारन हारा

*कबीर कहते हैं हम न महिरें मरिहें संसारा।*
*हमक मिला है तारन हारा।*

कुछ लोग इसलिए नहीं मरते हैं, क्योंकि उनको तारनहार मिल गया होता है। कबीर को भी तारनहार मिल गया था। वे कैसे मर सकते थे? गोरख उन्हीं अमर पुरुषों में से एक महापुरुष हैं, जो अमर हो गए हैं। स्वयं पार्वतीजी ने आशीर्वाद देकर उन्हें वरदान दिया था–

*जतरे सूरज चन्द्रमों धरा सेस रे माथ।*
*गोरख तू रहिजे अमर, हर जुग में साखात।।*

सचमुच गोरख हर युग में साक्षात् दिख जाते हैं।

*जुग–जुग में गोरख विया, जुग–जुग विक्रमजीत।*

गोरख और विक्रमादित्य प्रत्येक युग में हुए। ये दोनों अमर पात्र व्यक्ति से विशेषण बन गए। पद से पदवी बन गए। यश के प्रतीक बन गए। यशस्वी बन गए।

प्रस्तुत ख्यात मैंने वर्षों पूर्व एक नाथ योगी से सुनी और पढ़–सुनकर लिखी थी। संतूरनाथ नाम था जोगी था। वह सारंगी पर भरथरी, गोपीचंद और कई भजन गाता था। उसके पास एक हस्तलिखित पोथी भी थी। उसमें सब लिखा था। बहुत मनुहार के पश्चात् मैंने उसे 201 रुपये की भेंट देकर तैयार किया था कि वह मुझे गोरखनाथ की यह ख्यात लिखने दे। मैं 1998 के 18–19 नवम्बर उसके साथ चित्तौड़ में रहा। उसका भोजन व रात की मदिरा व्यवस्था मेरे जिम्मे थी। दो रातों व दो दिनों में मैं यह गाथा और कुछ भरथरी गाथा के अंश लिख पाया था।

गोरख गाथा जस की तस मैंने लिख ली थी। इसमें 125 साखियाँ हैं। गोरख, नाथ पंथ के उत्थान–अवसान, लोक स्वीकृति–अस्वीकृति, सिद्धों–नाथों, कपटी सिद्ध नाथों आदि संदर्भों पर यह गाथा अत्यंत मुखर है। 17 वर्षों तक यह गाथा मेरी कालकोठरी में बंद पड़ रही। न साज न सम्हार। मैं तो इसे भूल भी गया था। वस्तुतः यह मेरे जखीरे में गुम हो गई थी।

यदि श्री अशोक मिश्र जी ने मुझे 'नाथ पंथ की लोक स्वीकृति' विषय पर लिखने के लिए प्रेरित नहीं करते, तब यह स्वतः ही नष्ट हो जाती या फिर दीवाली की सफाई में कचरा बन जाती, अर्थात् सोना राख बन जाती।

ख्यात में मिथक है। पुराणों में भी तो है। फिर यदि गोरख ख्यात में शंकर या नाथ ने थोड़ा बहुत लोकरंजन और लोक आस्था को ध्यान में रखते हुए ऐसा किया है तो अनुचित नहीं किया। वह लोक गायक तो रहा ही था, स्वयं नाथ भी था। गोरख के प्रति पारंपरिक लोक धारणाओं का ही तो निर्वाह किया है उसने।

मिथक की बात करें तो लोक परंपरा में नाथ पंथ को वैदिककाल से चला आ रहा पंथ अथवा संप्रदाय माना गया है। क्या नाथ शब्द के कारण हम नाथ पंथ को प्राचीन सम्प्रदाय या धर्म मान लें ? क्या हम ऐसा मान लें कि नाथ पंथ तो अतिप्राचीन काल से चला रहा था। जिसे गोरख ने पुनर्जीवित किया अथवा प्रचारित कर सर्वप्रिय एवं सर्व स्वीकार्य बना दिया? जैसा जैन धर्म को भगवान महावीर स्वामी ने सर्वज्ञात एवं स्वीकार्य कर धर्म को पुष्ट एवं सर्वमान्य किया, जबकि उनसे पहले भी जैन धर्म अस्तित्व में था। इस विचार पर भी प्रश्न चिन्ह लग सकता है।

मैंने तो जैसा लोक कहता है तथा जैसा नाथ पंथ के प्रचारक–विचारक कहते हैं, वैसा अपने इस ग्रंथ में प्रस्तुत कर दिया है।

विद्वानों के गरिष्ठ और परस्पर विरोधी मत देकर मैं न तो स्वयं को भटकाना चाहता हूँ और न पाठकों को लोक की सहजता बनी रहे। यही भाव है।

जो नष्ट हो रहा है, उसे सहेजकर लोक में सुरक्षित कर देना मेरा अभीष्ट है। मैं न तो अपना मत स्थापित करना चाहता हूँ, न उसे शोध ग्रंथ जैसा बोझिल। ऐसे ग्रंथ तो अनेक है। मैं डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थवाल, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पं. परशुराम चतुर्वेदी जैसे महान विद्वानों को प्रणाम करता हुआ यह लोक ख्यात आपके हाथों में अर्थात् लोक से प्राप्त कर पुनः लोक के हाथों में समर्पित कर स्वयं को धन्य मानता हूँ। ऐसा करके मैं मालवी माता का थोड़ा सा ऋण अपने सर से घटा रहा हूँ। बस!!

## सदगुरु गोरखनाथ री ख्यात

*वाणी बगसो दास ने हे हिंगलाजाँ मात।*
*गाथा लीखूँ नाथ री, धरो सीस पे हात ।।1।।*
*सद्‌गुरु गोरखनाथजी, जो नाथाँ रा नाथ।*
*आदिनाथ वंदन करूँ, नमूँ मछंदर नाथ ।।2।।*
*जो भी लीखूँ साँच वे बैठो सबदाँ आय।*
*सुरसत गणपति सद्‌गुरु, गोरख होओ सहाय।।3।।*
*कवित छंद जाणूं नहीं, नहिं भासा रो ज्ञान।*
*लिखण चहूँ गुण आप रा, राख लेवजो मान।।4।।*
*सिद्धां रा वन्दन करूँ, नव नाथाँ रे धोग।*
*कलम विराजो सुरसताँ, करो लीखणे जोग।।5।।*

*जद बी धरती ऊपराँ, पाप घणो वद जाय।*
*आडम्बर अतिचार रो, अंध–धुँध गेहराय।।6।।*
*मारग तक सूझे नहीं, सूझे नही उपाव।*
*त्राहिमाम् धरती करे, गोमाता रंभाव ।।7।।*
*धरम ऊपराँ आ पड़े, पापा कुमति अतिबाज।*
*धरती री आरत सुणे, जगती रा सरताज।।8।।*
*पुण्य गल्यो पापो बढ़ो यो, पग–पग देवत पीठ।*
*अवडम्बर एसो बढ़यो, पंडा होया डीट।।9।।*
*आसण डोल्यो ब्रहम रो, सागर उठ्यो तुफान।*
*सेस महे सुरेस सब, दीखे सब बेभान।।10।।*
*धरा सेस रे सीस पे, डगमग डोलण होय।*
*ढाब सके नहिं सेसजी, हे सहाय नहिं कोय।।11।।*
*सुभ नखतर सुभ दन गड़ी, गोरख रो औतार।।*
*सिव विसनू बरमा सबै, दियो सत्य रो सार।।12।।*
*विसजी रो तो अंस हे, पारवताँ हे भात।*
*हिंगलाजा री सगत हे, अटल तपस्या दात।।13।।*
*मधर–मधर बाजण लग्या, घंटी संख घड़याल।*
*आणद उपज्यो चहुँ दिसाँ, धरती वई निहाल।।14।।*
*गयनाँ चलकी बीजरी, इन्दर वरस्यो नेग।। 5।।*
*चरकलियाँ चेहकण लगी, हिरदै उठी उमंग।*
*मोरड़या नर्तन करे, लियाँ मोरणी संग।।16।।*
*बाँगा में खुसबू उड़ी, खिल्या फूलड़ा खूब।*
*बिरछ झूम लूमे घणा, हरसित होई दूब।।17।।*
*मधर–मधर चाल्यो पवन, तन–मन ने हरसाय।*
*बागाँ नाचे फुल परी, भंवरा गुन–गुन गाय।।18।।*
*तीन देव आसीस दे, ब्रहमा विसन महेस।*
*तीन लोक सतखंड रो, उमग्या हगरा देस।।19।।*
*सुर जणियाँ नरतन करे, देवत फुल बरसाय।*
*नारद सारद मन मुदित, मधरा राग बजाय।।20।।*
*गोरख प्रगटा जगत में, सत्त–धरम रे काज।*
*अवडम्बर मिटसी अवस, खरा वेवसी साज।।21।।*
*सुगन विया सुभरा सबै, होया मंगलाचार।*

*गोरख प्रगट्या जगत में, आदिनाथ औतार।।22।।*
*बरस बारवों लागताँ, गोरख वियो सुचेत।*
*जा पौंच्यो कवलास पे, सिव दरसन रे हेत।।23।।*
*माता रा दरसन विया, पूजी चित हिंगलाज।*
*माता ने आसीसियो, पूछ्यो आवण काज।।24।।*
*खोरा में माता लियो, खूब लड़ाया लाड़।*
*हिंगलाजा दरसन दियो, प्रगटी ऊँच पहाड़।।25।।*
*गोरख जाओ खोह में, हे म्हारो अस्थान।*
*बारा बरसाँ तप करो, करो सिवाँ रो ध्यान।।26।।*
*चेतो रखजो धुर धरम, त्रिकुटी रेहवे भान।*
*एकनिस्ट चित राखजो, गोरख रखजो ज्ञान।।27।।*
*सिद्ध बुद्ध वै आवजो, जाण सत्त रो सार।*
*जोगणिया रगसा करें, सदा गुफा रे द्वार।।28।।*
*भीतर आ पावे नहीं, कोई विघ्न विकार।*
*बारा बरसाँ रेवजे, गोरख तू निरहार ।।29।।*
*बारा बरसाँ बीतयाँ, खोले सिवाँ समाध।*
*चरण दण्डवत कर पछे, करजे अरज अराध।।30।।*
*गोरख तू सत्त साधजे, हिरदे रखजे धीर।*
*करुणा दया साँच अर, शतचित परिहत सीर।।31।।*
*अतरे केह हिंगलाज ने, दियो अटल आसीस।*
*गोरख ने कर जोड़ता, नमतो करोय सीस।।32*
*मुलकाती हिंगलजयाँ, तुराँ वई आलोप।*
*एक जोत बलती दिखी, चारी खूँटाँ ओप।।33।।*
*पारवताँ ने धोग दे, गोरख कर्‌यो विचार।*
*दृढ़ता राखी जीव में, साँच रिंदै में धार।।34।।*
*गयो गुफों के भीतराँ, हरसति हिरदो राख।*
*गिंलाजा पत राखजे, माता रखजो साख।।35।।*
*बारा बरसाँ बीतयाँ, गोरख खुली समाध।*
*हाथ जोड़ हिंगलाज री, आरत करती अराध।।36।।*
*तप तपयाँ रे बाद में, गोरख विया सुचन्न।*
*हिंगलाजाँ परग वई, कह्यो गोरक्ख धन्न।।37।।*
*गऊ री रगसा कारणे, हे थारो औतार।*

*हे म्हारो आसीस घणा, रेहसाँ थारे लार।।38।।*
*सबै इंद्रियाँ वसकरो, साँच रिदै में धार।*
*एकनिस्ट परब्रहम रो, करो जगत परचार।।39।।*
*अवडम्बर मेटो सबै, सहजी करजो चाह।*
*भूल्याँ ने बतलावजो, सदमारग री राह।।40।।*
*जाओ गोरख सुभ करो, हे म्हारो आसीस।*
*पारवताँ आसीस दे, ज्ञान दियो बगसीस।।41।।*
*गोरख ने दण्डवत कर्‌यो, कर्‌यो सुसंत गान।*
*माता बारक आप रो, सदा राखजो मान।।42।।*
*साँच–धरम छूटे नहीं, हिरदै रेहवे धीर।*
*जगमाता आसीस दो, हरुँ जगत री पीर।।43।।*
*आज्ञा ले जगमात री, गयो सिवाँ रे हाम।*
*दण्डवत कर आरत करी, हे जगपितु हे जाम।।44।।*
*माता ने देख्यो वठे, मुदित सिवाँ री जोड़।*
*गोरख औचक वै गयो, मेहलाँ आयो छोड़।।45।।*
*माता तुरताँ जाण गी, गोरख रो हिचकाम।*
*गोरख औचक क्युँ वियो, गौराँ सवरै धाम।।46।।*
*जठे वराजे सीवजी, पारवताँ हे संग।*
*माया रो परदो कराँ, करता रेहवाँ रंग।।47।।*
*सिव संग गौराँ ने दियो, गोरख ने वरदान।*
*जुगाँ–जुगाँ तक रेहवसी, गोरख थारो मान।।48।।*
*जतरे सूरज चन्द्रमो, धरा सेस रे माथ।*
*गोरख तू रहसें अमर, हर जुग में साखात।।49।।*
*सिवजी ने आदेसियो, जाओ गोरख धाम।*
*साँच धरम मति छोड़जे, अमर रेहसवी नाम।।50।।*
*थूँ हे म्हारो अंस वंस, यो ध्यान सदा रख लीजे।*
*सहजो–सहजे रेहवजे, गोरख गुमान कदी मति कीजे।।51।।*
*म्हारी सगति दूँ थने, हे पूरो आसीस।*
*क्रोध कपट करजे मति, मतो खजे सीस।।52।।*
*नमतो रेहवे नी मरे, ज्यूँ गोचर री दूब।*
*संध्या तई गायाँ चरे, सुबह खूब री खूब।।53।।*
*झंझड़ चाले जोर रो, नरम गोड़ नम जाय।*

*बड़ा–बड़ा ब्रिछ ढरि पड़े, झंझड़ नी सेह पाय।।54।।*
*साँच धरम री राखजो, गोरख हिरदै ओट।*
*कण रे बी सत धरम पे, कद्याँ न करजे चोट।।55।।*
*नाथ राखजो इंद्रियाँ, रहिजो साँचा नाथ।*
*नाथ अरथ स्वामी सुमति, जो सदै सनाथ।।56।।*
*पथ चलाजे साँचलो, सहजो दीजो ज्ञान।*
*जतरा बी सत धरम हे, करजे सब रो मान।।57।।*
*कुटिल कामना त्यागजे, करजे मति हंकार।*
*दीन–दुखी जण री सदा, करजे साज सम्हार।।58।।*
*अतरो दे सद्ज्ञान सिव, होया सहज समाध।*
*गोरख दण्डवत करताँ चाल्यो, आरत करी अराध।।59।।*
*माता ने आसीसियो, सुण लो गारख वात।*
*हिंगलाजाँ रा रूप में, निस–दन रहसाँ सात।।60।।*
*नुगरो कंद्याँ नी तर सके, हूकम आदिनाथ।*
*मछंदर गुरु थाप लो, होओ सुमत सनाथ।।61।।*
*नम–नम ने वंदन कर्‌यो, सुगम नमायो सीस।*
*गोरख सुभ–सुभ जावजे, माता दियो आसीस।।62।।*
*गोरख पउँच्यो गुरुकरण, गुफा पहाड़ाँ बीच।*
*भीतर दरस्या सद्‌गुरु, बैठ्‌याँ आखाँ मीच।।63।।*
*गोरख आयो जाणताँ, खोली सैज समाध।*
*गोरख ने दण्डवत कर्‌यो, आरत करी अराध।।64।।*
*आदिनाथ रो हुकुम पा, माता रो आदेस।*
*सद्‌गुरु शरणे आवियो, देओ साँचो भेस।।65।।*
*नाथ मछंदर ने कह्यो, सुण लो गोरख वात।*
*दैऊँ दीछा तुरत ही, कोल निभाजो सात।।66।।*
*धीर धरम छोड़ो मती, करजो मती गरुर।*
*आदिनाथ पत राखसी, रेहसी मान जरुर।।67।।*
*साँच वाच मन निर्मलो, धीरज हिरदै सीव।*
*गो रगसा करजो सदैं, समतो रखजो जीव।।68।।*
*आदिनाथ तो सीव हे, मूँ सविजी रो सिक्ख।*
*थें म्हारा सिख होवताँ, वैइ जासो पड़सिक्ख।।69।।*
*डर भौ हगरो मीटसी, वेसी चाणक जीव।*

थें जग ने चानण करो, सदा सिमरजो सीव।।70।।
पंथ चलाजो सहज रो, सहजा रहिजो नाथ।
धरती रो दुख मेटजो, नमतो रखजो माथ।।71।।
पेहला तो दण्डवत कर्यो, फेर नमायो सीस।
सद्गुरु ने किरपा करी, दियो सिद्ध आसीस।।72।।
अलख निरंजन मंत्र दे, दे दियो साँचो भेस।
जाओ गोरख भूधराँ, दे दीयो आदेश।।73।।
धरती ऊपर आवताँ, गोरख भण्यो ज्ञान।
सब धरमा रो सार ले, गोरख वियो सुजान।।74।।
सहज भाव सैजो कहन, सहजो दे उपदेस।
गोरख हिरदै धोक्यों, सदगुरु जी ने माथ।।
नाथ पंथ सुभ थरप्यो, सद्गुरु गोरखनाथ।।75।।
नाथ पंथ रो सार हे, साँच धरम री चाह।
अवडम्बर सब मेट्या, सूधी कर दी राह।।76।।
नाथ पंथ ने धारताँ, खूब वियो परचार।
लोक मानता खूब वी, पंथ वियो सविकार।।77।।
गोरख वाज्या सद्गुरु, सिद्धा रा भी सिद्ध।
चमत्कार होया घणा, पंथ वियो परसिद्ध।।78।।
जात पाँत री कारा भांगी, गोरख रो संदेस।
एक रगत एक सगत, फरको करूँ न लेस।।79।।
या धरती परवार हे, सब रो एकहि देस।
जामण कहिए पारवताँ, पितु अघोर महेस।।80।।
आदिनाथ सब रा धणी, नाथाँ रा भी नाथ।
सोइ ब्रहमा सोई विसनू, परमब्रह्म सुनाथ।।81।।
अरको–फरको जाणू कोयनी, सिवाँ नमाऊँ माथ।
नाथ पंथ रो सार वतायो, सद्गुरु गोरखनाथ।।82।।
हगरा दिवसाँ सुभ गणो, कस तेरस कस तीज।
तन–मन राखो निरमलो, गोरखनाथ कहीज।।83।।
नाथ पंथ ने जाणजो, सब धरमा रो सार।
अलख निरंजन जाण ले, सो जन उतरे पार।।84।।
अवडम्बर त्यागो सबै, सदमत राखो जीव।
सौ देवत पूजो मती, एक धणी एक पीव।।85।।

आदिनाथ सिव पूजताँ, मीटे सकल करेस।
सिव पूजो–पूजो सगत, पूजो विसन गनेश।।86।।
ओम रूप हे ब्रहम रो, सबै रूप इण माय।
हिरदा भीतर झाँकताँ, परम जोत दरसाय।।87।।
आँख मूंद चित्त धीरताँ, सद्मत धिरता लाय।
आदिनाथ सिव सिमरताँ, सहज समाध लगाय।।88।।
नाद बजे मुरली बजे, ढोलक बजे मृदंग।
बंकनाल अमरत झरे, प्रगटें विवधा रंग।।89।।
सूरज चन्दर नखतरा, भीतर नजराँ आय।
गगन मंडल अमरत झरे, तन अर मन सरसाय।।90।।
साधक ने सिद्धि मले, कपटी झोला खाय।
कपट अडम्बर साधताँ, जगती ने भरमाय।।91।।
खुद डूबे डूबै जगत, करे पंथ री हाण।
नाथ सिद्ध नामो धरे, नी हे पंथ पिछाण।।92।।
अलख निरंजन हाँक दे, दर–दर मांगे भीख।
अभखो खा अपियो पिवे, करे जगत ने सीख।।93।।
भाँग–धतूरा सेवताँ, भोगे पाप विलास।
पंच साधना भोगताँ, करे पंथ रो नास।।94।।
बाझाँ ने साँझो करे, पाप कमावे खास।
महामुद्रा रो नाम दे, करे नरग में वास।।95।।
मांस भखे मछली भखे, मदिरा पीवे रोज।
ऐसा कपटी नाथ रो, जावे निसचय खोज।।96।।
एसा कपटी नाथ ने, केहवे सब मक्कार।
सिद्धां ने पूजे सबै, करे जगत सविकार।।97।।
नाथ पंथ सद्गुरु कहयो, करो–जगत कल्याण।
सहजा रेहवो जगत में, करो न मान गुमाण।।98।।
लोक पारखी हे घणो, परखे करम कसोट।
अरख–परख निरणो करे, केह दे हगरा खोट।।99।।
आछा ने आछो कहे, खोटा करे नकार।
आछा रे कारण वियो, नाथ पंथ सविकार।।100।।
नाथ मछंदर री मेहर, आदिनाथ आदेस।
सद्गुरु गोरखनाथ ने, दियो साँच उपदेस।।101।।

पंथ उद्धाहरण कारणे, विया मोकरा नाथ।
नव नाथाँ रो सगत हे, नाथ पंथ रे साथ।।102।।
चवरासी तो सिद्ध हे, चौसठ जोगण जाण।
बावन भैरव साधताँ, नाथाँ रो फरमाण।।103।।
साधन सब संवरा करो, अवरा देओ छोड़।
दुस्ट सगतियाँ साधताँ, मती लगाओ होड़।।104।।
राजा–महाराजा विया, नाथाँ रा अजमान।
भाट–चारणा ने करयो, गोरख रा गुणगान।।105।।
आसण मढ़ि मठ थरप्या, कर्‌यो जगत कल्याण।
राजा–महाराजा करी, जागीराँ परमाण।।106।।
रगसा राखी धरम री, जठे बणाय थाण।
धरम धज्जा ऊँछी रही, कर्‌यो जगत कल्याण।।107।।
जठे–जठे मठ थाप्या, धूमो जठे बणाय।
गो सेवी गोधन कर्‌यो, गोसाला सरसाय।।108।।
जुद्ध कर्‌या खड़गो धर्‌यो, देस बचावण काज।।109।।
जठे राजमठ थारप्यो, रगसा राखी राज।।110।।
जगकल्याणी सिद्धियाँ, जीव जगत समतार।
समता राखी सदमती, सत्त राख्यो निरधार।।111।।
करसाँ–बरसाँ रे पछे, पंथ हो गयो फाड़।
बारह पंथाँ बँटि गयो, भीतर मच गी राड़।।112।।
बारही बारह खूँटियाँ, खूँटी–खूँटी पीठ।
गोरख री पत नी मटी, खरी करी थी दीठ।।113।।
हिंगलाजाँ री मेहर हे, जोगणियाँ री राख।
सिद्धाँ री पुण्याइ ती, रही पंथ री साख।।114।।
पंथ भ्रष्ट कई जोगड़ा, करता फिरे धुमाल।
गाँजो दारू भांग पी, चाले कुटली चाल।।115।।
जादू–टोना झूंठला, जंतर–मंतर बाध।
लोगाँ ने ठगता फिरे, भूत डाकणा साध।।116।।
ऐसा साधाँ रो करम, धरम नहीं केहलाय।
नाथ पंथ रो जस घटे, सिद्ध नाथ सरमाय।।117।।
गोरख ने सहजो कर्‌यो, जीव जगत रो पंथ
नाथ पंथ संदेसयो,साँच धरम रे कंथ।।118।।

*हिंगलाजाँ ध्याऊँ सदा, हणमत जोड़ूँ हाथ।*
*चवरासी सिद्धाँ नमूँ, धोकूँ नाथाँ माथ।।119।।*
*सद्‌गुरु गोरख नाथ री, रच दी सहजी ख्यात।*
*नाथ पंथ रो वंस हूँ, नाथाँ रो हे हात।।120।।*
*भूल चूक बगसावसी, सद्‌गुरु गोरख नाथ।*
*हिंगलाजाँ रगसा करे, सिद्धाँ माथे हाथ।।121।।*
*नाम संकर्‌यो नाथ हे, माख म्हारो देस।*
*मारवाड़ रो अंस हे, पेहरुँ भगवो वेस।।122।।*
*सारंगी ले हाथ में, गातो फिरुँ कवित्त।*
*गुजर–बसर परवार रो, वेतो रेहवे नित्त।।123।।*
*भणे, सुणे जिण रे पगे, नमतो राखूँ माथ।*
*अटपटया तो सबद हे, नहीं लेखनी हाथ।।124।।*
*लिखताँ भणताँ सूणता, रच्या सुगम कवित्त।*
*हिंगलाजाँ सुभ–सुभ करे, पूजूँ माता नित्त।।125।।*

**भावार्थ**

हे हिंगलाज माता! इस दास को वाणी का दान दे दो।

मैं सद्‌गुरु गोरखनाथ की गाथा लिख रहा हूँ। आप मेरे शीश पर आशीर्वाद का वरदहस्त रख दो। सद्‌गुरु गोरखनाथ नाथों के भी नाथ हैं। मैं भगवान आदिनाथ शिवजी को वंदन करता हूँ और सद्‌गुरु मछंदरनाथ को नमस्कार करता हूँ। मैं जो भी लिखूँ वह सत्य हो जाय। आप मेरे शब्दों में आकर उन्हें सकारथ कर दो। (पद 1 से 3)

हे सरस्वती माता! हे गणपति गणेश! हे सद्‌गुरु गोरख नाथजी! आप मेरी सहायता करो। मैं न तो कवित्त और छंद जानता हूँ और न ही मुझे भाषा का ज्ञान है। मैं आपका गुणगान लिखना चाहता हूँ। आप मेरी लाज रख लेना। मेरा लेखन सफल हो जाए, ऐसी कृपा कर देना। मैं सिद्धों (चौरासी सिद्ध) को नमन करता हूँ। नाथों (नवनाथों) को प्रमाण करता हूँ। हे सरस्वती माता! आप मेरी लेखनी में विराजमान हो जाओ। इसे लिखने की शक्ति प्रदान कर दो। (पद 4 से 5)

जब भी धरती पर पाप बढ़ जाता है । आडम्बर और अनाचार, अतिचार का अंधेरा छा जाता है। सही मार्ग तक नहीं सूझता। उससे बचने का कोई उपाच भी नहीं सूझता। धरती त्राहिमाम् कहकर आर्त पुकार करने लगती है। गायें रम्भा–रम्भा कर अपना दुख

प्रकट करने लगती हैं। धर्म पर पाप और दुर्मति वाले अतिचारियों का आतंक छा जाता है, तब धरती का स्वामी परमेश्वर आर्त पुकार सुनता है। जब आडम्बर बढ़ जाते हैं। पंडे–पुजारी डीस और ढीट तथा उदण्ड हो जाते हैं। ऐसी स्थिति जब हुई तब ब्रह्म का आसन डोल गया । सागर में तूफान आ गया। शेष, महेश, सुरेश सब बेमान हो उठे। शेष के शीश पर धरती डगमग डोलने लगी। उसे शेष सम्हाल नहीं पा रहे थे। कोई सहायता भी नहीं कर पा रहा था। (पद 6 से 11)

शुभ नक्षत्र और शुभ दिन–घड़ी में गोरख का अवतार हुआ। शिव, ब्रह्मा और विष्णु ने उन्हें सत्य का सार प्रदान किया। उन्होंने कहा– यह बालक शिवजी का अंश है। पार्वती इसकी माता हैं। इसे हिंगलाज की शक्ति प्राप्त है। अटल तपस्या का (माता–पिता की) यह वरदान है।

गोरख का जन्म होते ही घंटी, घड़ियाल और शंख की मधुर ध्वनि होने लगी। धरती धन्य हो गई। सब तरफ आनंद छा गया। समुद्र में लहरे आनंद प्रगट कर उठी हैं। आकाश में बिजली चमकने लगी। इन्द्र ने जल बरसा कर नेग (उपहार) दिया। चिड़ियाँ (पक्षी) चहचहाने लगी हैं। सबके हृदय उमंग से भर उठे। मयूर अपनी मयूरी के संग नृत्य करने लगे। बागों में खुशबू फैल गई। रंग–बिरंगे फूल खिल उठे। वृक्ष आनंद में झूम उठे। दूब हर्षित हो उठी। शीतल पवन चलने लगी। बागों में तितलियाँ फुदकने लगीं। भँवरे गुन–गुनाने लगे। सब मन हर्षित हो उठा। त्रिदेवों ने आशीर्वाद दिया। तीनों लोकों और सप्त द्वीपों के सभी देश उमंगित हो उठे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। देवता फूल बरसाने लगे। नारद और शारदा मधुर–मधुर राग बजाने लगे। (पद 12 से 20)

संसार में गोरख का जन्म हो गया है। उनका जन्म सत्य और धर्म की रक्षा करने हेतु हुआ है। आडम्बर अवश्य मिटेंगे। सारी व्यवस्था सामाजिक और धार्मिक व्यवस्थित हो जाएगी। बारहवाँ वर्ष लगते ही गोरख एकदम सचेत हो गया। उसे अपने कर्तव्य एवं जन्म का भान हो गया। उसने तत्काल कैलाश की यात्रा प्रारम्भ कर दी और शिवजी आदिनाथ के दर्शन करने हेतु कैलाश पहुँच गया। उसे माता पार्वती के दर्शन हो गए। गोरख ने मन–चित्त से हिंगलाज माता का स्मरण किया। उन्हें वंदन किया।

पार्वती माता ने गोरख से कैलाश पर आने का अभीष्ट पूछा। उसे अपनी गोद में बैठाकर खूब लाड़ लड़ाया। तभी ऊँचे पहाड़ से माता हिंगलाज प्रकट हुई। माता हिंगलाज ने आशीर्वाद देकर आदेश दिया कि हे गोरख! तुम उस गुफा के भीतर चले जाओ। वह मेरा स्थान है। वहाँ बैठकर बारह बरस तक तपस्या करो। शिवजी का ध्यान

लगाओ। धर्म को अपने चित्त में स्थिर रखना। पूरा केन्द्र त्रिकुटी में रखना। अपने ज्ञान और ध्यान को एकनिष्ट बनाए रहना चित्त को भटकाना मत। त्रिकुटी पर ध्यान केन्द्रित करना। ( पद 21 से 27)

तपस्या के बाद सिद्ध–बुद्ध होकर बाहर आना। सत्य का सार समझ लेना। गुफा के बाहर मेरी जोगणियाँ रक्षक रहेंगी। वे किसी भी विघ्नकारी शक्ति को भीतर प्रवेश नहीं करने देंगी। तू बारह वर्षों तक निराहार रहना। बारह वर्षों के पश्चात् भगवान शिव की समाधि खुलेगी। तब तू उनके समक्ष जाकर दर्शन करना। उन्हें दण्डवत् कर उनके समक्ष अपनी अभीष्ट इच्छा प्रकट करना और उनकी आराधना करना वैसे वे सर्वज्ञ है। वे तुम्हारे यहाँ आने का अभीष्ट जानते हैं। सब उनकी लीला ही है। तू हृदय में सत्य और धैर्य बनाए रहना। इतना कहकर हिंगलाज माता ने गोरख को आशीर्वाद दिया और मुस्काती हुई तुरन्त अदृश्य हो गई। गोरख ने माता को प्रमाम किया। गोरख ने एक ज्योति देखी। उसे पुनः वंदन किया। ज्योति का प्रकाश चतुर्दिक फैल गया। (पद 28 से 33)

हिंगलाज माता के अन्तर्ध्यान हो जाने के पश्चात् गोरख ने माता पार्वती को प्रणाम किया और अपनी अगली योजना पर विचार करने लगा। उसने अपना संकल्प दृढ़ किया। हृदय में सत्य का निर्धारण किया और गुफा के भीतर प्रविष्ट हो गया। उसने भीतर जाकर हिंगलाज माता और पार्वती माता को प्रणाम कर निवेदन किया कि हे माता! आप मेरी रक्षा करना। मेरी लाज रखना। इतना कहकर गोरख समाधिस्थ हो गए।

बारह वर्षों के पश्चात् समाधि खुली। समाधि खुलते ही गोरख ने सर्वप्रथम आदिशक्ति स्वरूपा हिंगलाज माता के दर्शन किए। उन्हें वंदन किया। उनकी आराधना की। तपस्या के पश्चात् गोरख को ज्ञान प्राप्त हो गया। वे सिद्ध–बुद्ध हो गए। हिंगलाज माता प्रकट हुई। माता ने कहा– गोरख तुम धन्य हो। तेरा अवतार गो की रक्षार्थ हुआ है। गो नाम पृथ्वी का भी है। मेरा तुझे पूरा आशीर्वाद है। मैं सदा तेरे साथ रहूँगी। गो का अर्थ इंद्रियाँ भी होता है। तू समस्त इन्द्रियों को अपने वश में रखना। एक परमब्रह्म (शिव) के प्रति एकनिष्ट रखना। चित्त को सदा एकनिष्ठ बनाए रहना। यही संदेश तुम जगत में भी प्रचारित करना। (पद 34 से 39)

संसार में व्याप्त आडम्बरों को मिटाकर सहज मार्ग प्रशस्त करना। सदा सहज बने रहना। जो अपना मार्ग भटक गए हैं, उन्हें सद्मार्ग दिखाना। माता पार्वती ने आशीर्वाद देकर गोरख को ज्ञान प्रदान किया।

गोरख ने माता का वंदन और संस्तुति की। हे माता! मैं आपका बालक हूँ। मेरा सदा ध्यान रखना। मैं सत्य और धर्म से विमुख नहीं होऊँ। हृदय में धैर्य बना रहे। हे माता! मुझे आशीर्वाद दो। मैं दुखियों की पीड़ा को दूर कर सकूँ। (पद 40 से 43)

माता पार्वती की आज्ञा लेकर गोरख भगवान शिव के पास पहुँचे। वहाँ गोरख ने आदिनाथ शिवजी को दण्डवत प्रणाम किया। हे पिता! हे माता! आप प्रसन्न हो कृपा करें, ऐसी प्रार्थना की। गोरख ने वहाँ माता पार्वती को देखा तो चकित रह गये। वह सोचने लगा। मैं माता को तो अभी उनके महल में छोड़कर आया हूँ। वे यहाँ कैसे आ पहुँची। माता गोरख की जिज्ञासा जान ली। अरे गोरख! तुम आश्चर्यचकित क्यों हो? गौराँ तो सदा शिव के धाम ही रहती है। जहाँ भी शिव बिराजते है, वहाँ पार्वती भी रहती है। हम कभी—कभी लीला के रंग रचाते रहते हैं।

भगवान शिव और माता पार्वती ने गोरख को वरदान दिया। हे गोरख! तुम्हारा मान (यश) युग—युगांतर तक कायम रहेगा। जब सूर्य—चन्द्र सलामत हैं। जब तक शेष के शीश पर धरती सुरक्षित है तब तक तुम अमर रहोगे। प्रत्येक युग में तुम साक्षात् रहोगे। (44—49)

भगवान शिव ने गोरख को आदेश दिया कि गोरख तुम वापिस अपने धाम लौट जाओ। तुम सत्य धर्म पर दृढ़ रहना, तुम्हारा नाम अमर रहेगा। तुम मेरे अंश—वंश हो, यह बात सदा स्मरण रहे। मेरा नाम तुमसे जुड़ा है। सहज भाव से रहना। कभी भी गुमान (अहंकार) मत करना। सदा विनम्र रहना, जैसे चरागाह में दूब होती है। प्रातःकाल से संध्या तक गायें उसे चरती हैं। प्रातःकाल वह फिर से हरी—भरी हो जाती है। जब जोर का तूफान आता है, तब जो वृक्ष नम जाते हैं, वे सुरक्षित रह जाते हैं तथा जो अहंकारवश तने रहते हैं, वे या तो टूटकर या जड़ों सहित उखड़कर धराशायी हो जाते हैं। हे गोरख! बार—बार कहता हूँ। सत्य—धर्म को सदा हृदय में स्थिर रखना। उसी का आधार ही तुम्हें सफलता प्रदान करेगा। किसी के भी धर्म और आस्था पर आघात मत करना।

इन्द्रियों को वश में रखना। जिस प्रकार युवा उच्छृंखल बैल की नाक में नथ डालकर उसे कब्जे में रखा जाता है, वैसा तू इंद्रियों को नाथकर रखना। तू सच्चा नाथ (स्वामीः) बनना। नाथ का अर्थ स्वामी और सच्चा मित्र भी होता है। तुम सब अनाथों को सनाथ करना। सच्चा पंथ चलाना। सहज ज्ञान देना। जितने भी धर्म—सम्प्रदाय हैं, तुम सबका मान रखना। मन की कुटिल कामनाओं का त्याग करना और कभी भी अहंकार मत करना। जो दीन दुःखी हों, उनकी सदा सहायता करना। इतना उपदेश देकर

आदिनाथ शिव समाधिस्थ हो गए। दण्डवत् करने के उपरांत गोरख वहाँ से चलने को हुआ। (50 से 59)

माता ने आशीर्वाद देकर कहा– गोरख! मेरी बात सुन लो। मैं हिंगलाज के रूप में सदा तुम्हारे साथ रहूँगी।

जो बिना गुरु का अथवा गुरु विमुख होता है। वह कभी सफल नहीं हो सकता। यही आदिनाथ का आदेश है। तुम मछंदरनाथ को अपना गुरु स्थापित करो। उनकी शरण में जाओ और सनाथ हो जाओ।

गोरख ने माता को नम्रता से वंदन किया। शीश झुकाकर प्रणाम किया। हे गोरख! शुभ–शुभ जाना। ऐसा आशीर्वाद माता ने दिया।

गोरख माता से आज्ञा लेकर गुरु बनाने के लिए पहाड़ों के बीच सद्‌गुरु मछंदरनाथ के स्थान पर पहुँचा। भीतर आँखें बंद कर ध्यान मुद्रा में विराजित गुरु के दर्शन किए। गोरख को आया जानकर सद्‌गुरु ने समाधि खोल दी। गोरख में उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और आर्त आराधना की। गोरख ने निवेदन किया– 'हे सद्‌गुरु! मैं आदिनाथ और माता के आदेश से आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझे सत्यपरक दीक्षा प्रदान कर गुरुमंत्र तथा वेश प्रदान करें।

गोरख की प्रार्थना सुनकर सद्‌गुरु ने कहा– हे गोरख! मेरी बात सुनो। मैं तुम्हें दीक्षा दे दूँगा। पहले तुम सात वचन निभाने का वचन मुझे दो। धीरज, धर्म त्यागना मत। अहंकार करना मत। तुम्हारी लॉज आदिनाथ भगवान अवश्य रखेंगे। (1) सत वचन (2) निर्मल मन (3) धैर्य (4) शिव स्मरण (5) गो रक्षा (6) वाणी का संयम (7) व्यवहार में सहजता । ये सात वचन तुम पालन करना।

मैं भगवान आदिनाथ का शिष्य हूँ। तुम मेरे शिष्य बनते ही भगवान आदिनाथ के पड़शिष्य बन जाओगे। इससे तुम निर्भय हो जाओगे तथा तुम्हारे जीवन में समभाव आ जाएगा। तुम्हारे भीतर ज्ञान का प्रकाश फैल जाएगा। तुम वैसा ही ज्ञान प्रकाश संसार में फैलाना। सदा भगवान शिव की आराधना करते रहना। सहज भाव का पंथ चलाना। सहज भाव के नाथ बने रहना। धरती के दुःख निवारण करना और सदा विनम्र बने रहना।

गोरख ने अपने दीक्षा गुरु मछंदरनाथ को दण्डवत् प्रणाम किया, फिर सिर झुकाकर उनका वंदन किया। सद्‌गुरु ने कृपा दिखाकर गोरख को सिद्ध होने का आशीर्वाद दिया। 'अलख निरंजन' गुरुमंत्र देकर वेश धारण करवा दिया। इतनी कृपा

कर सद्गुरु मछंदरनाथ ने गोरख को धरती पर लौट जाने का आदेश दिया। (पद 60 से 73 तक)

धरती पर वापिस लौटकर गोरख ने सभी प्रकार का ज्ञान अर्जित किया। सत्य–धर्म का सार ग्रहण कर गोरख ज्ञानवान बन गये। सहज भाव और सहज वाणी के साथ उन्होंने सहज उपदेश देना शुरू किया।

सद्गुरु गोरखनाथ ने शुभ पंथ नाथ पंथ की स्थापना की। उन्होंने उपदेश दिया कि नाथ पंथ का सार सत्य और धर्म की कामना है। उन्होंने समस्त आडम्बर मिटा दिए। जीवन की चर्या सहज बना दी। नाथ पंथ को धारण करते ही उसका खूब प्रचार हुआ। नाथ पंथ को लोक में खूब लोक स्वीकृति प्राप्त हुई। गोरख सद्गुरु कहलाए। वे सिद्धों के भी सिद्ध माने गए। उन्होंने अनेक चमत्कार भी किए। उनके द्वारा प्रवर्तित नाथ पंथ खूब प्रचारित हुआ, उसे बहुत मान्यता और आस्था प्राप्त हुई। नाथ पंथ लोक आस्था का केन्द्र बनता चला गया। (पद 74– से 78)

नाथ पंथ की यश वृद्धि पूरे भारत में विस्तीर्ण हो गई। नाथ पंथ ने जाति–पाँति की कैद से समाज को मुक्ति प्रदान की। इसी भावना को भगवान गौतम बुद्ध ने सबसे पहले समझा था। उसी से प्रेरणा लेकर गोरखनाथ ने उस भाव–विचार को बल दिया। शायद यही कारण रहा कि चतुर्थ वर्ण नाथ पंथ की ओर अधिक आकृष्ट हुआ। नाथ पंथ में सभी समाज में लोगों को शामिल किया गया। नाथ पंथ का उद्देश्य रहा कि सब रक्त एक समान है। सबके भीतर एक ही शक्ति ब्रह्म का वास है। गोरख कहता है– मैं मनुष्य–मनुष्य में भेद नहीं मानता। यह धरती सबका परिवार है। यही सबका देश है, सबकी माता पार्वती तथा पिता महेश है। यही बात भगवान आदिशंकराचार्य ने भी अपने अन्नपूर्णा स्रोत में कही है–

*अन्नपूर्ण सदापूर्णा, शंकर प्राण वल्लभे,*
*ज्ञान विज्ञानसिद्धार्थ, भिक्षा देहु च पार्वती।*
*माता च पार्वती, पिता देवो महेश्वरा,*
*बांधवा शिव भक्तश्च स्वदेशो भुवनत्रयम।।*

गोरख आगे कहते हैं– आदिनाथ शिव सबके स्वामी है। वे नाथों के नाथ आदिनाथ हैं। वे ही ब्रह्मा–विष्णु हैं, वे ही परमब्रह्म परमेश्वर भी हैं। मैं किसी देव को छोटा–बड़ा नहीं मानता। सबको शीश नमाकर प्रणाम करता हूँ। सद्गुरु गोरखनाथ ने नाथपंथ का यह सार उपदेशित किया है।

गाथा कहती हैं—गोरख सभी दिनों को शुभ मानते हैं। सभी मुहूर्त शुभ हैं। तेरस और तीज का कोई महत्त्व पृथक से वे नहीं मानते। अच्छे काम के लिये सभी दिन, घड़ी—नक्षत्र शुभ होते हैं।

नाथ पंथ सभी धर्मों का सार रूप है। जो भी व्यक्ति अलख निरंजन को जान लेता है, उसका उद्धार हो जाता है। मन निर्मल होना चाहिए।

गोरख कहते हैं— समस्त आडम्बर त्यागकर जीव में सद्भाव धारण करो। सौ देवताओं को पूजने के बजाय एक स्वामी और एक इष्ट पर आस्था रखो। चाहे शिव पूजो, शक्ति की आराधना करो, विष्णु और गणेश को आराधो। आदिनाथ शिव को पूजने से सब क्लेश—दुःख समाप्त हो जाते हैं।

ओम् ब्रह्म का स्वरूप है। सभी स्वरूप इस ओम् में समाहित हैं। यदि हम हृदय के भीतर झांककर देखें, तब हमें दिव्य ज्योति के दर्शन हो जाएंगे। (पद 79 से 87)

वे कहते हैं— आँख मूंदकर चित्त में धैर्य धारणकर मन में सद्भाव रखते हुए यदि सहज समाधि लगायें और शिव आदिनाथ का जाप (स्मरण) करें, तब हमें एक अपूर्व आनंद की अनुभूति होने लगेगे। नाद बजेगा, मुरली, ढोलक, मृदंग बज उठेंगे। बंकनाल से अमृत झरने लगेगा। विविध प्रकार के रंगों के दर्शन होंगे।

भीतर ही सूर्य—चन्द्रमा, नक्षत्रों का दर्शन होगा। गगन मंडल से अमृत झरेगा। तन और मन हर्षित हो उठेगा। यही बात कबीर एवं संत पीपा ने भी मध्यकाल में कही है।

'जो ब्रह्म सोई पिंडे' जो बाहर जगत में है, वही भीतर भी है। जो साधक होता है, उसे सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जो आडम्बर युक्त समाधि लगाने का दिखावा करता है, वह अस्थिर बना रहता है। उसे कभी भी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

ऐसा आडम्बरी जगत को भ्रम में फँसाता है। स्वयं भी गर्त में जाता है तथा अनुयाइयों को भी गर्त में डुबोता है। वह स्वयं को नाथ—सिद्ध कहता फिरता है, जबकि न तो वह नाथ होता है, न सिद्ध। वह तो पथभ्रष्ट छली—कपटी व्यक्ति होता है। उसे तो नाथ पंथ के उपदेशों और सिद्धांतों की जानकारी ही नहीं होती।

ऐसी जोगी वेशधारी अलख—निरंजन की हाँक लगाकर दर—दर भिक्षा मांगता फिरता है। वह अभक्ष खाता है वं अपीय पीता है। जगत को शिक्षा देकर भ्रम उत्पन्न करता है।

भांग–धतूरा का सेवन करता है। पाप के भोग भोगता है। पंच साधना (मत्स, मांस, मदिरा, मुद्रा और सम्भोग) का सेवन करता है। वह पंथ (नाथ पंथ) को नाश की गति देने वाला है।

ऐसा छली–जोगी बांझों को संतान देने के बहाने उन्हें गंडे–ताबीज देकर धन का हरण करता है तथा उनका दैहिक शोषण भी करता है। ऐसा कपटी जोगी महामुद्रा साधना का नाम लेकर नर्कगामी होता है। ( पद 79 से 95)

गाथा कहती है– ऐसे छली पंथ भ्रष्ट नाथ मांस मछली का भोजन करते हैं। मदिरा पान करते हैं। ऐसे कपटी नाथों की अन्ततः बहुत दुर्गति होती है। उनका वंश नाश हो जाता है। ऐसे कपटी नाथ को सभी मक्कार कहते हैं। सभी लोग सिद्धों की पूजा करते हैं। ऐसे सिद्ध नाथ जो लोक कल्याण करते हैं। लोक उनकी पूजा करता है। उनके उपदेशों, कार्यों और चरित्र को सभी स्वीकृति देते हैं। सद्‌गुरु ने कहा है– नाथ पंथ के जोगियों, सिद्धों और नाथों को लोक कल्याण करना ही उचित है। लोक में वे सहजभाव से रहें और सदा लोक कल्याण का ही भाव रखें।

लोक बहुत पारखी होता है। वह कर्म की कसौटी पर कसकर खरा निर्णय लेता है। खूब अच्छी तरह परखकर निर्णय करता है। वह अच्छे को सदा अच्छा और खोटे को खोटा कहता है। खोटे को नकार देता और अच्छे को स्वीकार लेता है। रहीम के अनुसार– सार–सार को ग्रहण करता है और थोथी को उड़ाकर–झटककर दूर फेंक देता है।

सद्‌गुरु आदिनाथ भगवान शिव की कृपा और सद्‌गुरु मछंदरनाथ की मेहर से सद्‌गुरु गोरखनाथ ने सत्य का उपदेश दिया है। (पद 96 से 101)

नाथ पंथ का विकास करने के लिए कई सिद्ध नाथ हो गए हैं। इस पंथ को नौ नाथों की शक्ति प्राप्त है। चौरासी सिद्धों का बल है। चौसठ जोगणियां नाथों की सहायक है। नाथों को बासठ ही भैरवों को साधने का फरमान है। सभी साधन शुद्ध तथा लोक की भलाई के लिए होना चाहिए। लोक विरुद्ध साधनाएँ, परपीड़क तंत्र–मंत्र, मशाण साधना आदि का परित्याग होना चाहिए। दुष्ट शक्तियों को साधनों की होड़ बंद करो। नाथपंथ का सम्मान बड़े–बड़े राजा–महाराजाओं ने किया है। उन्होंने आसन, मढ़ियाँ, मठ स्थापित करवाए। वहाँ के गादीधारी नाथों ने लोक कल्याण किया। चारणों भाटों ने गोरखजी का खूब गुणगन किया है। राजाओं और जागीरदारों ने जागीरें दान की। जहाँ–जहाँ मठ–मढ़िया स्थापित हुई, वहाँ के नाथों ने राज की रक्षा करने के लिये युद्ध भी किए। प्राण भी न्योछावर किये।

जहाँ–जहाँ भी मठ स्थापित हुए, जहाँ–जहाँ धूनियां जागृत हुईं। वहाँ–वहाँ नाथों ने गौशालाएँ स्थापित की। युद्ध किए, खड़ग धारण कर देश रक्षा की। जहाँ–जहाँ मठ स्थापित हुए, राज्य ने सदा सुरक्षा प्रदान की। नाथ सिद्धों ने जन कल्याणी सिद्धियाँ साधी। उनके बल पर जीव–जगत का उपकार किया। समता भाव और सद्विचार बनाए रखा। सत्य को सदा बनाए रखा। (पद 96 से 111)

अनेक वर्षों के पश्चात् नाथ पंथ के कई विभाजन हो गए। पंथ बारह भागों में बँट गया। भीतर–भीतर परस्पर शत्रु भाव भी पनपने लगा। श्रेष्ठता का भाव उपजा, बारहों भागों के बारह मठाधीश, परम्पराएँ। विचार और दर्शन स्थापित हुए। इसके बावजूद भी सद्गुरु गोरखनाथ का यश नहीं मिटा। वह खरा–बना हुआ है। नाथ पंथ पर माता हिंगलाज की कृपा है। जोगणियों की रक्षा, सिद्धों की पुण्याई के फलस्वरूप पंथ की साख लोक में सलामत है। इसके प्रति आस्था नहीं घट सकी । लोक स्वीकृति अक्षुण्य है।

कुछ पंथ भ्रष्ट जोगी लोक में छल–कपट द्वारा धमाल करते फिरते हैं। गाँजा, दारू और भांग पीकर कुटिल चालें चलते रहते हैं। जादू–टोने, झूठे तंत्र–मंत्र–जंत्र, भूत बाधाएँ करते हुए लोगों को ठगते फिरते हैं। ऐसे कपटी पंथ भ्रष्ट साधकों के कारण धर्म नहीं चलता। ऐसे लोगों के कारण पंथ का यश घटता है। सिद्धनाथ लज्जित होते हैं। सद्गुरु गोरख ने सहज भाव से जीव जगत के हितार्थ नाथ पंथ की स्थापना की थी। उन्होंने सत्य–धर्म का संदेश दिया था। (पद 112 से 118)

मैं सदा माता हिंगलाज का गुणगान करता हूँ। हनुमानजी का वंदन करता हूँ। चौरासी सिद्धों और नौ नाथों को धोक लगाता हूँ। उन्हीं की कृपा से मैंने सद्गुरु गोरखनाथ की यह ख्यात कही है।

मै स्वयं नाथ पंथ का हूँ। मेरी जाति भी नाथ ही है। मेरी भूल–चूक स्वयं सद्गुरु गोरखनाथ ही क्षमा करेंगे। हिंगलाज माता रक्षा करेंगी, सिद्धों का हाथ सदा सिर पर रहेगा। मेरा नाम शंकरया नाथ है। मेरा देश मालवा है। मेरा जन्म मारवाड़ का है। पूर्वज बहुत पीढ़ियों पहले मालवा में आ बसे थे। भगवा भेस पहनता हूँ। हाथ में सारंगी लेकर गीत कवित्त गाता फिरता हूँ। इसी से नित्य मेरे परिवार का गुजर बसर होता है। जो भी इस ख्यात को पढ़ेंगे–सुनेंगे, उनके चरणों में मेरा प्रणाम। मेरी रचना के शब्द अटपटे हैं। लेखनी भी हाथ में नहीं है। मैंने लिखते–लिखते, पढ़ते–पढ़ते और सुनते–सुनते सुगम कवित्त रचे हैं। माता हिंगलाज सदा शुभ करेंगी। मैं प्रतिदिन उनको पूजता हूँ।

## नाथ पंथ की अवधारणा

नाथ शब्द नाथृ धातु से बना है, जिसके याचना, ऐश्वर्य, उपताप (तापों को तप से समाप्त करना), आशीर्वाद आदि अर्थ है– नाथृ याचजोयता पैश्वर्याशीः इति माणिनिः। अतः जिससे ऐश्वर्य, आशीर्वाद, कल्याण मिलता है वह नाथ है। नाथ शब्द का सामान्य अर्थ स्वामी, ईश्वर, प्रभु, मालिक आदि लगाया जाता है। नाथ कारक लोक अर्थ नाथना (वश में करना) भी होता है।

विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद के दशम–पटल के सूक्त–130 में नाथ के बारे में कहा गया हैं–

*को अद्धावेदकः इह प्रवोचस्कतु आजात कुत इयं वि सृष्टि*
*अर्वाग्देवा अस्य विसर्जने नाथा को वेदयत आवाभूम शंभूयति।।*

यह सृष्टि कहाँ से हुई? इस तत्त्व को कौन जानता है? किसके द्वारा हुई? क्यों हुई? कब से हुई? इत्यादि विषय के समाधानकर्ता व पथदृष्टा नाथ ही हैं। यहाँ ऋग्वेद में नाथ शब्द का प्रयोग सृष्टिकर्त्ता, ज्ञाता तथा सृष्टि के निमित्त रूप से किया गया है। अथर्ववेद में भी 'नाथित' और 'नाथ' शब्द का प्रयोग मिलता है।

शक्ति–संगम–तंत्र के अनुसार 'नाथ' तत्त्व मोक्ष प्रदान करता है, ब्रह्मा का अनुमोदन और अज्ञान का स्थगन कराता है–

*श्री मोक्षदान दक्षत्वात् नाथ ब्रह्मानुबोधनात् ।*
*स्थगिता ज्ञान विवाता श्री नाथ इति गीयते।।*

नाथ पंथ को प्राचीन काल से सिद्ध–मत, सिद्ध–मार्ग, योग–मार्ग, योग–सम्प्रदाय, अवधूत मत, अवधूत सम्प्रदाय, जोगेश्वर मत इत्यादि नामों से जाना जाता रहा है। नाथ सम्प्रदाय का योग साधना मुख्य धर्म रहा है, इसलिए इसका योग मत और योग सम्प्रदाय नाम सार्थक है। नाथ सम्प्रदाय के नाथ ही सिद्ध हैं, इसलिए इसे सिद्ध मत या सिद्ध मार्ग कहते है। समय की गति के साथ–साथ सम्प्रदाय 'सिद्ध', 'अवधूत' और 'योगेश्वर' का पर्याय हो गया।

नाथ पंथ की प्राचीनता के विषय में योगीप्रवर नरहरिनाथजी शास्त्री विद्यालंकार ने 8 मई 1992 को भीलवाड़ा के झरना महादेव स्थान पर हिंगलाज देवी की मूर्ति प्रतिष्ठा के अवसर अपने प्रवचन में तो यहाँ तक कह दिया कि– न +अथ जिसका अथ नहीं, अर्थात् इससे आगे कोई तत्त्व नहीं। अगर कोई इस ब्रह्माण्ड की सीमा के पार है तो

वह नाथ है। इस प्रकार नेपाल राजगुरु श्री नरहरिनाथजी ने नाथ सम्प्रदाय को अनादि बताया है। नाथ–सम्प्रदाय का स्पष्टार्थ वह अनादि धर्म है, जो भुवनत्रय की स्थिति का कारण है। श्री गोरक्ष को इसी कारण से नाथ कहा जाता है–

*नाकारोऽनादि रुपं थकारः स्थाथते सदा।*
*भूवनत्रयमेवैकः श्री गोरक्ष नमोऽस्तुते।।* (राजगुह्य)

नाथ पंथ की ऐतिहासिकता पर विहंगम दृष्टि डालें तो नाथ पंथ का मूल उत्स बहुत प्राचीन मालूम होता है। प्राचीन भारत में तीन प्रकार की सभ्यतायें थी– आर्य, द्रविड़ और ब्रात्य। इनमें भी ब्रात्य सभ्यता प्राचीनतम हैं। विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद' में भी ब्रात्य संन्यासियों का उल्लेख मिलता है। ये ब्रात्य साधु अत्यन्त सात्विक, संयमी और अपरिग्रही थे। इनकी साधना योग प्रधान थी। ब्रात्य लोग अपनी साधना के बल पर मृत्यु विजय प्राप्त कर लेते थे, यज्ञादि कर्मों से दूर किसी अरूप वस्तु के ध्यान व चिंतन में निरत रहते थे। ब्रात्यों के आराध्य देव 'शिव' थे। अथर्ववेद के 15 वें अध्याय में शिव को नीललोहित, ईशान एवं एक ब्रात्य के नाम से अभिहित किया गया है। आगे चलकर ब्रात्यों की योग साधना ने आर्यों को भी आकृष्ट किया।

वैदिक ब्रात्य शैव ही परवर्ती काल में नाथ शैव के रूप में विकिसत हुए। छान्दोग्य, वृह्दारण्यक, कठो, मैत्री एवं श्वेताश्वत आदि उपनिषदों में यौगिक प्रणाली का संकेत है। अस्तु, नाथ योग वैदिक भी है और औपनिषदिक भी। नाथ धर्म ब्रात्यों की परम्परा का ही विकसित रूप है।

गोरखनाथ  इसी परम्परा के सिद्ध नाथ है। गोरखनाथ के नाथ पंथ का स्वरूप वैसा ही था, जैसा कि ब्रात्य–मुनियों का था। गोरखनाथ के विचार–दर्शन, योग–साधना पद्धति, वेशभूषा, रहन–सहन एवं व्यावहारिक मान्यताएँ ब्रात्य मुनियों से काफी मेल खाती हैं। सार यह है कि नाथ सम्प्रदाय के योगी साधक ब्रात्य मुनियों की परम्परा में ही थे। यही परम्परा आगे गोपीचन्द, भरथरी, पूर्णमल्ल आदि अनेक महान विभूतियों के रूप में विकसित हुई।

भारत के धार्मिक सम्प्रदायों में नाथपंथ का विशिष्ट स्थान है। यह कहना बहुत मुश्किल है कि भारत में नाथ पंथ का प्रवेश कब और कैसे हुआ, परन्तु इतिहास में जो उल्लेख मिलते हैं, उससे ज्ञात होता है कि नाथ पंथ का यहाँ प्रादुर्भाव सैकड़ों वर्ष पूर्व हो गया था। नाथ पंथ का काफी प्रभाव भारत में शताब्दियों से रहा है– नोहर आदि अनेक स्थानों में हजार वर्ष पुराने नाथ मठ–मंदिर प्राप्त होते हैं। राजस्थान में नाथ पंथ अधिक प्रभावी रहा है।

नाथ पंथ के संबंध में आचार्य हजारीपसाद द्विवेदी (नाथ—सम्प्रदाय, पृष्ठ 171) का रावल शाखा संबंधी विवरण बहुत महत्त्वपूर्ण है। रावल नाथ योगियों की बड़ी भारी शाखा है। रावल शब्द संस्कृत के 'राजकुल' का अपभ्रंश माना जाता है। प्राचीन काल के तीन राजवंशों ने यह उपाधि धारण की थी— मेवाड़ के राजकुल ने, आबू के परमारों ने और जालौर के चौहानों ने। इनके अतिरिक्त जैसलमेर के राजवंश भी 'रावल' उपाधि से विभूषित हुए। 'जैसलमेर री ख्यात' के अनुसार बाहारा के गुरु रावल रतननाथजी ने भाटी देवराज जी को 'आवो सिध रावल राज' कहकर सम्बोधित किया और दो वस्तुएँ आशीर्वाद स्वरूप प्रदान की—एक रस कूंपा, दूसरी झरझर कंथा। भाटी देवराज ने रावल पदवी ग्रहण करने के पश्चात् जैसलमेर के शासक रावल या महारावल कहे जाने लगे। 'जैसलमेर री ख्यात' में वर्णन है कि— रावल रतननाथ जी भाटी देवराजजी पर अतीव प्रसन्न हुये और 'दोय चीज बगसी, जण सू राज्य बान्ध्यो। एक तो रस कूंपो, दूजो झरझर कंथा। माथै हाथ दियो, सिको आपरो बगस्यो। गादी री बगत अछल जोगी रो भेष बणावणो, पछे राज री रीत करणी।' आज भी जैसलमेर के नरेश के राज्य अभिषेक पर इस परम्परा का पूर्ण रूप से पालन होता है।

अतः नाथ पंथ भारत में प्राचीन काल से ही लोकप्रिय रहा है, किन्तु इसे सर्वाधिक प्रश्रय मारवाड़ (जोधपुर) के महाराजा मानसिंहजी (1803—1843) ने प्रदान किया। महाराजा मानसिंहजी विशेष काव्य क्षमता, सामर्थ व प्रतिभा सम्पन्न राजपुरुष तथा नाथ—सम्प्रदाय के असाधारण अनुयायी थे। नाथ भक्त मानसिंहजी के दादा जोधपुर नरेश विजयसिंहजी परम वैष्णव थे। उन्होंने राजाज्ञा द्वारा जोधपुर में मांस—मदिरा सेवन सख्ती से वर्जित कर दिया था। यह बड़ी विचित्र बात है कि जिस घराने में वैष्णव परम्परा काफी पुरानी रही हो, उससे महाराजा मानसिंह कट्टरनाथ पंथी कैसे हुये? इस तथ्य का उत्तर उस दर्शन में है, जहाँ किसी के जीवन में अचानक ऐसी घटना घटित हो जाती है कि उसका जीवन और विश्वास एक अप्रत्याशित मोड़ ले लेता है। इस तरह के उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं, जब किसी आकस्मिक घटना को देखकर बड़े—बड़े साधन सम्पन्न लोगों को भी इस जगत में विरक्ति हो गई। महाराजा मानसिंह जी के जीवन में भी अचानक एक मोड़ आया था, जब वे जालोर के किले में हताश होकर अपने दिन गिन रहे थे। उसी और समय नाथ पंथी देवनाथ ने भविष्यवाणी की कि वह दुर्ग न छोड़े, तीन दिन बात उन्हें जोधपुर का राज्य मिलेगा। वास्तव में ऐसा ही हुआ, जोधपुर के शासक भीमसिंहजी की अचानक मृत्यु हो गई और जोधपुर का राज सिंहासन मानसिंह जी को प्राप्त हुआ। महाराजा मानसिंह जी मेघावी और विद्याव्यसनी तो थे ही, उन्हें नाथ दर्शन को आत्मसात करते देर न लगी और उनकी आस्था नाथ—सम्प्रदाय में दृढ़ से दृढ़तर होती गई।

जोधपुर नरेश बनने पर महाराजा मानसिंहजी ने आयस देवनाथजी को बन्धु–बान्धवों सहित जोधपुर बुला लिया। देवनाथजी के जोधपुर पहुँचने पर महाराजा मानसिंहजी ने स्वयं उनकी अगुवाई करके हाथी पर विराजमान कर नगर में लाये और उनका भव्य स्वागत–अभिनंदन किया। मानसिंहजी ने देवनाथजी को विधिपूर्वक 'राजगुरु' के पद पर आसीन किया और उस दिन से नाथ पंथ को मारवाड़ का राजधर्म घोषित किया। राजगुरु देवनाथजी और उनके भाइयों हरनाथजी, सूरत नाथजी, भीमनाथजी व ओमनाथजी को राज्य में समृद्ध जागीरें प्रदान की गई। जोधपुराधीश्वर मानसिंहजी ने आज्ञा जारी की कि मारवाड़ के हरेक परगने में कम से कम एक नाथ मठ (आसन) अवश्य बनाया जाये। महाराजा मानसिंहजी के आदेशानुसार राजकीय पत्रों में सर्वोपरि 'जालंधर नाथ जी सहाय छै' लिखा जाने लगा।

आयस देवनाथजी और उनके परिवार को अन्यत्र व्यवस्था न होने के कारण सूरसागर के महलों में ठहराया गया, किन्तु मानसिंहजी अपने गुरु की प्रतिष्ठा और स्वयं की गरिमा के अनुरूप एक भव्य आवास स्थल भेंट करना चाहते थे। अतः उन्होंने नाथ के निवास (रहने) के लिये 9 अप्रैल 1804 से नागौरी गेट के बाहर से निर्माण कार्य आरंभ किया, जो कि 4 फरवरी 1805 को बनकर पूर्ण हुआ। इसे 'महामंदिर' नाम प्रदान किया। महामंदिर में बनी छतरी पर से देवनाथ जी प्रतिदिन अपने शिष्य महाराजा मानसिंहजी को दर्शन दिया करते थे। महाराजा गुरु नाथ जी के दर्शन के पश्चात् ही अन्न–जल ग्रहण किया करते थे। महामंदिर क्षेत्र में ही एक सरोवर बनवाया गया, जिसका नामकरण महाराजा ने स्वयं के नाम पर 'मान–सरोवर' किया। इस सरोवर में महाराजा मानसिंहजी और राजगुरु देवनाथ जी नौका–विहार किया करते थे। महामंदिर में ही मानसिंहजी ने अपने–अपने गुरुदेव के लिये उत्तम जालंधर नाथ जी का निज मंदिर बनवाया। निज मंदिर में संगमरमर पर बने विशाल सिंहासन पर जालंधर नाथ जी की मूर्ति विराजमान है। निज मंदिर को वि. सं. 1861 की माघ शुक्ल पंचमी (4 फरवरी 1805) को सर्व साधारण के लिये खोल दिया गया। स्वयं जोधपुराधिपति मानसिं जी प्रत्येक सोमवार को इस मंदिर में दर्शनार्थ पधारते थे।

23 सितम्बर 1805 को आयस देवनाथजी ने महाराजा मानसिंह जी को नाथ पंथ की दीक्षा प्रदान की। आयस देवनाथ जी द्वारा गुरु मंत्र प्राप्त होने पर जोधपुर नरेश मानसिंहजी ने इस उपलक्ष्य में दस हजार आठ सौ चालीस रुपये नाथों को भेंट किये तथा गुरु श्री देवनाथजी को दस हजार दो सौ रुपये के साथ सिरोपाव भेंट किया। योगीराज देवनाथजी के बारे में कहा जाता है कि वे अपने समय के महान तांत्रिक थे और उनकी तंत्र–मंत्र की सिद्धियों के चमत्कारों से महाराजा मानसिंह जी

बहुत प्रभावित थे। महाराजा द्वारा नाथजी और उनके परिवार को दी गई भव्य भवन तथा राजसी सुविधाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव जोधपुर के निवासियों और खास तौर से राजवर्गीय लोगों पर पड़ा, जिसके फलस्वरूप सभी लोग नाथ जी के प्रति श्रद्धावनत होते थे। देवनाथजी का प्रभाव राज्य कार्य में भी होने लगा और वह दिनों–दिन बढ़ता ही गया, महाराजा मानसिंह जी गुरुनाथजी की आज्ञा का उलंघन तो कभी करते ही नहीं थे।

महाराजा मानसिंहजी ने नाथ पंथ की गरिमा बढ़ाने हेतु जोधपुर के गुलाबनगर पर श्रीनाथ मंदिर सोजती द्वार के बाहर चौरासी सिद्धों के मंदिर तथा द्वार के अन्दर नौ नाथों के मंदिर बनवाये। जालौर एवं बाईस परगनों में अनेक नाथ–मंदिर बनवाये। इनके अलावा पदमपुर, बालसमंद तालाबों के तटों पर और मण्डोर में भी नाथ मंदिरों का निर्माण करवाया। यही नहीं उन्होंने नाथ सम्प्रदाय की धार्मिक, योग गरिमा एवं सिद्धि महिमा को चिरंजीवी रखने के लिये मेले–उत्सव आदि का शुभारम्भ किया। महाराजा मानसिंह जी के काल में प्रतिवर्ष नाथ पंचमी को मेले का आयोजन होता था। 26 जुलाई 1805 (श्रावणी अमावस्या) से महामंदिर में प्रतिवर्ष जालंधर नाथ जी की प्रतिष्ठा में नया मेला भरता था। उस मौके पर नगर के दुकानदार अपनी दुकानें वहाँ लगाते थे, यह उत्सव एक सप्ताह तक चलता था। इस नये मेले में लोगों को आने के लिए उत्साहित करने हेतु मानसिंह जी ने व्यापारियों को अपनी वस्तु आधे मूल्य पर बेचने के लिये आदेश दिये।

जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह जी के राजकाल में नाथ–साहित्य को चित्रकला के माध्यम से भी चित्रित किया गया। नाथ–सम्प्रदाय से सर्वाधिक प्रामाणिक और पवित्र धर्मग्रंथ 'सिद्ध सिद्धांत पद्धति' है, जो कि नाथ सम्प्रदाय के यौगिक पक्ष का अध्ययन कराता है। इस ग्रंथ–रत्न को कागज पर चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त नाथ चरित्र, शिव–रहस्य, शिव–पुराण को भी कागज पर चित्रित किया जाकर स्वर्ण के रंगों से अलंकृत किया गया है।

आचार्य प्रतापादित्य के अनुसार स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व राजस्थान में 22 देशी राज्य थे, जिनके सबके कुलसिद्ध गुरु गोरखनाथ थे। इसी प्रकार सेन्सर्स रिपोर्ट ऑफ मारवाड़ स्टेट भाग–3 (1891) के अभिलेख में जोधपुर, जैसलमेर और पूर्व काल में जयपुर के नरेशों के धर्मगुरु नाथ सम्प्रदाय के योगीजन होने की बात कही गई है। अभिलेख के अनुसार जयपुर के नाथावत और चम्पावत तथा मारवाड़ा के कुम्पावत भी उनके भक्त थे। यहाँ तक कि उनके तम्बू, झण्डे और घोड़ों की काठी के कपड़े की खोली के रंग भी गेरुआ होता था।

नाथ पंथ के सिद्धाचार्य तथा उनके शिष्यों द्वारा साधना, जीवन–दर्शन, साहित्य, कला, वेशभूषा, तंत्र–मंत्र, योग, सिद्धि, चमत्कार, जीवद्धार, वरदान, शाप जन्य जितने भी कार्य हुए। नाथों के आवास, आहार–विहार, साधना, राज दरबार में गमागमन, मान–सम्मान और उनके उत्सवों–महोत्सवों ने समाज को विविध रूपों में प्रभावित किया। राजस्थान के सामाजिक जीवन को दिशा बोध देने में नाथ पंथ की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही । नाथ पंथ से संबंधित अनेक मठों, धूणों, समाधियों, मंदिरों का भव्य निर्माण हुआ। भगवान आदिनाथ शिव तथा नाथ गुरुओं और आचार्यों की कलापूर्ण मूर्तियों की स्थापना हुई। वैष्णवों की तरह प्रस्तर फलकों और दीवारों पर नाथ लीलाओं का चित्रांकन भी हुआ। इस प्रकार स्थापत्य–शिल्प–मूर्ति, कलाओं के साथ चित्रकला को भी प्रभावित किया।

नाथ पंथ का शुभारंभ आदिनाथ भगवान शिव ने किया, वे ही इस पंथ के निर्माता, नियंता, मार्गप्रदर्शक एवं प्रथम नाथ है। ब्रह्मानंद ने हठयोग–प्रदीपिका की ज्योत्सना टीका में लिखा हैं– 'आदिनाथः सर्वेषां नाथानां प्रथमः, ततो नाथ सम्प्रदायः प्रवृत्त इति नाथ–सम्प्रदायियों वदन्ति'– अर्थात् आदिनाथ शिव ही समस्त नाथों में आदिनाथ यानि प्रथम नाथ हैं। अस्तु, भगवान आदिनाथ शिव के सृष्टि के आदिकाल विद्यमान रहने के प्रमाण वेदों में मिलते है, इसके अतिरिक्त उनका अविनाशी तथा चारों युगों में वर्तमान रहना भारतीय संस्कृति में मान्य है।

नाथ–परम्परा में आदिनाथ शिव के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण आचार्य मत्स्येन्द्र नाथ ही हैं। नाथ पंथ के मत्स्येन्द्रनाथ जी गुरु हैं और कौलाचार के सिद्ध पुरुष हैं। नेपाल की जनश्रुति में वे अवलोकितेश्वर के अवतार स्वीकार किये गये हैं। नवनाथ परम्परा में मत्स्येन्द्रनाथ जी को माया स्वरूप करुणामय कहा गया है। नारद–पुराण के उत्तर भाग में 69 वें अध्याय में मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा महाज्ञान श्रवण तथा उसके चारों युगों में विद्यमान रहने का वृतान्त वर्णित है। भगवान महेश्वर शिव के सप्तश्रंग पर भगवती उमा पार्वती ने तत्त्व ज्ञान का उपदेश दिया। भगवती के निद्रामग्न होने पर मत्स्य की गोद से निकलकर मत्स्येन्द्रनाथ ने यह तत्वोपदेश सुना। महेश्वर शिव ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी गोद में बिठाकर उनका मुख चूमा और अपना पुत्र कहा, उनका नाम सिद्धनाथ बताया–

*सुतो ममायं किल मत्स्यनाथो विज्ञात तत्वोऽखिल सिद्धनाथः।।*

(नारद पुराण, उत्तर 69/25)

नारद पुराण में ही वर्णन है– कामाक्षा में पार्वतीजी के पुत्र सिद्धनाथ– मत्स्येन्द्रनाथ रहते हैं। वे तपस्या में स्थित हैं। सतयुग, त्रेता और द्वापर में लोग उन्हें प्रत्यक्ष देखते

हैं, पर कलियुग में वे अन्तर्ध्यान रहते हैं और कामाक्षा में उग्र–तपस्या करने से लोग उनका दर्शन पाते हैं। वे विज्ञान में पारंगत योगी हैं–

*तन्नास्ते पार्वती पुत्रः सिद्धनाथो वरानने।*
*उग्रेतपसि लोके सः प्रेक्ष्यते कदाचन।*
*कृतत्रेता द्वापरेषु प्रत्यक्ष दश्यतेऽखिलै।।*
*स मत्स्यनाथः किलतत्र संस्थो।*
*विज्ञान पारंगत एव भद्रे।।*

(नारद पुराण, उत्तर 69)

दादागुरु मत्स्येन्द्रनाथ का चारों युगों में वर्तमान रहना नाथ पंथ के चारों युगों में विद्यमानता को प्रमाणित करता है।

मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ सिद्ध योगी तथा चमत्कारी तांत्रिक के रूप में विश्वविख्यात हुये हैं। गुरु गोरखनाथजी की अमर और चारों युगों में विद्यमान माना गया है। गुरु गोरखनाथ की अयोनिज उत्पत्ति मानी गई है।

नाथ पंथ की प्राचीनता और गोरखनाथजी की अयोनिज उत्पत्ति के बारे में एक जनश्रुति है कि–जब विष्णु कमल में प्रकट हुए, तब गोरखनाथ पाताल में तपस्या कर रहे थे।

विष्णु ने अपने चारों तरफ जल ही जल देखकर पाताल लोक के लिये प्रस्थान किया और गोरखनाथजी से सृष्टि कार्य में सहायता करने की प्रार्थना की और उसे जल पर छिड़कने का आदेश दिया। उन्होंने कहा कि ऐसा करने पर ही सृष्टि कार्य पूरा होगा। विष्णु ने उनके सत्परामर्श का आदर किया और सृष्टि कार्य सुगम हो गया। ब्रह्मा और विष्णु नाथ–सम्प्रदाय में प्रसिद्ध नौ नाथों में क्रमशः सत्यनाथ तथा संतोषनाथ के रूप में प्राचीन काल से प्रतिष्ठित हैं। इनके अतिरिक्त नाथ पंथ के प्रमुख बारह पंथों में प्रथम सत्यनाथी–पंथ के मूल प्रवर्तक सत्यनाथ ब्रह्मा को मानते हैं।

सतयुग में तीर्थराज प्रयाग में एक विशाल यज्ञ में सती सहित शिव भी उपस्थित थे। जब दक्ष यज्ञ में आये, तब सभी देव–मुनियों ने उनका अभिवादन किया, पर महेश्वर आसन से नहीं उठे। यह देख दक्ष बहुत नाराज हुये।

दक्ष के प्रजापिता बनने के बाद एक बार महायज्ञ (कनखल में) आयोजित किया, जिसमें शिव के अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि सभी देवताओं व ऋषि मुनियों को

आमंत्रित किया। शिव ने उस यज्ञ में बिना निमंत्रण के जाना उचित न समझा, पर सती को अपने पिता प्रजापति दक्ष के यज्ञ में जाने की स्वीकृति दे दी। यज्ञ स्थल पर सती के पहुँचने पर दक्ष ने शिव की निंदा की। सती ने यज्ञ में शिव का भाग न देखकर तथा उनकी निंदा सुनकर अपने शरीर को योगाग्नि से भस्म कर देने का निश्चय किया और यज्ञ में अपने शरीर की आहुति दे दी। आकाश, पाताल और पृथ्वी में हा–हाकार मच गया। दक्ष यज्ञ ध्वस्त हुआ।

शिव–सती के वियोग में क्षुब्ध होकर उनका मृत शरीर कंधे पर ले स्थान–स्थान घूमने लगे। ब्रह्मादि देव चिन्तित हुये कि कहीं शिव के अस्थिर होने से प्रलय न हो जाय। भगवान विष्णु ने तुरंत धनुष उठाया और सती के अंगों को काट डाला। इस प्रकार सती 51 खण्डित अंगों से 51 शक्ति पीठों की स्थापना हुई। वे पीठ–वृन्दावन वाराणसी, कश्मीर, प्रयाग, ज्वालामुखी, जालंधर, उज्जैन, कामरूप, पाटन–तुलसीपुर इत्यादि स्थानों पर भगवती का श्रीविग्रह प्रतिष्ठित है। इन 51 पीठों में देवी पाटन पीठ का अपना विशेष महत्त्व है, यहाँ सती का पट (वस्त्र) वामस्कन्ध (बायां कंधा) सहित गिरा था। इस विषय में प्रसिद्ध श्लोक हैं–

*पठेन सहितः स्कन्ध, पपात यत्र भूतले।*
*तत्र पाठेश्वरी नाम्ना ख्यातिमाप्ता माहेश्वरी)* (स्कन्ध पुराण, माहेश्वर खण्ड)

सिद्ध शक्तिपीठ देवी पाटन के पाटेश्वरी– पीठ की स्थापना का श्रेय गोरखनाथजी को ही जाता है। उन्होंने भगवान शिव की आज्ञा और प्रेरणा से पीठ स्थापित कर भगवती की आराधना और योग–साधना की। एक मत से भगवान शिव ने गोरखनाथ से कहा कि जहाँ–जहाँ सती के अंगों का पात हुआ है, वहाँ–वहाँ जाकर आप सिद्धपीठों की स्थापना तथा पूजा पद्धति का उपदेश कीजिये। देवी पाटन में एक प्राचीन शिलालेख के रूप में यह श्लोक प्राप्त है–

*महादेव समाज्ञपः सतीस्कन्ध विभूषितम्।*
*गोरक्षनाथो योगीन्द्रस्तेन पाटेश्वरी मठम्।।*

इस प्रकार गोरखनाथ जी की सतयुग में उपस्थिति नाथ पंथ की सतयुग में विद्यमानता को सिद्ध करते हैं। सतयुग में ही गोरखनाथ जी ने पंजाब प्रदेश में झेलम नदी के किनारे गोरखटिल्ला स्थान में निवास किया था।

त्रेतायुग में गोरखनाथ जी की विद्यमानता का वर्णन महाराजा मानसिंह ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ – 'श्री नाथ तीर्थावली' में किया है। गुरु गोरखनाथ ने त्रेतायुग में गोरखपुर

में तपस्या की। कहा जाता है कि गोरखपुर में स्थित गोरखनाथ जी की तपःस्थली में रघुवंशी नरेश रघु, अज और भगवान राम ने उनका दर्शन किया था। त्रेतायुग में ही गुरु गोरखनाथ जी ने अपनी तपस्थली में अखण्ड ज्योति प्रज्ज्वलित की थी। वह ज्योति आज भी मंदिर में अनेक आघात–प्रतिघात का सामना करती हुई अनवरत रूप में जल रही है। त्रेतायुग में ही इस तपस्थली पर गोरखनाथ जी ने अखण्ड धूनी भी प्रज्ज्वलित किया था, जो आज भी दर्शनीय है। नाथ पंथ में ऐसा प्रसिद्ध है कि भगवान राम के राज्याभिषेक–उत्सव पर पधारकर आशीर्वाद देने के लिये गोरखनाथ जी को आमंत्रित किया गया था, पर गोरखनाथ जी के तपस्या लीन रहने के कारण केवल आशीर्वाद ही भेजा गया।

नाथ–सम्प्रदाय की मान्यता है कि भगवान श्री रामचन्द्र, सीताजी, लक्ष्मण जी तथा हनुमान जी नाथ–सम्प्रदाय में दीक्षित हुये थे। इसके प्रमाण भी विविध ग्रन्थों तथा प्रचलित जनश्रुतियों में मिलते हैं। कहते है सूर्यवंशी राजा रामचन्द्रजी ने गोरखनाथ से वरदान प्राप्त करके दक्षिण में रामनाथ और उत्तर में गोरखनाथ की स्थापना की तथा दिग्विजयी हुये। इनके स्मारक आज भी है।

उड़ीसा के प्रसिद्ध ग्रंथ 'सारला महाभारत' के अनुसार गोरखनाथ जी उड़ीसा के समुद्र तटवर्ती कजली देश में रहते थे। यह क्षेत्र पहले समुद्र के गर्भ में था, जिसका उद्धार सोमदेव नामक रुद्रगण ने किया था। यहीं श्री गोरखनाथ ने त्रेतायुग में भगवान रामचन्द्र जी को योगतत्व का उपदेश दिया था।

त्रेतायुग में ही लक्ष्मण जी अपने अन्तिम दिनों में 'गोरख–टिल्ले' (इसे टिल्ला बालगुँदाई और लक्ष्मण का टिल्ला भी कहा जाता है, जो कि अब पाकिस्तान में है) पर आकर निवास किया था और यही गोरखनाथ जी द्वारा कर्णमुद्रा धारण कर योगी बन गये थे।

हनुमान जी के नाथ पंथ में दीक्षित होने का विवरण महाराष्ट्र की जनश्रुतियों में मिलता है। नासिक जिले के त्र्यम्बक क्षेत्र में श्री गोरखनाथ का प्राचीन–मठ विद्यमान है। इसी क्षेत्र में अंजनी–पहाड़ भी है, जहाँ केसरी नामक वानर रहा करते थे। महावीर हनुमान जी का जन्म इसी पहाड़ी पर हुआ था। यहीं गुरु गोरखनाथ जी ने हनुमान जी को नाथ–सम्प्रदाय की दीक्षा देकर वीरबक नाथ नाम प्रदान किया।

राजस्थान के कुड़ेल पुष्कर निवासी स्व. वक्षीनाथजी ने पंथ की एक प्राचीन उक्ति इस प्रकार बताई–

*रामा नाथ्या, लिछमण नाथ्या, नाथी सीता माई।*
*पकड़ भुजा हनुमत की नाथी, जल फिरी नाथजी की दुहाई।।*

नाथ–पंथ के बारह प्रमुख पंथों में आज श्री श्रीराम का राम–पंथ तथा लक्ष्मणजी का 'नाटेश्वरी या लक्ष्मणाथी पंथ' प्रचलित है। इसी प्रकार हनुमानजी का 'ध्वज–पंथ' की स्थापना करने से ही हनुमान पुत्र मकरध्वज योगी नाम से प्रसिद्ध हुये थे। आज भी अधिकांश चित्रों में हनुमान के कानों में कुण्डल धारण किये हुये चित्रित किया जाता है।

द्वापर युग में भी नाथ–पंथ की विद्यमानता के प्रमाण मिलते हैं। द्वापर युग में गोरखनाथजी ने जूनागढ़ राज्य में प्रभासपट्टन के निकट गोरख–मढ़ी स्थान पर तप किया था। जोधपुर नरेश मानसिंह जी ने श्रीनाथ तीर्थावली ग्रंथ में वर्णन किया है कि पश्चिम देश में प्रभाव क्षेत्र के निकट गोरक्षमठिका (गोरख–मढ़ी) नामक परमधाम है। उस स्थान पर भगवान श्रीकृष्ण का भगवती रुक्मिणी से विवाह सम्पन्न हुआ था। विवाह के समय रुक्मिणी के रूप लावण्य से देवता मोहित हो गये और उनका कंकण बांधने में असमर्थ हो गये। तब ऋषियों तथा अन्य लोगों ने वहाँ विराजमान गुरु गोरखनाथ का स्तवन किया कि आप दर्शन दीजिये। स्तुति से प्रसन्न होकर गोरखनाथ जी प्रकट हुये। गोरखनाथ जी ने स्नेह और आशीष से कंकण बंधन सम्पन्न हुआ। उसके बाद भगवान श्री कृष्ण और रुक्मिणी जी ने बड़ी श्रद्धा से गोरखनाथ की स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर दिव्य दम्पत्ति से वर मांगने को कहा। दोनों ने निवेदन कि– हे नाथ! आप यहाँ निवास कीजिये। नाथ जी ने तथास्तु कहा और वहीं प्रतिष्ठित हो गये।

(श्री नाथ तीर्थावली 31–38)

लोक में प्रसिद्ध द्वापर युग की एक अनुश्रुति है कि गुरु गोरखनाथ जी के तपःस्थल गोरखपुर में विराजते समय धर्मराज युधिष्ठिर का राजसूर्य यज्ञ सम्पन्न हो रहा था। उस यज्ञ में पधारने के लिये निमंत्रण देने स्वयं पाण्डव वीर भीमसेन गोरखपुर आये। उस समय गुरु गोरखनाथ जी समाधि में लीन थे। अस्तु, भीमसेन से प्रतीक्षा करने का आग्रह किया गया। श्री भीमसेन ने कुछ समय तक इस तपःस्थल पर विश्राम किया। उनके शरीर के भार से पृथ्वी का यह भाग दब जाने पर उस स्थान पर एक खड्डा बन गया, जो आज भी सरोवर के रूप में गोरखपुर के मंदिर के प्रांगण में विद्यमान है। एक अन्य किवदंती इस प्रकार है कि जब महाभारत के भीमसेन जी बर्फ पर मूर्छित पड़े थे तब गोरखनाथ जी ने उन्हें चेतन किया और गंगा के मैदानी प्रदेश तथा नेपाल–भूटान का राजा बना दिया।

'सादला महाभारत' ग्रंथ के अनुसार सहदेव गुरु गोरखनाथ जी के दर्शनार्थ कजली देश (उड़ीसा) आये। उन्होंने अवधूत योगी श्री गोरखनाथ को शुक्लाम्बर से आच्छादित एवं हृदय पर वकुल पुष्पों की तथा शिर के केश कपाल में पदमपुष्पों की माला को धारण किये हुये देखा था। उनके एक हाथ में वंशी एवं दूसरे में खड्ग शोभायमान था। श्री गोरखनाथ ने सहदेव को स्तंभन विद्या का उपदेश देकर अन्तर्ध्यान हो गये थे। गोरखनाथ जी गारुड़ी (सर्प विष निवारण) विद्या में प्रवीण थे। अर्जुन ने इन्हीं से यह विद्या सीखकर सिद्धि प्राप्त की थी। सादला–महाभारत के विराट पर्व के अनुसार उन्होंने इस गारुड़ी विद्या के बल पर 'काल सर्पदंष' से अपने पुत्र अभिमन्यु के प्राणों की रक्षा की थी।

द्वापर युग में पांचों पाण्डवों तथा सती द्रोपदी को योग विद्या से गोरखनाथ जी ने अमर किया। अस्तु, द्वापर युग में श्री कृष्ण का नाथ–सम्प्रदाय में दीक्षित होना और गोपाल–पंथ चलाना प्रसिद्ध है। इसी प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर तथा भीष्म पितामह का नाथ–पंथ में दीक्षित होना प्रसिद्ध है। उन्होंने धर्मनाथ (युधिष्ठिर) और गंगानाथ (भीष्म) के नाम धारण कर बारह प्रमुख पंथों के धर्मनाथी–पंथ और गंगानाथी–पंथ का प्रवर्तन किया।

कलियुग में नाथ–पंथ की विद्यमानता और उसका प्रभाव किसी से छिपा नहीं है। हालांकि इसमें कुछ परिवर्तन हुये तथा अन्य उपपंथों और नाथ–सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि पर विभिन्न सम्प्रदायों का निर्माण भी हुआ है, पर फिर भी नाथ–सम्प्रदाय युगों–युगों से अपनी संस्कृति, अपने इतिहास, अपने साहित्य, अपने मार्गदर्शन, अपने सिद्धांतों और विश्वासों को लेकर आज तक विद्यमान है। अनेक संघर्षों के बाद भी आज नाथ–सम्प्रदाय का जीवित रहना एक महान गौरव की बात है। इस सम्प्रदाय में नेपाल के राजा रतन परीक्षक, पृथ्वीनारायण शाह, उज्जैन मालवा के राजा भर्तृहरि, बंगाल के राजा गोपीचन्द, मारवाड़ के राजा मानसिंह, मेवाड़ के राजा बप्पा रावल आदि अनेक राजा–महाराजाओं का दीक्षित होना नाथ पंथ की परम कल्याणकारी साधना पद्धति, उत्कृष्ट विचारधारा एवं प्रभावी चमत्कार दर्शन को प्रमाणित करता है।

(सौजन्य आधार– ग्रंथनाथ इतिहास– प्रकाशनाथ चौहान)

जिन शक्ति पीठों का उल्लेख तंत्र चूड़ामणि में किया गया है। वे निम्न प्रकार से वर्णित हैं। इन पीठों में हिंगलाज शक्तिपीठ सर्वोच्च एवं सर्वपूज्य माना जाता है। आदर की बात यह है कि हिंगलाज माता (बलोचिस्तान) में आज भी जो पूजा करने वाले पुजारी हैं वे मुसलमान हैं। यह हमारी साझी संस्कृति का श्रेष्ठतम उदाहरण है।

भारत से जितने भी तीर्थयात्री वहाँ जाते हैं, उनकी रक्षा–सुरक्षा पूरी तरह से सुनिश्चित की जाती है।

देवी भागवत के अनुसार–

*अपश्यतां सतीं वह्नौ दह्यमानां तु चित्कलाम् ।*
*स्कंधेऽप्यारोपयामास हा सतीति वदन्मुहुः।।*
*बभ्राम भ्रांतिचत्तःसन्नानादेशषु शंकरः।*
*तदा ब्रह्मादयो देवाश्चितामापुरनुत्तमाम्।।*
*विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः।*
*चिच्छेदावयवान्सत्या स्तत्तस्थानेषु तेऽपतन्।।*
*तत्स्थानेषु तत्रासीन्नानानामूर्तिधरो हरः।*
*उवाच च ततो देवान्स्थानेष्वेतेषु ये शिवाम्।*
*नित्य सन्निहिता यत्र निजांगेषु परांबिके।।*
*स्थानष्वेतेषु ये मर्त्याः पुरश्चरण कर्मिणः।*
*तेषां मंत्राः प्रसिध्यंति मायाबीजं विशेषतः।।*
*इत्युक्त्वा शंकरस्तेषु स्थानेषु विरहातुरः।*
*कालं निन्ये नृपश्रेष्ठ जपध्यानसमाधिभिः।।*

शब्दार्थ– भगवान शंकर ने उस चैतन्यरूपिणी सती को हुताशन में दग्ध होते देख अपने कंधे पर उठा लिया और नाना देशों में भ्रमण करने लगे। यह देखकर ब्रह्मादि देवगण चितिंत हो पड़े। भगवान विष्णु ने सती के सभी अवयवों को शर से काट डाला। वे सब अवयव नाना स्थानों में जा गिरे। भगवान शंकर उन सब स्थानों में नाना प्रकार की मूर्ति धारण कर रहने लगे और देवताओं से बोले– 'यदि कोई इन सभी स्थानों की भक्तिपूर्वक भगवती शिवा की आराधना करे, तो उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यहाँ भगवती अम्बिका अपने में सर्वदा सन्निहित रहती है। मानवगण यदि इस स्थान में रहकर पुरश्चरण विशेषतः माया बीज का जप करें, तो उनके वे सब मंत्र सिद्ध हो जाते हैं। विरहातुर शंकर इतना कहकर जप, ध्यान और समाधि द्वारा उन सभी स्थानों में यह कालयापन करने लगे।'

तंत्र चूड़ामणि में इक्यावन शक्ति पीठों का उल्लेख निम्नलिखित प्रकार है–

| स्थान | अंग तथा अंगभूषण | शक्ति | भैरव |
|---|---|---|---|
| 1. हिङ्गला | ब्रह्मारन्ध्र | कोट्टवीशा | भीमलोचन |
| 2. शर्करार | तीन चक्षु | महिषमर्दिनी | क्रोधीश |
| 3. सुगन्धा | नासिका | सुनन्दा | त्र्यम्बक |
| 4. काश्मीर | कण्ठदेश | महामाया | त्रिसन्ध्येश्वर |
| 5. ज्वालामुखी | महाजिह्वा | सिद्धिदा | उन्मत्त भैरव |
| 6. जलन्धर | स्तन | त्रिपुरमालिनी | भीषण |
| 7. वैद्यनाथ | हृदय | जयदुर्गा | वैद्यनाथ |
| 8. नेपाल | जानु | महामाया | कपाली |
| 9. मानस | दक्षिणहस्त | दक्षायणी | अमर |
| 10. उत्कल में विरजाक्षेत्र | नाभिदेश | विमला | जगन्नाथ |
| 11. गण्डकी | गणस्थल | गण्डकी | चक्रपाणि |
| 12. बहुला | वाम बाहु | बहुलादेवी | भीरुक |
| 13. उज्जयिनी | कूर्प | मंगलचण्डिका | कपिलबर |
| 14. त्रिपुरा | दक्षिणपाद | त्रिपुरसुन्दरी | त्रिपुरेश |
| 15. चट्टल | दक्षिणबाहु | भवानी | चन्द्रशेखर |
| 16. त्रिस्त्रोता | वामपाद | भ्रामरी | भैरवेश्वर |
| 17. कामगिरि | योनिदेश | कामख्या | उमानंद |
| 18. प्रयाग | हस्ताङ्गुलि | ललिता | भव |
| 19. जयन्ती | वाम जङ्घा | जयन्ती | क्रमदीश्वर |
| 20. युगाद्या | दक्षिणाङ्गुलि | भूतधात्री | क्षीरखण्डक |
| 21. कालीपीठ | दक्षिणापादाङ्गुलि | कालिका | नकुलीश |
| 22. किरीट | किरीट | विमला | संवर्त्त |
| 23. वाराणसी | कर्णकुण्डल | विशालाक्षी मणिकर्मी | कालभैव |
| 24. कन्याश्रम | पृष्ठ | सर्वाणी | निमिष |
| 25. कुरुक्षेत्र | गुल्फ | सावित्री | निमिष |
| 26. मणिबन्ध | दो मणिबन्ध | गायत्री | सर्वानंद |
| 27. श्रीशैल | ग्रीवा | महालक्ष्मी | शम्बरानंद |
| 28. कांञ्ची | अस्थि | देवगर्भा | रुरू |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 29. कालमाधव | नितम्ब | काली | असिताङ्ग |
| 30. शोणदेश | नितम्बक | नर्मदा | भद्रसेन |
| 31. रामगिरि | अन्य स्तन | शिवानी | चण्डभैरव |
| 32. वृन्दावन | केशपाश | उमा | भूतेश |
| 33. शुचि | ऊर्ध्वदन्त | नारायणी | संहार |
| 34. पञ्चसागर | अधोदन्त | वाराही | महारुद्र |
| 35. करतोयातट | तल्प | अपर्णा | वामनभैरव |
| 36. श्रीपर्वत | दक्षिण गुल्फ | श्रीसुन्दरी | सुन्दरानंद भैरव |
| 37. विभाष | वाम गुल्फ | कपालिनी | सर्वानंद |
| 38. प्रभास | उदर | चन्द्रभागा | वक्रतुण्ड |
| 39. भैरव पर्वत | ऊर्ध्व ओष्ठ | अवन्ति | लम्बकर्ण |
| 40. जनस्थल | दोनों चिबुक | भ्रामरी | विकृताक्ष |
| 41. सर्वशैल | वामगण्ड | राकिनी | वत्सनाथ |
| 42. गोदावरी तीर | गण्ड | विश्वेशी | दण्डपाणि |
| 43. रत्नावली | दक्षिण स्कन्ध | कुमारी | शिव |
| 44. मिथिला | वाम स्कन्ध | उमा | महोदर |
| 45. नलहाटी | नला | कालिकादेवी | योगेश |
| 46. कर्णाट | कर्ण | जयदुर्गा | अभीरु |
| 47. वक्रेश्वर | मनः | महिषमर्दिनी | वक्रनाथ |
| 48. यशोर | बायीं हथेली | यशोश्वरी | चन्द्र |
| 49. अट्टहास | ओष्ठ | फुल्लरा | विश्वेश |
| 50. नन्दिपुर | कण्ठहार | नन्दिनी | नन्दिकेश्वर |
| 51. लंका | नूपुर | इन्द्राक्षी | राक्षसेश्वर |
| (क) विराट | पादाङ्गलि | अम्बिका | अमृत |
| (ख) मगध | दक्षिणजङगा | सर्वानंदकरी | व्योमकेश |

कुछ पुस्तकों में क और ख में वर्णित पीठों का उल्लेख नहीं है। देवी पुराण में शक्ति महापीठ की स्थापना को लेकर निम्नांकित श्लोक महत्त्वपूर्ण हैं–

*स देहो बहुधा भूत्वा पतिष्यति धरातले।*
*तत्र तद्धि महापीठं भविष्यत्यघनाशनम्।।*
*विष्णुचक्रेण संछिन्नास्त देहावयवाः पृथक्।।*

*पीठानि चैकपच्चाशद् भवन्मुनिपुङ्गग।।*
*अंगप्रत्यंगपातिनछाया सत्यां महीतले।।*

कालिदास के कुमारसंभव में सती का यज्ञ में पिता से अपमानित होकर योग बल से शरीर छोड़ने का उल्लेख किया है–

*अथावमानने पितुः प्रयुक्ता दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी।*
*सती सती योग वसृष्ट देहा तां जन्मने शैलवधूं प्रवेदे।।*

(उस मैनाक के जन्म के कुछ ही दिनों के बाद महादेवजी की पहली पत्नी और दक्ष की परम साध्वी कन्या सती ने अपने पिता से अपमानित होकर योग बल से अपना शरीर छोड़ दिया और दूसरा जन्म लेने के लिये वे मैना के गर्भ में आ पैंठी।)

उपरोक्त प्रकार से भारतीय उपमहाद्वीप में शक्तिपीठों की स्थापना हुई। हिंगलाज माता की तीर्थयात्रा के मध्य अनेक पावन स्थलों में नाथों के स्थल भी आते हैं। गोरखनाथजी की यात्रा के समय उन्होंने जहाँ–जहाँ मुकाम किए, वहाँ–वहाँ तीर्थ स्थापित है। ऐसा ही एक पावन तीर्थ हैं– 'टीला जोगियान'। टीला जोगियान–पंजाब, पाकिस्तान के पूर्वी नमक क्षेत्र में समुद्र तल से 3200 फुट ऊँचाई पर झेलम शहर के पश्चिम में 25 किलामीटर दूरी पर स्थित है। यह स्थान लगभग 4000 वर्षों से हिन्दुओं द्वारा सूर्य पूजन के रूप में उपयोग होता आ रहा है। गुरु गोरखनाथजी टीला जोगियान पधारे थे। कनफट नाथ सम्प्रदाय का यह प्रथम प्रमुख केन्द्र रहा है। टीला जोगियान ईसा से लगभग 100 वर्ष पूर्व भी निर्मित था। यह कनफटा जोगियों द्वारा गुरु गोरखनाथ के आदेश से पूजित होता है। यहाँ गुरु नानक देवजी ने भी अपने 40 दिन साधना में बिताये थे। महाराजा रणजीतसिंह के शासन काल में वहाँ एक बावड़ी भी इस स्मृति में निर्मित की गई। बादशाह जहाँगीर वहाँ अपनी आस्था प्रकट करने गये थे। पिछले पृष्ठों में चौसठ योगिनियाँ की चर्चा की गई है। यद्यपि ये योगिनियां शक्ति की दूतियां (शक्तियाँ) कहीं गई हैं, तथापि नाथ पंथ के योगी भी इनको साधते हैं।

मृत्यु लोक में मातृ शक्ति महामाया (दुर्गा) आद्यशक्ति को कई रूपों में पूजा जाता हैं। चौसठ योगिनियाँ वस्तुतः मातादुर्गा कि सहायक शक्तियाँ है, जो समय–समय पर दुर्गा की सहायक शक्ति के रूप में कार्यों का सम्पादन करती हैं। सृष्टि के अन्त में ये सहायक शक्तियाँ पुनः आद्य शक्ति में विलीन हो जाती हैं, केवल आद्य शक्ति ही शेष रहती हैं, जिससे पुनः सहायक शक्तियाँ–योगिनियों की रचना होती है। आद्य शक्ति दुर्गा की आरती में चौसठ योगिनी का उल्लेख मिलता है– 'चौसठ योगिनी गावत, नृत्य करत

भैरव।' चौसठ योगिनियाँ स्वयं आद्यशक्ति की पूजा–अर्चना व उनका गुणगान करती हैं, जिससे मातृशक्ति से इनमें ऐसी शक्ति का बोध उत्पन्न होता है, जिसका पालन करने का दायित्व वे निभाती है। जिसने भी अपने आपको इन शक्तियों को समर्पित कर दिया, वो चिंतामुक्त होकर परमानंद को प्राप्त करता है।

आद्य मातृशक्ति दुर्गा की सहायक शक्तियाँ चौसठ योगिनियाँ शीघ्र ही फल देने वाली होती हैं। ये धूप, दीप, नैवेद्य, पूजा, उपहार आदि से प्रसन्न होकर मनवांछित फल प्रदान करती हैं। जो इनके नामों का पाठ करता है, उन्हें आसुरी शक्तियाँ डाकिनी–शंकिनी, कूष्माण्ड एवं राक्षस आदि पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। इनकी पूजा–अर्चना से कोई कष्ट नहीं आता तथा बच्चे आसुरी शक्तियों के प्रभाव से मुक्त रहते हैं। इनकी पूजा–अर्चना से संग्राम, राजकाज व विवाद आदि से विजय प्राप्त होती है। हिंगलाज माता भी अग्रशक्ति का ही स्वरूप है।

कल्प भेद के आधार पर इनके भिन्न–भिन्न नाम पाये हैं। स्कन्धपुराण के काशीखण्डोत्त के अनुसार चौसठ योगिनों के नाम हैं–

| | | |
|---|---|---|
| 1. गजानना | 2. सिंहमुखी | 3. काकतुण्डिका |
| 4. गृघास्या | 5. उष्ट्रग्रीवा | 6. हयग्रीवा |
| 7. वाराही | 8. शरभानना | 9. उलूकिंका |
| 10. शिवाराव | 11. मयूरी | 12. विकटानना |
| 13. अष्टवक्त्रा | 14. कोटराक्षी | 15. कुब्जा |
| 16. विकटलोचना | 17. शुष्कोदरी | 18. लालजिह्वा |
| 19. अश्रदंष्ट्रा | 20. वानरानना | 21. द्वक्षाक्षी |
| 22. केकराक्षी | 23. बृहत्तुण्डा | 24. सुराप्रिया |
| 25. कपालहस्ता | 26. रक्तक्षी | 27. शकी |
| 28. श्वेनी | 29. कपोतिका | 30. पाशहस्ता |
| 31. दण्डहस्ता | 32. प्रचण्डा | 33. चण्डविक्रमी |
| 34. शिशुंघ्री | 35. पापहन्त्री | 36. कालीरुधिस्पायिनी |
| 37. वासांधया | 38. गर्भभक्षा | 39. शवहस्ता |
| 40. अन्त्रामालिनी | 41. स्थूलकेशी | 42. बृत्कुक्षिणी |
| 43. सर्पास्या | 44. प्रेतवाहना | 45. दन्दशूकरा |

| | | |
|---|---|---|
| 46. क्रौक्ती | 47. मृगशीर्षा | 48. वृषानना |
| 49. व्यात्तास्या | 50. घूमनि क्ष्वासा | 51. व्योमैकचरणा |
| 52. ऊर्ध्वदृक् | 53. तापनी | 54. शोषर्णीदृष्टि |
| 55. कोटरी | 56. स्थूलनासिका | 57. विद्युत्प्रभा |
| 58. बलाकास्या | 59. मार्जारी | 60. कपूतना |
| 61. अट्टाहासा | 62. कामाक्षी | 63. मृगाक्षी |
| 64. मृगलोचना | | |

अनुष्ठानों में, यज्ञ मंडल में आग्नेय (दक्षिण–पूर्व) कोण के चतुषष्टि कोष्ठात्मक वेदी में योगिनीचक्र बनाकर तत्तद् देवियों की स्थापना करके, आव्हानपूर्वक वैदिक मंत्रों से इनका षोडशोपचार पूजन किया जाता है। योगिनीचक्र के आरम्भ चक्र से दक्षिण से उत्तर की ओर तीन कलशों में महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती की स्थापना कर नीचे आठ–गुणा–आठ प्रकोष्ठों में चौसठ योगिनियों के कलशों की स्थापना की जाती है।

चौसठ योगिनी माताओं का विधि–विधान से किये गए पूजन से ये प्रसन्न होकर दुखों का विनाश, अभय देकर एवं सर्वविघ्नों का नाश करती हैं। इनकी कृपा से कल्याण की प्राप्ति होती है।

नाथ पंथ में इन योगिनियों की साधना करते–करते बाद में पंचमकारी साधना की परम्परा नाथ सम्प्रदाय में चली। उस परम्परा के होते साधक नाथों ने एक स्त्री को अपनी साधना में शामिल कर लिया एवं उसे जोगिनी या योगिनी नाम से पुकारा जाने लगा।

आगे चलकर लोक में जोगनियों की अवधारणा की गई। उन्हें स्थापित कर अपनी कुल देवी के रूप में माना जाने लगा। विशेष रूप से चतुर्थ वर्ग में जोगणियों की पूजा की जाने लगी। इसकी पूजा कहीं भील, वागरी और नाथों द्वारा की जाती है। कहीं–कहीं अन्य जातियाँ भी जोगणियाँ माता की पूजा करती पाई गई हैं।

इन माताओं के समक्ष पशुबलि व मदिरा धार का भी चलन पड़ा जो आज भी पारंपरिक रूप से चला आ रहा है।

नाथपंथ में हिंगलाज माता को अत्यंत पवित्र देवी के रूप में आराधा जाता है। मंदिर में सब प्रकार से पवित्रता का ध्यान रखा जाता है। एक विशेष बात यह भी कि

इन लोक देवियों ने जिन तथ कथित भैरव राक्षसों का वध किया, वे सभी भ्रष्टाचरण वाले आतंकी एवं आराजक नाथ ही थे। जो नाथ पंथ के सत्य पर दृढ़ रहे, वे सभी 'साक्षस' एवं जो पंथ भ्रष्ट हो गए वे राक्षस मान्य हुए। ऐसी लोक मान्यता है। रामदेव ने जिस भैरव राक्षस का वध किया था, वह वस्तुतः भ्रष्ट तांत्रिक नाथ ही था। बाद में उनके शिष्य रामदेवजी के चरण–शरण हुए और कामड़ अर्थात् काम (सेवा) करने वाले कहलाए। पश्चात् वे एक जाति के रूप में विकसित हुए, यह जाति मेघवाल समाज के मंदिरों व रामदेव जी के चरण पादों की सेवा–पूजा करती है।

(हिंगलाज शक्ति पीठ– ओंकारसिंह लखावत के ग्रंथ से साभार )

## गुरु गोरखनाथ, नाथ पंथ एवं हिंगलाज माता

नाथ पंथ की हिंगलाज माता इष्ट देवी हैं। गुरु गोरखनाथ की हिंगलाज यात्रा का उल्लेख अनेक ग्रंथों में मिलता है। 'गोरख चरित्र' के अनुसार – 'हिंगलाज गांधार आदि तीर्थ स्थानों का परिभ्रमण करते हुए एक समय महायोगी गोरखनाथजी ने अपने शिष्य सुखीरामनाथ और सूर्यमलनाथ के साथ हिमालय के समीपवर्ती क्षेत्र में प्रवेश किया। 'गोरखपुराण' के अनुसार– अजायानाथ नामक योगी बहुत पहुँचा हुआ संत था। उसने गोरखनाथ जी से भेंट की। अधिकारी समझकर गोरखनाथ ने उन्हें अपने साथ लिया और भ्रमण करते हुए समुद्र तट पर घूमते हुए हिंगलाज पर्वत जा पहुँचे। गोरखनाथियों की हिंगलाज यात्रा का वर्णन अंग्रेज लेखक रोज ने यों किया–Hign Laj the last holy plce of the Hindus to wards the west, is visited by Gorakhanthi. They consider that a pilgrimage to this place is necessary for all who wish to perfect themselves and to bcome adepts in Yoga'.

अखिल भारतीय नाथ सम्प्रदाय के उपाध्यक्ष बाबा श्री चांदनाथजी के अनुसार गुरु गोरखनाथ जी ने बलूचिस्तान स्थित हिंगलाज माता के दर्शन कर तपस्या की थी। प्राचीन काल से हिंगलाज नाथ सम्प्रदाय की इष्ट देवी होने के कारण प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में नाथ योगी हिंगलाज यात्रा करते थे। जोगी टोली नाथ सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र रहा है।

दादा गुरु मत्स्येन्द्रनाथ तथा गुरु गोरखनाथ ने हिंगलाज माता की शक्ति के ऊपर योग शक्ति से विजय पाकर हिंगलाज को वचनबद्ध किया था कि हमारे नाथ सम्प्रदाय के किसी भी शाबर तंत्र–मंत्र विधि–विधान में सहायता करनी होगी। अतः हिंगलाज शक्ति सहयोग के लिये उसके नाम से यहाँ ज्योत (मंत्र द्वारा) चेतन की जाती है।

## हिंगलाज मंत्र जाप

सत नमो आदेश। गुरूजी को आदेश। ॐ गुरुजी। ॐ सिद्धों पहला नाम ध्रपदा दूजा नाम मादका तीजा नाम जन्माष्टमी। चौथा नाम वसुन्धरा। पांचवां नाम पंचकर्ता। छठा नाम ब्रह्मचण्डी। सांतवा नाम शिवकुमारी। आठवां नाम अष्टभुजा। नौवां नाम नौ करोड़ दुर्गा। दसवां नाम सिंहरूप भवानी। इतिक द्वादश पढ़न्ते सो बाला गोरक्ष जती अगल पत्त हिंगलाज देवी सुर नर मुनि जोगेश्वर ध्यावे। छप्पन करोड़ घोल मंगल चामुण्डा गावे। ब्रह्मापुरे वेद, इन्द्र आरती उतारे मेघमाला पानी भर लावे औघड़ जोगी नौ ग्रह करे। एकोत्तर सौ क्रिया ले धरे। भवन—भवन ते मौरी माय, तीन भवन सेवा करे। भल आये भल आयसी। भाग प्राप्त पायसी कुम्डी हर कुण्ड कपा। सुरहान्दा पुरसिया सुरहान्दा काम। चलो समुन्द्र तीर्थों जाप जपे मात हिंगलाज। हः हः जरनी जैह करनी, धूपक ध्यानकमंजक पूजा। मनकी मनसा देवी, जालफा पूरे। लालो जसो दोनों अगबानी। भूखा भोजन, प्यास पानी। जंगल—जंगल आवा दानी। सिंह रूप में कैलाश पर्वत धिरानी। तू भय जागे तू भय सोवे, तू भये जल रूपा न धोवे। काश्मीर में कैलास नगर कोट ज्वाला। डाकनी, शाकनी, मारनी, तारणी, देव—दानव, तत्व माता एक दुर्गा दूसरी विधाता वेगर—वेगर को ध्याऊँ आद भवानी दुर्गा को ध्याऊँ। दुर्गा माता हो प्रचण्ड। मावस ऊपर पड़वा ढले। असंख्य भुजा देव को चढ़े। मुनि मन मेखला किया। नाद सिंगी मिल भीम को दिया। गर्जी देवी असुर संहारा। बंकासुर का किया संहारा। पांच पांडवा चण्डी ध्याई, नव बल वीरा सवा पर्वत में नाथ कबीरा। जहाँ बैठा राम लखन दो भाई। जालत—जालत जले पियाला जलो बर्मे राजा रावण ने मारा। उठो सहोदरो मिल गावो गीता। जलो बर्मे राजा राम जीता। मारा खप्पा जीता राम है। देव गणेश की भेंट मनावा। सो भल विद्या पहली पावा, जा घर चण्डी पाती सारा। जा घर मण्डिया तुरी तपारा। जै चण्डी की सुमिरन करे। बाला जोगी नागा भूखा कदेन रहे। चण्डी है तू चरपट नारी। ताते लोह घड़े लुहारी। मैं जानं देवी मर्म तुम्हारा। उत्तर खण्डे से चण्डी आई। हाथा कंगन पगाँ नैवर। हाथ त्रिशूल है, है करनी। जैहः जरनी मरे मुशाना रक्षा करनी घाटे वाटे रक्षा करनी। बाल बच्चे प्रतिपाल करनी। घो बाटे अविचल जागे। नगर कोट—माहामाई। गोरक्षवटी गोरक्ष जागै। टीले बालक नाई। ओरनी साधा के आई। मातलोक को सक्खो पर्वत माय छिपाई। हेरी शंकर ना द्वादश बाहर पाई। बनखण्ड को ज्योति में शून्य के तीर में। हिंगलाज से उतारे। तीस भाण तीस भाई। कहो सिद्धों हिंगलाज कहाँ रहती है? कहाँ हिंगलाज का वास है ? कैसे हिंगलाज का वरण है ? गगन मण्डल हिंगलाज रहती है शून्य मंडल में वास है। हिरया हिंगलाज का वरण है। अनभया सिर बाजे वीणा। जौ परमाण देवरा। तिल परमान किवाड़। हृदय में जाप जपो।

इनविधि जप सम्पर्ण भया। अनन्त करोड़ सिद्धों में गादी बैठ गुरु गोरक्षनाथ जी ने कहाया। श्री नाथ जी गुरुजी का आदेश। आदेश।। आदेश।।।

योगी श्री विलासनाथ ने अपनी पुस्तक 'श्रीनाथ सिद्धों की शंखढाल' में नाथ और हिंगलाज के बारे में विस्तार से प्रकाश डालते हुए ज्योत मंत्र का उल्लेख इस प्रकार किया हैं— सत नमो आदेश। गुरुज को आदेश। ॐ गुरुजी। ॐ पश्चिम दिशा से जोगण आयी दो कर जोड़ आगे ब्रह्मा विष्णु महेश पीछे देवी—देवता तैतीस करोड़, करे सेवा पूजा आरती धूप ध्यान जपोत पो श्री हिंगलाज माया, ओं जुगजुग मध्ये काहे का तेरा दीवड़ा, काहे की तेरी बात, काहे के सिंहासन बैठे गुरु गोरक्षनाथ। ॐ गुरुजी जुग जुग मध्ये सत्त का दीवड़, सत की तेरी बात सत्त के सिंहान बैठे गुरु गोरक्षनाथ। पैल ओंकार जोग ओंकार मोक्ष मुक्ता का तृपत हो जोगन महामाया। श्री नाथजी गुरुजी को आदेश। आदेश।। आदेश।।

हिंगलाज ज्योत पगले लगाने का मंत्र— सत नमो आदेश। गुरुजी को आदेश। ॐगुरुजी। ज्योत ज्योत महाज्योत, अखण्ड जोत हिंगलाज जोत जो ध्यावे सो पावे मोक्ष मुक्ति फल देबल दे बाला सुन्दरी शिव पूजूं शक्ति पूजूं—पूजूं गुरु के पांव पांच महेश्वर आज्ञा करे तो लागू हिंगलाज ज्योत के पांव। श्री नाथजी गुरुजी को आदेश। आदेश। आदेश।

## आरती माता हिंगलाज की

(नाथ सिद्धों द्वारा शंखढाल कर्म में बड़ी ही भक्ति से गायी जाती हैं)

*हिंगलाज भवानी तेरी आरती। अच्छी निर्मल ज्योति जगे दिन राती ।।टेक।।*
*सतयुग मध्ये काहे का तेरा दीवाड़ा काहे की तेरी बात,*
*काहे के सिंहासन बैठे प्रहलाद राज।*
*सतयुग मध्ये सोने का तेरा दीवड़ा सोने की तेरी बात,*
*सोने के सिंहासन बैठे प्रहलाद राज।।1।।*
*त्रेतायुग मध्ये काहे का तेरा दीवाड़ा, काहे की तेरी बात।*
*काहे का सिंहासन बैठे हरिशचन्द्र राज।*
*त्रेतायुग मध्ये चांदी का तेरा दीवड़ा, चांदी की तेरी बात,*
*चांदी के सिंहासन बैठे हरिश्चन्द्र राज।।2।।*
*द्वापर युग मध्ये काहे का तेरा दीवड़ा, काहे की तेरी बात,*
*काहे का सिंहासन बैठे पांचों पाण्डव राज।*

*द्वापर युग मध्ये ताम्बा का तेरा दीवड़ा, ताम्बा की तेरी बात,*
*ताम्बा के सिंहासन बैठे पांचों पाण्डव राज।।3।।*
*कलियुग मध्ये काहे का तेरा दीवड़ा, काहे की तेरी बात,*
*काहे का सिंहासन बैठे बलिचन्द राज।*
*कलियुग मध्ये मिट्टी का तेरा दीवड़ा, मिट्टी की तेरी बात,*
*मिट्टी के सिंहासन बैठे बलिचंद राज।।4।।*
*युगा युगा मध्ये काहे का तेरा दीवड़ा, काहे की तेरी बात,*
*काहे के सिंहासन बैठे गुरु गोरक्षनाथ।*
*युगा युगा मध्ये सत का तेरा दीवड़ा, सत की तेरी बात,*
*सत के सिंहासन बैठे गुरु गोरक्षनाथ।।5।।*
*हिंगलाज भवानी तेरी आरती।*
*अच्छी निर्मल ज्योति जगे दिन राती।। भवानी तेरी आरती।*

चक्र घट मंत्र पाठ— ॐ गुरुजी। ॐ आदि घट बोलिये अनादि घट बोलिये। अथ कलियुग की। ॐ चार लाख बत्तीस हजार का कलयुग का प्रमाण बोलियेष साड़े तीन हाथ का नर बोलिये, सवा हाथ का खड़ग बोलिये, कौन—कौन अवतार बोलिये। नि कलंक कल्कि बोलिये, पश्चिम दिसा भया हुंकारा हिंगलाज देवी का ॐकारा, काला घोड़ा काला पलाण, तिस पर चढ़े अलख पुरुष निर्वाण, आओ आओ भाई करो कमाई, ध्यान देश में मुक्ति पाई, माटी का पात्र, माटी का चक्र, माटी का छत्र, माटी का आसन, माटी का सिंहासन, माटी की नादि, माटी की सहेली सिंगी, गंगाजल का जलपूरीजे, सकल स्वामी बरसों ओंकार चेते गम गंगा स्वामीजी पूजे सकल संसार।

शक्ति (हवन) मंत्र— ह्निं ह्निं ह्निं ह्निं हिंगूला नमः स्वाहा।

चतुर्दिश योगमाया पूजन विधि— पश्चिम दिशा— माता हिंगलाज क्षेत्र में योगमाया पूजन विधि में सुहागन (नारी) पूजन करते थे।

(सौजन्य— हिंगलाज शक्ति पीठ—ओंकारसिंह लखावत)

हिंगलाज माता के अनेक छोटे—बड़े मंदिर पूरे देश में विद्यमान हैं। सिंध (पाकिस्तान) में थट्टा की हिंगलाज माता को जालंधर नाथ योगी की सिद्ध पीठ माना जाता है। थट्टा नगर सिद्ध नाथों का प्रसिद्ध पीठ और केन्द्र रहा है। यहाँ का शक्तिपीठ हिंगलाम्बा कहलाता है।

लोक प्रसिद्ध है कि प्राचीनकाल में नाथ सिद्ध ऋषि की तपोभूमि रोहड़ी थी। थट्टा

गौरविया शाखा के चारण परिवार हरिदास के घर भगवती हिंगलाज का अवतार हुआ। स्वयं गुरु गोरखनाथ ने थट्टा जाकर माता के दर्शन किए थे। हिंगलाज की नाथों पर विशेष कृपा थी। माता अम्बा पार्वतीजी का अवतार होने के कारण आदिनाथ भगवान शिव के पौत्र शिष्य गोरख ने जिस पंथ की स्थापना की थी। वह हिंगलाज को प्रिय होना स्वाभाविक भी था।

गुरु गोरखनाथजी ने दर्शन के पश्चात् वचन दिया था कि मैं फिर एक बार आपके दर्शन करने अवश्य आऊँगा। गोरखनाथ की प्रतीक्षा में उनके स्वागतार्थ हिंगलाजाँ प्रतिदिन खिचड़ी पकाती थीं। गोरख के नहीं आने पर वे उस खिचड़ी को एक निर्दिष्ट स्थान पर डाल आती थी। यह परंपरा उन्होंने बारह वर्षों तक निभाई और गोरख के नहीं आने पर एक ही स्थान पर डालती रही। इस प्रकार 4380 दिनों तक खिचड़ी पकाती और एक ही स्थान पर डालती रही। वहाँ एक ऊँचा ढेर हो गया था। बारह वर्षों के पश्चात् जब गोरखनथ थट्टा आए तब हिंगलाज ने उनका स्वागत कर स्वाष्दिट खिचड़ी खिलाई। हिंगलाजाँ देवी ने कहा– गोरख आपने यहाँ पुनः आने में बारह वर्ष लगा दिए। मैंने नित्य प्रति आपकी प्रतीक्षा की और खिचड़ी का भोजन बनाया। आपके नहीं आने पर मैंने वह खिचड़ी एक स्थान पर डाली। वहाँ अब खिचड़ी का ऊँचा ढेर हो गया है। उस ढेर का अब क्या होगा?

गोरख नंगे पैर उस ढेर के निकट पहुँचे। वहाँ खिचड़ी का ढेर देखकर उनका मन हिंगलाजाँ देवी की श्रद्धा और प्रेम से भर उठा। उन्होंने अपने कमंडल से उस ढेर पर जल छिड़का। उस ढेर को दण्डवत प्रणाम किया। वह ढेर सुन्दर ठुमरों (एक प्रकार का मणका) में बदल गया। गोरख ने कहा– जो भी यहाँ का ठुमरा अपने गले में धारण करेगा। उस पर माता हिंगलाजाँ की कृपा बनी रहेगी। मैं उस पर सदा कृपावन्त रहूँगा। यह गोरख का वचन है। बच्चों के गले में ठुमरा मोती पहनाने पर उन पर नजर, जादू–टोने का प्रभाव नहीं होगा। मोती जैसे उन ठुमरों की माला नाथ योगी बड़ी श्रद्धा से पहनते हैं। उसे योगेश्वर माला कहा जाता है।

थट्टा की  हिंगलाज माता को हिंगलाज का प्रथम अवतार माना जाता है। इनका मंदिर मुख्य रूप से आवड़ की तनोटमाता बाड़मेर के चालकनूँ गाँव में है। यह माता संतान सुख देने वाली है। मान्यता है –

*महादेवी मामड़ घरे, आवड़ लिय औतार।*
*यही नानाणी माड़वे, दादा चालक नंन।।*

इन्हें उभट नाम से भी जाना जाता है। इनके हिंगलाज स्वरूपा अवतार का वर्णन अनेक दोहों में उपलब्ध है।

आवड़ माता को तनोट माता के रुप में भी पूजा जाता है। भारत–पाक युद्ध के समय पाकिस्तानी सेना के द्वारा तनोट माता क्षेत्र में गिराया गया एक भी बम नहीं फटा और भारतीय सेना की कोई क्षति नहीं हुई। सीमा सुरक्षा बल तनोटमाता मंदिर का संधारण करती है। देशभर के श्रद्धालु इस मंदिर में माता के दर्शन करने आते हैं। आवड़ माता ने बावन हूण दैत्यों को मारा और इसलिए आवडू माता को बावन नामों से जाना जाता है।

इनके बावन परचे परवाड़े भी मिलते हैं, और बावन मढ़–मंदिर एवं ओरण स्थापित हुए। आवड़ माता की छोटी बहिन खोड़ियार माता सहित सातों बहिनें लोक–पूज्य देवियाँ है। खोड़ियार माता के गुजरात सहित देश के अन्य राज्यों में लगभग 50 हजार से अधिक मंदिर हैं।

**माँ सैणी जी**– सौराष्ट्र के वेदोजी निपूता होने के कारण अत्यधिक दुखी रहते थे। उनकी पत्नी ने पुनः हिंगलाज माता से संतान हेतु प्रार्थना करने का निवेदन किया। इस संबंध में एक दोहा मिलता है–

*कहे हंसा कलपे क्यों, कंथ वेदा कवराय।*
*ध्यान तो हिंगळाज धर, जद आवे जगराय।।*

विक्रम संवत् 1346 के चैत्र शुक्ल अष्टमी के दिन सौराष्ट्र (गुजरात) गोरड़ियाळे गांव में वेदोजी की पत्नी हंसा के गर्भ से सैणी जी ने अवतार लिया।

सैणी जी ने अपने पिता वेदोजी से दो वचन लिये। एक तो मैं विवाह नहीं करुँगी और दूसरा चौदह वर्ष की आयु में हिमालय जाऊँगी। सैणीजी हिमालय की ओर प्रस्थान कर गई। कच्छे से कुँवर गाँव, मांगरोल, धूळिया, फलसूण्ड, जुड़िये पधारीं। जुड़िये में सैणीजी के चमत्कार से सूखे कुएँ में अथाह जल आ गया।

*जुड़िये जरुर थांन, थापना थही। वधंत नीर कूप बीच, नीठता नहीं।।*

सैणीजी ने हिमालय के कारगिल की द्रास नामक स्थान पर जाकर घोर तपस्या की और वहीं अपने देह को निरास दिया। वहाँ आज भी हिन्दू लामा की कुंवारी कन्या सैणमायी के नाम से माता की पूजा करती है। हर शुभ कार्य में श्रद्धालु सैणीजी को गणेशजी व हिंगलाज माता के साथ स्मरण करते हैं–

*हिरदे बसों हिंगळाज, साम्प्रत विराजो सैणला।*
*गणनायक गणराज, उच्छव पैला आवजो।।*

**करणी माता**— करनी माता के पिता मेहाजी किनिया हिंगलाज माता के दर्शन करने के लिए आदि शक्ति पीठ हिंगलाज गये थे। हिंगलाज माता के पिण्ड को स्पर्श किया और प्रार्थना की 'माई म्हारो नांवगो रह जय' माता मेरा नाम चल जाये। हिंगलाज माता की कृपा से मेहाजी के घर करनी माता ने जन्म लिया। करनी माता के पिता मेहाजी का नाम युगों तक अमर हो गया। श्री करनी जी का विवाह साठीका के देपाजी के साथ हुआ।

करणी माता को आवड़ माता का अवतार और हिंगलाज स्वरूपा कहा गया है। निम्नलिखित भक्ति रचनाओं के अंश प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत हैं—

*किनियां मेह रै ग्रह रूप कन्यां धरै सुण धणियाप,*
*देण सुत हिंगलाज देवी अवतरे जद आप।*
*तो सुइयाप जी सुइयाप साँसण प्रगटया सुइयाप।* (भैरूदान, आशिया)
*करनी उस उज्जवल करण, आपो शुभ अख्खर,*
*हिंगलाज जग अवतरे, आवड़ अपरंपार।*
*सेलायत्त संघारियो, दीनी मूसां धर,*
*हेक चळू भर हाकड़ो, सौखे सरावेर।।* (झूंझारसिंह राठौड़, मनासा)
*अम्बा साता दीप से मेहा गृह आया, चवदासै चम्माळ में अवतार लिराया।*
*अमर कोटि तेतेसी मिली सह हजार आया,*
*ब्रह्मा करि करि बीनती चहुँ वेद सुनाया।।* (गंगादान बारैठ, कल्याणपुरा)

इन माताओं को हिंगलाज माता का अवतार माना जाता है। इनके अतिरिक्त हिंगलाज माता के मंदिर पूरे देश में बने हैं, जो जन—जन की आस्था के केन्द्र हैं। नाथ पंथ के योगी हिंगलाज माता के समक्ष इनका ध्यान लगाते हैं और साधना करते हुए सिद्धियों को प्राप्त करते हैं। हिंगलाज लोक कल्याणी देवी मानी जाती हैं। इसकी साधना से समस्त रोग शोक दूर हो जाते हैं। संतान सुख के साथ समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं। भारत में हिंगलाज माता के तीर्थ—मंदिर अनेक हैं, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं— मेहरानगढ़ (जोधपुर), भक्तिधान अजमेर, गेहलपुर अजमेर, हरगांग बीजापुर, आमेर, गुड़लास, गढ़ीसर, जैसलमेर, सिवाना बाड़मेर, जसाई—बाड़मेर, वलदरा—जयपुर, पाली, ज्वालामुखी पीठ—हिमाचल, कांगड़ा, मढ़ कोलायता— बीकानेर, बुधगिरि मढ़ी—फतेहपुर शेखावटी, जारोड़ा—नागोर का मेढ़ता तहसील गांव जारोड़ा, गंगारड़ा मीणों की

हिंगलाज माता उमरमूथा–बूंदी, महाराणा प्रताप के शस्त्रागार मायरा की गुफा में स्थित हिंगलाज माता, मावली उदयपुर के गांव बड़ियार की हिंगलाजमाता, उड़ीसा के अनुगल जिले में गोपाल प्रसाद गढ़ा का हिंगलाज भव्य मंदिर,दिल्ली मधुविहार में हिंगलाज मंदिर, दिल्ली–नारायणा में, बड़ौदा–गुजरात के जाबुंड़ा (जामनगर), आशापुरा मढ़ (कच्छ) ब्रहमक्षत्रीय समाज द्वारा निर्मित अनेक मंदिर, कर्णाटक के गुलबर्गा के निकट हिंगलाज मंदिर, बाड़ी बरोली– रायसेन, हिंगलाजगढ़–भानपुरा तहसील मन्दसौर, नन्दलालापुरा– इन्दौर, सखीपुरा–उज्जैन, इन्दौरी गेट–उज्जैन, खण्डवा, निजामाबाद, भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित बुद्ध गुफाओं में, यवतमाल आदि नगरों में हिंगलाज माता के आस्था स्थल स्थित हैं।

हिंगलाज माता की पूजा के उपरान्त उनकी आरती एवं स्तुति गाई जाती है। स्तुतियाँ अनेक हैं। निम्न स्तुतियाँ मंगलनाथ जोगी द्वारा मुझे लिखवाई गई थी। यह सर्वज्ञात है–

**हिंगळा अघहारणी**

*प्रणमामि मातु प्रेम मूरति, पारवती परमेश्वरी,*
*शांति क्षमामय कृपासागरि, सुखप्रदा सुरेश्वरी*
*सेवक सिसु रा दुरति दारिद, विघ्न दोष बिदारणी,*
*आदि सगती नो अंबा, हिंगळा अघहारणी।।1।।*
*सब देवियां सिरछत्र, साता द्वीप री राजेश्वरी,*
*कोहला परबद कंदरा री, निवासी निखिलेश्वरी।*
*आनंद वदनी आसुतुष्टा, कृपा मंगल कारणी।*
*नकलंक रूपो नमो अंबा, हिंगळा अघहारणी।।2।।*
*देवां सिरोमणि महादेवी, सामरथ सरवोपरी,*
*स्तुति करत कवि सिद्ध सुरमुनि, शेष अंज शंकर हरी।*
*परिताप हरणी प्रणत जन रा, सकळ कारज सारणी,*
*ओंकार रूपा नमो अंबा, हिंगळा अघहारणी।।3।।*
*जगधात्रि जागति ज्योति देवी, जोगमाया जोगणी,*
*असवार नाहर तणी अणहर, अहर खळ आरोगणी।*
*सोगणी समरथ सुरासुरथी, महिस मदमत मारणी,*
*नवलाख रूपा नमो अंबा, हिंगळा अघहारणी।।4।।*
*गिरिजा ब्रहमचारिणी गौरी, चंद्रघंटा स्कंदमाता*

*कात्यायनी पुनि काळरात्रि, कूसमांडा सिद्धिदा*
*सरणागति निज दास सुर री, दैत्य दुसमन दारणी,*
*नवरुप दुर्गा नमों अंबा, हिंगळा अघहारणी।।5।।*
*वृषभासणी बाघासणी, गरुड़ासणी गजाआसणी,*
*मयूरासणी महिषासणी, हंसासणी प्रेतासणी।*
*विध विध वपू आयुध वाहणी, धरम हेतूधारणी,*
*अदभूत रूपा नमो अंबा, हिंगळा अघहारणी।।6।।*
*ब्राहमी महेश्वरी वैष्णवी, कोंमारी दानव दपहा,*
*वाराहि अैंद्री, नारसिंघी चंडी चामुंडा महा।*
*सुर संता त्राता असुर हाता, अवनि भार उतारणी,*
*अकळोत रूपा नमो अंबा, हिंगळा अघहारणी।।7।।*
*निज दास शंकरनाथ रो, आरोग्य सुख आयुष प्रदा,*
*संपतिप्रदा सिद्धीप्रदा, सिव भक्ति दत सगते प्रदा।*
*सुमतिप्रदा शोभाप्रदा, कामना पूरण कारणी,*
*नारायणी मां नमो अंबा, हिंगळा अघहारणी।।8।।*

हे माता हिगलाज! हे पाप हारिणी माता! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे प्रेममयी परमेश्वरी माता पार्वती! तुझे बार–बार प्रणाम है। हे शांति! क्षमामयी कृपा की सागर! हे सुख देने वाली सर्वेश्वरी! आप इस अपने शिशु सेवक के दुःख दारिद्र दूर कर समस्त विघ्न दूर करो। हे आदिशक्ति अम्बा! हे पापभय हारिणी हिंगलाज माता! आपका वंदन है।

सभी देवियाँ आपके सिर पर छत्र धारण कराती हैं। हे सप्तदीपों की राजेश्वरी! हे कोहला पर्वत की गुफा में निवास करने वाली निखलेश्वरी माता! हे आनंद वदन वाली आशुतोषणी माता! हे मंगल कारिणी माता! हे समस्त देवों–देवियों में श्रेष्ठ! हे सर्व समर्थ महादेवी! आपकी स्तुति कवि, सुर मुनी, शंकर और ब्रह्मा तक करते हैं। तू समस्त कष्टों को दूर करने वाली तथा सबके काम संवारने वाली माता है। हे हिंगलाज! हे ओकाररूप! हे अम्बा! हे पाप ताप हारिणी हिंगलाज माता! तुझे प्रणाम।

हे जगतमाता! हे ज्योतिस्वरूपा! हे जोग माया जोगणी! हे नाहर पर सवार! हे दुष्टों का भक्षण करने वाली! हे शुभदायी! हे समर्थ! हे सुरों में श्रेष्ठ! हे महिषासुर की संहारक! हे नौ लाख रूपों वाली माता! तुझे प्रणाम। हे गिरिजा! हे ब्रह्माणी! हे गौरी! हे चन्द्रघंटा! हे स्कंदमा! हे कात्यायनी! हे कालरात्रि! हे कुष्मांडा! हे सिद्धा! इस दास

की सरणागति स्वीकार करो। हे देत्य शत्रुओं का संहार करने वाली! हे नवरुपा दुर्गा! अम्बा! हे पाप हारिणी हिंगलाज! तुझे प्रणाम।

हे वृषभ आरोहणी! हे बाघ आरोहणी! हे गरुण आरोहणी! हे गजारोहणी! हे मयूरोहाणी! हे महिषारोहिणी! हे हंसारोहणी! हे प्रेतारोहणी! हे विविध प्रकार के आयुद्ध धारिणी! हे धर्म रक्षिका! हे अद्भुत यपा माता! तुझे प्रणाम! हे ब्राह्मी! माहेश्वरी! वैष्णवी! कौमारी! हे दानवदुष्टा! हे वराही! हे आंद्री! हे नाहरबिराजणी! चण्डी! चामुंडा! सुर संतों के दुःख हरने वाली! तथा सुर संतों को त्राण देने वाले असुरों का हनन करने वाली तथा भय उद्धारणी माता! हे अकलोत रूपा! आपको प्रणाम।

इस दास शंकरनाथ को आरोग्य, सुख–सम्पदा और आयुष प्रदान करने वाली माता! हे सम्पतिप्रदा! हे सिद्धिप्रदा! हे शिव भक्ति प्रदान करने वाली माता! हे सुमतिप्रदा! शोभाप्रदा! हे कामना पूर्ण करने वाली माता! हे नारायणी! आपको प्रणाम।

**छप्पय**

*जय हिंगोळ जगमातु, महालक्षमी महाकाळी,*
*महा सरसति महादेवि, विकट सुंदर वपुवाळी।*
*अेका अेका अजब, अनंता अजा कहाणी,*
*पृथ्वी स्वर्ग पताळ, प्रगट त्रिभुवन पूजाणी।*
*कर जोरि दास शंकर कहत, प्रसन होहु परमेश्वरी।*
*सुरतरू स्वभाववाली सुखद, जय हिंगोळ जगदीश्वरी।।*
*चारण तन प्रतिजन्म अयाचक वृति विशुद्ध मन,*
*काव्य युकती वकतव्य कुशल श्रोता चितरंजन।*
*दान शक्ति सम्पति अखूट शिव भगती अविच्छन,*
*सुचि सुन्दरी सन्तति सुशील जस मय मम जीवन।*
*कर जोर दास शंकर कहत निरूग शरीर नित रिक्खयै।*
*यह सकल सुख जनमा जनम, देवि कृपा कर दीजियै।*

**दोहा**

*नाथ–चारण मातु हम, सब तेरी संतान।*
*दीज्यो सनमति पंप, सुख जिय अरू विद्यादान।।*

**मातृ गीत**

*मोती मात हिंगलाजा राजा महाराजा तीनों लोक रा ।।टेर।।*
*सात पहर साता दीप बिराजो एक पहर हिंगलाजा*
*तीनूं लोक भवन चवदा में आप की होत आवाजा।।1।।*
*स्वर यक राग उचारत चौसट बजै छतीसूं बाजा*
*सुर नर मुनिजन करत आरती इन्द्र करत है गाजा।।2।।*
*ब्रह्मा विसुन महेश मुनि सुर असुरां सूं डरिभाजा,*
*सुर तेतीस क्रोड़ व सरणैं आण खड़ा इंदराजा।।3।।*
*इतनूं कोप सुण्यो असुरन को बेग सुधारण काजा*
*चंड मुंड महिखासुर मारे खाय गई करि खाजा।।4।।*
*चरणदास रतनूं गंग गावै सुख संपति रख साजा*
*रोग दोख सब दूरि करो मां त्रपत रखो तन ताजा।।5।।*

हे हिंगलाज! हे हिंगलाज! हे महालक्ष्मी! महाकाली! महासरस्वती! महादेवी! हे विकट! हे सुन्दर स्वरूपा! हे अजब अनंता! तू अजा कहलाई।

पृथ्वी, पाताल, स्वर्ग प्रगट पूजिता त्रिभुवन में सर्व पूजिता शंकरदास हाथ जोड़कर निवेदन करता है आप मुझ पर प्रसन्न हों।

नाथ और चारण लोग प्रति जन्म अयाचक (याचकता से मुक्त) प्रमुदित मन होकर काव्य युक्ति एवं वक्तव्य कुशल होकर सबका चित्त प्रसन्न करते हैं। यह आपकी ही कृपा है। दान की शक्ति, अखूट सम्पति व शिव भक्ति में सदा लीन होकर आपका वंदन करते हैं। हे शुद्ध! सुन्दर और सुशील संतति की प्रदात्री! मेरे जीवन में आनंद देने वाली माता आपसे कर जोड़कर प्रार्थना है कि आप मेरा शरीर सदा निरोग रखें। हे देवी! जन्मजन्मांतर तक यह सुख मुझे प्रदान करें।

हे महेश्वर! हम सब आपकी संतान हैं। आप हमें सद्मति, सम्पति–सुख और विद्या का दान दीजिये।

हे हिंगलाज माता! आपकी वंदना तीनों लोकों के राजा–महाराजा करते हैं। आप सातों द्वीपों में सात प्रहर बिराजती हैं। एक प्रहर हिंगलाज स्थल पर बिराजती हैं। सुर–नर और मुनिजन तुम्हारी आरती करते हैं। एक स्वर, एक राग से एक साथ चौसठ राग–रागनियाँ और छत्तीस राग बजते हैं। ब्रह्म, विष्णु, महेश, सब मुनि, सुर–असुर से भयमुक्त करती हैं। तैंतीस करोड़ देवता आपकी शरण आकर आपके द्वार पर वंदन करते हैं। असुरों का कोप सुनकर आपसे सहायतार्थ याचना करते हैं। आपने चण्ड–मुण्ड,

महिषासुर असुरों को मार डाला, उन्हें भोजन बना लिया। यह दास रतनू आपका यश गायक है। सुख–सम्पति की आशा रखता है। रोब–दोख सब दूर करो और तन को तृप्त और स्वस्थ रखो।

## हिंगलाज माता एवं समस्त लोक माताओं की विरदावली

*पेलाँ सुमरु आद गोरजाँ, फेर समरूँ आद गनेश,*
*हींगल गढ़ की हिंगलाजाँ समरूँ सदाँ महेस।।1।।*
*गागरोन की चावंडा समरुँ हींगल की समरुँ ताखी।*
*गढ़पति समरूँ कटार्‌या भीलाँ की गत राखी।।2।।*
*राज राख्यो मान राख्यो, वसायो हींगल गाम।*
*हींगली टेकरी नाम राख्यों चित्तौड़ाँ कर्‌यो नाम।।3।।*
*माहरावल बप्पा ती जूझयो, ले भीलाँ की फोज।*
*अटाटू भीलों का हल्लो, बप्पा ने लग्यो होज।।4।।*
*बारा पेहर लड़ाई चाली, लाशाँ को होयो ढेर।*
*भायप मान हमजोतो जोड़यो, जद होई बप्पा की खेर।।5।।*
*गरु समरुण गोरख धणीने, जिण दियो अलख को भेस।*
*सत मत समरुँ सरदा, जो मेटे सकल कलेस।।6।।*
*हिंगलाजा हे इष्ट म्हारा, वणाँ ने माथ नवाऊँ।*
*कामठावारी बुधली समरुँ, समरुँ घाटा वारी।।7।।*
*सागा की सगराणी समरुँ, समरुँ साडा वारी।*
*माला वारी माया समरुँ, सिंध की अटल सवारी।।8।।*
*ब्रह्मा विसन सिवजी समरु, समरुँ पारवताँ माई।*
*आद भवानी सति ने समरुँ, समरुँ अस्ट भुजाँ माई।।9।।*
*भेंसासरी कुल राखण समरुँ, जोगणियाँ ने ध्याऊँ।*
*जूण दे गोराँ ने समरुँ, कारा ने माथ नवाऊँ।।10।।*
*बुज को बुजर बुजारो समरुँ, म्हारा कुल को देवत।*
*बुज माता भेंसासर समरुँ, समरुँ भेंसला की रेवत।।11।।*
*संकोदारो केदारो सुखानंद, फेर नील कंठ सुखधाम।*
*गोतमेसर बणेसर समरुँ, तलसमो समरुँ ताम।।12।।*
*अंतारी की अंबली समरुँ, सागाँ की बगला माती।*
*अन्नपूर्णा ने माथ जवाऊँ, खेतर समरुँ दाती ।।13।।*
*भूखी समरुँ डिकेन की, सालर वारी अंबा।*

साकरया की अंबा समरुँ, करँण परा की जगदंबा।।14।।
वीशंती ने ध्याऊँ, करण परे जा माथ नवाऊँ।
करुँ आरती भेंसासरी की मन धार्‌यो वर पाऊँ।।15।।
रांपर की भेंसासरी समरुँ, रामा की कुल दाती।
रांपर की मात लच्छमी समरुँ, धाती माता हे हाती।।16।।
रांपर में वराजे चोक चोकड़े, हिंगलाजाँ मातेसरी।
वार तेवाराँ धार लगावे, खुद रो राव जगेसरी।।17।।
हिगलाजाँ समरुँ दुदलाई की, भानपुरा की परमेसरी।
न्हार हुँकारे भेंसासरि की, भाना की बाणेसरी।।18।।
बीजासण समरुँ खेड़े–खेड़े, साकर की समरुँ माहमाई।
गुफा वराजे ठंडे झरणे, खो माती नाम धराई।।19।।
रगत्या हगत्या जगत्या समरुँ, हॉकर्‌या ने ध्याऊँ।
भैरव समरुँ खेड़े–खेड़े, जद जाऊँ धार चढ़ाउँ।।20।।
भम्मराणी सादड़ी वारी, अंबा पर की वीसंती।
लच्छमी समरुँ सरसत समरुँ, समरुँ लालाँ–फूलाँ।।21।।
कंवराणी जगराणी समरुँ, नाथाँ की महाराणी।
सागा साडा वारी समरुँ, ठीकाणा की ठकराणी।।22।।
अच्छरा समरुँ खेड़े–खेड़े, जूण देव कँवराणी।
शामपर की चावंड़ा समरुँ, मारा की मकराणी।।23।।
कारमेटणी भय हारणी, कार टारणी गौराँ।
मालवा माइयाँ समरुँ, ध्याऊँ समरुँ कामत कोराँ।।24।।
रुपण समरुँ झरण वराजी, नाहर–धेनुवारी।
टूटमान व्हे दोरम काटे, दूद पूत की समरुँ रखवारी।।25।।
पेलाँ वाजी अमखो वारी, फेर झारण में आई।
सूत्याँ ने खुद परचो देवे, धन–धन रुपण माई।।26।।
दुधलाई की हींगल समरूँ, खुद हंगलगढ़ में आई।
जालकी समरुण रांपर वारी, रामा भील की जायी।।27।।
खड़ी मुँडेरा बाण चलावे, दुसमण ने ललकारे।
बाण खूट ग्या गोफण ती दुसमण पे भाटा मारे।।28।।
घायल वई गी कूद पड़ी, ले दोनाई हाथ तरवाराँ।
झरना फूट पड़्या रगत का, छत्री पे चाले धाराँ।।29।।
लड़ताँ–लड़ताँ शीश कट्‌यो, लोथ लड़ी जूझारी।

*सीस कट्यो मज घाटी ऊपर, लोथ पड़ी सत बारी।।30।।*
*सीस कट्यो चटवार चोहटी, वटे बणायो धाम।*
*लोथ पोचाई संकूदरो, चंबल कर्‌यो मुकाम।।31।।*
*रामा भील को कँवरो समरुँ, जंगी जालकों नाम।*
*लड़ताँ–लड़ताँ वरगत पाई, संकोदर बण्यो धाम।।32।।*
*दोरम काटे जगत का, अवगत्या ने देवे मोख।*
*कार भैरव कार मिटावे, मेटे रोग अने सोख।।33।।*
*जालेर्‌यो भेरु वाज्यो, चांबल बिच कियो मुकाम।*
*संकोद्धार में संकट काटे, सरनागत सुख धाम।।34।।*
*भूलाँ पडूँ गोरख गुरु समरुँ, जण उपजायो सगति को सार।*
*वरद वखाणी सुणी–गुणी, सरसत ने कर्‌यो उपकार।।35।।*
*सेस देवता रगसा राखे, माता कारकी गी पातार।*
*समरुँ मात कारका जत का, तूँ सदा राखजे ढार।।36।।*
*मसरोली परासली कंकाली, दूधाखेड़ी मोडी मूल मुकाम।*
*भादवा की माई समरुँ, दुख काटण सुख को धाम।।37।।*
*धन डोकरी मोड़ी वारी, जावद की महमाती।*
*खोर धाम की मात गोराजाँ, भीलाँ की कुल दाती।।38।।*
*सरवण की दुख मेटण सगति, घाटा लाँटा वारी।*
*खो वराजे गुफाँ वराजे, तोरण बड़ला वारी।।39।।*
*मेसपर की भेंसासरणी, रुणीजाकी भय टारी।*
*अन्नपूरणा ओलाद दाती, तीर कमंठा धारी।।40।।*
*चंड मंड भेंसासर संधाणी, कोप जणायो भारी।*
*मुँड काट ने दड़ी बणा दी, अंबली मात अंतारी।।41।।*
*सतियाँ जतियाँ पितराणियाँ, विरद वखाणू थारी।*
*दूध पूत की देवणवारी, सत मत की रखवारी।।42।।*
*रगसा करजे हे जगराणी, आरत करे यो ढारी।*
*बूज वंस बजूरिया देवत, भेंसारि गोरजा दरारी।।43।।*
*भेरु गोरो आमद वारो, सती बेसला वारी।*
*हिंगलाज भीलाँ की कुलदाती, ताखी हे रखवारी।।44।।*
*गरु के मुकाम या विरद वखाणू, सादल साद के सरणे।*
*भेस दियो आदेस दियो, हुकुम वजायो बूजल करणे।।45।।*
*कई–कई रूप बखाणू माई, थारी मइमा न्यारी।*

खेड़े–खेड़े धजा फेहरावे, मइमा गावे थारी।।46।।
थारा रूप अनंत गोरजाँ, थारी मइमा भारी।
रागस संधार्‌या अणगण्या, तू खडग कामठा धारी।।47।।
जुवाला पर की मात जवालाँ, कागड़ा की माता भारी।
गुफा विराजी वेस्नू माता, पावागढ़ की माता कारी।।48।।
तू देवल तू इंद्राणी, तू कारका तू बरमाणी।
तू महेसरी तू परमेसरी, तू रमा बिस्नु संग रमाणी।।49।।
अछरा रूप हातन धर्‌यो, नो को हे औतार।
कच्छ अच्छ बच्छ बराजे, थारा रूप अपार।।50।।
बीज गाज तीज चौथ तू, पंचम छठी पुजाणी दाती।
सातम सीतला अष्टा अहोई, नव दुर्गा रूप गियाती।।51।।
दशामाता पीपरी पुजाणी, अन्नपूर्णा ग्यारवें पुजारी रूपा।
भय हारणी बारवों रूप धर्‌यो, भेंसासरि रूप अलूपा।।52।।
तेहरवें रूप तिर्‌या केवाणी, चवदे चरकली जाणी।
पंदरहवें रूप बंगाल सुंदरी कवाणी, अमरा पर जाइ रेवाणी।।53।।
सोलवों रूप धर्‌यो सीताँ को, वन में जाय वसाणी।
रागस रावण वंस नास्यो, असोक रेट रेवाणी।।54।।
सतरहवें रूप हींगला होई, हगराँ की अगवाणी।
हींगलगढ़ मुकाम लगायो, ठेठ अफघान देश ती पधराणी।।55।।
अठाहरवें रूप अठाई माता होई ब्रह्मा की बरह्याणी।
गुनीसवों रूप धर्‌यो बीजसान को, मंगलगीत गवाणी।।56।।
बीसवें रूप वीशंती होई, हावण गाम वसाणी।
करणपरा में धाम थेपाणो, सागाखेड़ा में अन्नपूर्णा केवाणी।।57।।
तू अन्नपूरणा तू बगला माता, शंकोतर माराज थेपाणी।
जो जसो पूजे सो वैसो फल पावे, चारी खूट पुजाणी।।58।।
तू वाराजी में बुधली बण बेठी, सागा में सागा वारी।
तू दुधलाई में आण वराजी, पूरणनाथ ती पुजवाणी।।59।।
तू काली तू मंगला तू मंगलकारणी, तू करणी तू भरणी दाती।
देसनोक ती जोताँ आई, खेड़े–खेड़े थारी जाणू हाती।।60।।
तू भद्रकाली कपालनी दुरगा, तू छिन्नमस्ता मदमाती।
कृपा राखजे हे कुलमाता, ताखी हती सत दाती।।61।।
तू गजरुढ़ी मात इंद्राणी, गरड़ वारजे बिस्नु राणी।

*गरड़ वराजे वेस्णवी माता, जग में नाम धराणी।।62।।*
*नंदी वराजे महेसरी परमेसरी, मोर वराज सरसत केवाणी।*
*ठेठ समंदर बीच तपस्या तापी, कोमारी नाम रखाणी ।।63।।*
*तूँ वराजी में बुधली बण बेठी, बिन्सु के अंग वरखाणी।*
*हंस वराजी बह्मणी वाजी, काली महाकाली जगत के वाणी।।64।।*
*थारी पूजा घाटे–मगरे, खेड़े–खेड़े थारी धजा फेहराणी।*
*आड़ा औला भील चौखरा, गामो गाम थारी जोत जुताणी।।65।।*
*तू पीपरी तुलसाँ खेजड़ी, तू आँवरी अंबली तू इ गोरजाँ माती।*
*तू रोड़ी, तू घाटे–घाटे, तू औतारां की औतार, तू आद भवानी दाती।।66।।*
*तू लाजाँ तू गाजाँ तू मांतगी सतरंगी, तू भौमा रेणका तुलजा जमजंगी।*
*तू धाती सदा विधाती रंग राती, तू जननी पुत्री अरधंगी।।67।।*
*थारा इ गुण गाऊँ दाती, थारीऽज करुँ हजूरी।*
*करणा का सब दोरम मेटो, करुँ नहीं मगरुरी।।68।।*
*बावन भेरू उनचास पवन, नो दुरगाँ को तू एकज रूप।*
*तीन देव बारह नखतर नो ग्रह, सातशशि नो सतियाँ थारोइ रूप।।69।।*
*चाँद–सूरज सब थारे दुआरे, करे आत्री हे माहराणी अंबे।*
*तूठ–तूठ हे जगत पारणी, आद भुवानी अन्नपूरणे जगदंबे।।70।।*
*गणपत हणमत सेस सारदा, राखे थारोइ आसो।*
*नारद सारद नाद वजावे, यो करणो थारो दासो।।71।।*
*पा आसीस कथी या थारी, तूठ हे आद भुवानी।*
*थारी किरपा होइ गोरजाँ, जद या विरद वखाणी।।72।।*
*भोपा भाट गंधर्व दमामी, नाथसिद्ध थारे दुआरे आवे।*
*झाँझ घूघरा कासो मादल, ढम–ढम ढोल वजाते।।73।।*
*करणा ने या कथी विरद, जा खेड़े–खेड़े गावे।*
*थारा जस ए खड़ग धारणी, धामो धाम सुणावे।।74।।*
*जे देखूँ वे आद भवानी, थारी धजा फेहरावे।*
*करणनाथ विरदा रच दाती, थारी गाथा गावे।।75।।*
*तूँ इ केदे माता गोरजाँ, करणो अरज लगावे।*
*धाम छोड़ थारो भुवानी, कण के दुआरे जावे।।76।।*
*गोरजाँ माता की जै। भेंसासरी की जे।*
*ताखी सती कामठावारी की जे। बजूरिया दे की जे।*
*सतगुरु गोरखनाथ की जै। खेड़े–खेड़े वाराजी आद भुवानी की जे।*

*खेड़े–खेड़े थेपाया हगरा खेड़ा देवताँ की जै।*
*करणे रच दी विरद भुवानी मूँया विरदा गाऊँ।*
*हात पीढ़ियाँ वीती गोरजाँ, नत गा थने सुणाऊँ।।77।।*
*तूँ परमेश्वरी तूँ वैस्नवी, तूँ मात सीतला राणी।*
*गाम फुवारी धाम आपरो, तूँ हतियाँ री ठकराणी।।78।।*
*तूँ भेंसासरी तूँ महेसरी, तूँ सारदा सतवंती।*
*दूत–पूत री देवणहारी, तू हुआग री राखण दाती।।79।।*
*तूँ हतियाँ रो हत राखण वारी, तू हे आद भुवानी।*
*तूँ निरबंसाँ रो वंस चलाणी, घर–घर पालणा बंधानी।।80।।*
*मात फुवारी रगसा करजो, दास आप रो ठेठ।*
*पूरजाँ ती सुणी या विरद वारता, थारे चरणा बेठ।।81।।*
*रंगनाथ हे नाम दास मात, खेड़े–खेड़े गाऊँ।*
*करणे कथी या विरदा थारी, मूँ गा थने सुणाऊँ।।82।।*
*आदभुवानी री जे। मात दुर्गा री जे। फुवारी माता री जे।*
*डोकरी माता री जे। खड़धारणी री जे। सोमलीमात री जे।*
*हीतरमातरी जे। हंजीतमाता री जे। लालाँ–फूलाँ री जे।*
*खास खोर मातरी जे। मामा देव री जे। चीरा देव री जे।*
*जल भगवान री जे। हुणे गुणे हमजे जणा री जे।*
*हीतर मात री जे। हतियाँ सादाँ री जे। आद गोराजाँ री जे।*
*नाथ बारेठ गावे हुणावे। नगर रो लाभ सुभ हावे। अन्न धन वदे।*
*मंगलाचार वेवे। फुवारी माता हंगरा पे मेहर राखे।*

संकलन आधार– सिद्धानाथ श्री रंगनाथजी, संजीत, तह.– मल्हारगढ़, जिला– मन्दसौर। कहीं–कहीं यह गाथा विरद करणदान के नाम से भी जाने जाती है।

**शब्दार्थ (टिप्पणियाँ)**

**आद** = आदि, **अटाटू** = भरपूर, **होज** = चिंता, **मालावरी** = मालामाता, **गोरा–कारा** = भैरव के दो रूप (काला–गोरा), **धरी माता** = धुरीमाता (देवा सुर संग्राम में रथ की जिस धुरी में कैकेई ने अपनी उंगली लगाकर दशरथजी की सहायता की थी। उसी धुरी की यहाँ पूजा होती है। मंदिर में पत्थर की धुरी और कैकेई की मूर्ति है। इस मंदिर के निकट राम मंदिर भी है)। **साकरा** = कुकड़ेश्वर के पास साकर्याखेड़ी गाँव। यहाँ भील आस्था की देवी भेंसासरि का देवरा है। एक छोटी सी सराय तथा चबूतरा है। पानी का कुंड भी है। निकट ही झरना है। आजकल वहाँ पूर्व

मूर्ति हटाकर दुर्गा की मूर्ति स्थापित कर दी गई है। **सूत्याँ** = सोते हुए, **परचो** = प्रकट होकर निर्देश देना, **गोफण** = भीलों एवं अन्य वन्य जातियों का पत्थर फेंकने का एक अस्त्र। इसके द्वारा फेंके पत्थर की मार बहुत मारक होती है। भीलों का यह मुख्य अस्त्र है। तीर कमंठा और गोफण दोनों अस्त्र भीलों के विशेष अस्त्र हैं। गोफण फेंटे पर या कमर पर पटे की तरह बंधी रहती है। **रगत** = रक्त, **तरवाराँ** = तलवारें, चटवार, **चौहाटी** = चौरास्ते वाला स्थान, चौराहा या चटवारा इसका विशेषण हैं। **चाँबला** = चंबल, **बुज** = भीलों का एक गेत्र, **बूजल करणो** = बुज गोत्र का करवा, **दोरम** = दुख, **सरसत** = सरस्वती, **जोत जुताणी** = ज्योति प्रज्ज्वलित हुई, **तूठ** = प्रसन्न हो, **लाँजा** = लज्जा गौरी / लंजिका / लाजाँ, **गाँजा** = गाज / बादलों की गर्जना / गाज बीजमाता, **मातंगी** = मातापुर–महाराष्ट्र में मातंगी का मूल मंदिर है। इसे भूमिदेवी भी माना जाता है। **रेणुका** = परशुराम की माता / जमदग्नि की पत्नी / दक्षिण में यही एलम्बा तथा भूदेवी भी कहलाती है। इसका स्वरूप महिषासुर मर्दिनी का है। इसे तुलजा पुष्कर गोत्र के महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण पूजते हैं, **हतियाँ** = सतियाँ, **हत** = सत, **हदाई** = सदा ही, **गोतमेसर** = गोतमेश्वर, **जंगेसरी** = युद्धवीर, मार की, **मलकारी** = मालामाता (सिंगोली के निकट), **मरकाणी** = मलकाणी, / मालकिन (स्वामिन), **बाणेसर** = बेणेसर–सकल, आदिवासी समाज का आस्था तीर्थ। यह तीर्थ डूंगरपुर राजस्थान में माही, जाखम व सोम नदियों के संगम पर साबला कस्बे से 5 कि.मी. टापू पर स्थित है। यहाँ माघ पूर्णिमा पर पाँच दिन का मेला भरता है। उत्तरी भारत का अखिल आदिवासी समुदाय त्रिवेणी संगम की तरह पवित्र मानकर यहाँ स्नान करके स्वयं को पाप मुक्त मानता है। यहाँ अस्थि विसर्जन भी किया जाता है। इसका महत्त्व संत भावजी के कारण भी आदिवासी समाज में बहुत हैं। **मेसपर** = महेशपुर–ढाबला महेश (सुवासरा), **ओलाद दाती** = लोद माता (सीतामऊ), **अंतारी** = आंतरी, शंकोतर मराज = शंकोतरी महाराज (गोस्वामी) ये बाल ब्रह्मचारी थे। पड़दाँ गोस्वामियों के मठ में इन्होंने जीवित समाधि ली थी। समाधि अभी है। इन्हें बगलामुखी सिद्ध थी। बाद में सांगाखेड़ा (चचोर–मनासा) में अन्नपूर्णा की साधना की मूर्ति स्थापित की । इनका समय 15 वीं शताब्दी विक्रमी के लगभग माना जाता है। जोगणिया माता की पारंपरिक पूजा के पश्चात् उनकी स्तुति की जाती है। नाथ पंथ में जोगणियां एवं हिंगलाज के प्रति अनन्य आस्था है। दोनों माताओं की पूजा पद्धति एक समान होकर भी प्रसाद में कई बार अन्तर होता है। हिंगलाज के समक्ष बलि नहीं लगाई जाती, जबकि जोगणियाँ के सामने बलि लगाई जाती है। मनासा नगर में तथा अन्यत्र मैंने दोनों परम्पराओं का निर्वाह नाथों द्वारा होता देखा है। पूजा के पश्चात जोगणियों की स्तुतियाँ बखानी जाती है। वस्तुतः हिंगलाज को ही जोगणियाँ माना जाता है। जबकि जोगणिया और हिंगलाज भिन्न शक्तियाँ है। जोगणियाँ हिंगलाज की अनुचरी मानी जाती है।

## भावार्थ

मैं सबसे पहले आदिभ वानी गौरजा (अम्बा) माता का एवं गणपति का स्मरण करता हूँ। फिर हिंगलाज गढ़ की हिंगलाज माता का स्मरण करता हूँ। गागरोन गढ़ की चामुंडा और ताखी जो हिंगलाज माता की अवतार हैं, उनका स्मरण करता हूँ। गढ़ हिंगलाज के अधिपति कटारया भैरव का मैं स्मरण करता हूँ। इन्होंने भील समुदाय की साख बचाई। इन्हीं कटारा ने हींगल टेकरी बसाई। राज किया, मान बढ़ाया। चित्तौड़गढ़ की परम्परा में यहाँ बस्ती बसाई और चित्तौड़गढ़ तक ख्याति अर्जित की। यह महारावल बप्पा से भीलों की फौज लेकर भिड़ गया था। बारह प्रहर तक युद्ध किया और लाशों का ढेर लग गया। भाई–वंश और गोत्र का हवाला देकर बप्पा ने संधि कर ली।

मैं अपने सद्‌गुरु गोरख स्वामी (नाथ) का स्मरण करता हूँ। मैं माता शारदा का स्मरण करता हूँ। वे मेरी बुद्धि में सत्य का वास करें। सारे क्लेश बाधाएँ मिटा दें। मैं लोकदेवी तीर–कमान धारिणी बधुली का स्मरण करता हूँ। मैं अरावली पठार घाटे (चढ़ाव) स्थित सागामाता और साडामाता का स्मरण करता हूँ। हिंगलाज मेरी इष्टदेवी हैं, मैं उनका स्मरण करता हूँ। माला माता का स्मरण करता हूँ। ये सिंह की अटल सवार माता हैं। मैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश और पार्वती माता का स्मरण करता हूँ। मैं आदि भवानी सती माता का स्मरण करता हूँ। अष्टभुजा माता दुर्गा का स्मरण करता हूँ। मैं कुलरक्षक भैंसासुरी और जोगणियाँ माता का स्मरण करता हूँ। जोगणियाँ सदा सहाय रहें। जल एवं गौ रक्षक जूणदेव और काला–गोरा भैरव का स्मरण करता हूँ। बुज गाँव का बुजारिया भैरव का स्मरण करूँ, वह मेरे पूर्वजों का कुल भैरव है। भील भी इन्हें अपना कुल भैरव मानते हैं। रामपुरा के नाथों का यह कुल भैरव है।

शंखोद्धार, केदारेश्वर, सुखानंद, तिलस्मा महादेवों का मैं स्मरण करता हूँ। आँतरी की अंबली माता और सांगाखेड़ा (चचोर क्षेत्र) की बगुलामाता का मैं स्मरण करता हूँ। यह समग्र अंचल नाथों का प्रभावी क्षेत्र रहा है। आंतरी, शंखोद्धार और रामपुरा में नाथपंथ के प्रभावी मठ थे। देवरान की अन्नपूर्णा माता( यहाँ पहले नाथों का प्रभाव था, फिर गोस्वामियों का वर्चस्व बढ़ा) अन्नपूर्णा मठ की पूजा भी पश्चातकाल में गोस्वामियों के पास आई जो पूर्व में नाथों के पास रही। अहिल्याबाई ने जागीर निकाली। इसी से वर्चस्व की लड़ाई चली। शंखोद्धार में खेतर माता (कृषि माता) का स्मरण करता हूँ। खेतर माता की स्थापना नाथों ने की थी। बाद में नाथों के साथ भीलों ने उसे अपनी हावड़ (सावल–हरियाली माता) मानकर पूजना प्रारम्भ किया तथा फिर वहीं अपनी 'होकड़ी' (सौत) माता की भी स्थापना कर दी। भीलों की यह कुलवंश रक्षक लोकमाता

है। यह माता स्थल अब गाँधी सागर जल विस्तार में डूब गया है। मैंने इस माता के दर्शन दो बार शंखोद्धार मेले में किए थे। यहाँ एक महीने का विशाल मेला भरता था।

मैं डीकेन की भूखी माता का स्मरण करता हूँ। यह स्थान नाथों का प्रभावी क्षेत्र रहा है। नदी भीतर कालिका, सरस्वती, हिंगलाज, जोगणियाँ, वराही, पार्वती, इन्द्राणी, गणपति एवं शिव के छोटे मंदिर बने हैं। ये सात देवियाँ या अछरा माताएँ कहलाती हैं। मंदिरों से मूर्तियाँ गायब हैं। कुछ हैं। कुछ नहीं हैं। यहाँ नाथ–सिद्ध चरपट ने कई वर्षों तक तपस्या की थी। डीकेन क्षेत्र अतिप्राचीन क्षेत्र है। यहाँ की शैल गुफाएँ प्रसिद्ध हैं। मैं सालरमाला की अम्बामाता का स्मरण करता हूँ। साकरयाखेड़ी की अम्बामाता और करणपुरा की जगदम्बा माता का स्मरण करता हूँ। करणपुरे की बीस भुजा माता का स्मरण करता हूँ। मैं भैंसासुरी माता (महिषासुर मर्दनी) का वंदन करता हूँ। वे मुझे मनोवांछित वरदान देंगी।

रामपुरा में रामा भील की कुलदेवी भैंसासुरी तथा चौक चौराहे में बिराजित इष्टदेवी हिंगलाज माता का मैं स्मरण करता हूँ। स्वयं रामा भील इन्हें वार–त्योहार पर धार (मदिरा) लगाता है। दुधलाई की हिंगलाज माता का मैं स्मरण करता हूँ। यह ठिकाना राज चारण परिवारों का था। यहाँ बिराजित हिंगलाज माता की पूजा चारण, भील और नाथ मिलकर करते थे। मैं भानपुरा की परमेश्वरी का स्मरण करता हूँ। यह भाना भील की बाणेश्वरी (हिंगलाज) माता है। मैं इनका भी वंदन करता हूँ। गाँव–गाँव में जहाँ–जहाँ भी बीजासन माता के देवस्थल हैं, मैं सबका वंदन करता हूँ। साकरयाखेड़ी की गुफामाता (हिंगलाज माता) का मैं स्मरण करता हूँ। रक्तया भैरव हगत्या (स्वयं स्थापित) भैरवों के साथ मैं साकल्या भैरव का भी स्मरण करता हूँ। सादड़ी की भंवरमाता, अम्बरपुर की बीसभुजा माता, लक्ष्मी, सरस्वती, लाला–फूंला माता का मैं वंदन करता हूँ।

मैं नाथों की कंवराणी माता, जगराणी माता, सांगा और साड़ा माता का वंदन करता हूँ। मैं अछरा माताओं जो खेड़े–खेड़े (गाँव–गाँव) बिराजित हैं। जूणदेव और कंवराणी, कँवर की भी वंदना करता हूँ।

**अछरा माई–**अछरा माई अर्थात् सप्तमातृकाएँ। सप्तमातृकाओं के अंकन एक ही शिलापट्ट पर उकेरने का चलन कब प्रारम्भ हुआ, यह कहना कठिन है। गुप्तोत्तर काल में सप्तमातृकाओं का उल्लेख इधर मिलता है। इन सप्तमातृकाओं में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वराही, इन्द्राणी एवं चामुण्डा हैं। दोनों ओर क्रमशः वीरभद्र तथा नृत्यरत गणेश प्रतिमा उकेरी जाती है।

लोकजीवन में उनकी पूजा का बहुत महत्त्व माना गया है। इन सप्तमातृकायुक्त शिलापट्ट को एक रूप मानकर इसे लोक माता 'अछरा माई' कहा जाता है। अछरा का अर्थ होता है, जिसका कभी क्षरण नहीं हो सकता, जो सदा जीवन्त एवं जाग्रत रहकर शक्तिमान रहती है, यह ठीक भी है। इस 'अछरा माई' के शिलापट्ट पर जो माताएँ उकेरी जाती हैं, वे सभी अखण्ड शक्तियाँ होकर 'अछरा' है। एक साथ नौ देवी–देवताओं की पूजा का योग है। सात माताएँ व वीरभद्र सहित श्री गणेश की पूजा करने से सारे संकट दूर हो जाते हैं एवं समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाता है। ये सब माताएँ अपराजिता मानी गयी हैं। ये अछरा माई के शिलापट इस जनपद में अनेक हैं। लगभग सभी खण्डित है व सब देवियाँ भिन्न–भिन्न स्वरूपों में पूजी जाती हैं। ये सप्तमातृकाएँ सात मनोभावों की प्रतीकात्मक शक्तियाँ मानी गयी हैं। इनका उल्लेख अनेक ग्रंथों में मिलता है। माहेश्वरी–काम भावना की। वैष्णवी लोभ भावना की। ब्राह्मणी–मद भावना की। कौमारी–मोह भावना की। इन्द्राणी–इन्द्रियों पर अंकुश की। चामुण्डा–यज्ञ शक्ति की तथा वराही–असूया या ईर्ष्या भाव की प्रतीकात्मक शक्ति माता मानी जाती हैं। इन माताओं के वाहन भी निर्धारित हैं।

*प्रेत संस्था तु चामुंडा, वराही महिषासना।*
*ऐन्द्रीगज समारुढ़ा, वैष्णवी गरुड़ासना।।*
*माहेश्वरी वृषारुढ़ा, कौमारी शिखिवाहना।*
*ब्राह्मी हंसामारूढ़ा, सर्वाभरण भूषिता।।*

सप्तमातृकाओं (अछरा माई) के शिलापट्ट पर इस जनपद में हिंगलाजगढ़, इन्द्रगढ़, अनसर क्षेत्र, मोड़ी, घसोई, भानपुरा, धर्मराजेश्वर, पिलोद, ढाबला–महेश, पंचदेवल, रामनाथ, उगराण, ग्वालदे व्यास पीठ, कोठड़ी, जीरन आदि स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। कहीं–कहीं माताओं के क्रम में परिवर्तन मिलता है तथा कहीं–कहीं संख्या में भी घट–बढ़ दिखलायी देती है। दोनों और शिव–शक्ति के वरदायी देवता वीरभद्र एवं पार्वती पुत्र गणपति जो रक्षा और रिद्धि–सिद्धि दाता हैं, उत्कीर्ण मिलते हैं। ढाबला महेश में वीरभद्र के स्थान पर वेणु गोपाल उत्कीर्ण हैं।

मैं शामगढ़ की चावंडा माता का स्मरण करता हूँ। माला की मकराणी का वंदन करता हूँ। अकाल समाप्त कर अन्न–धन तथा जल की दात्री मालव माताओं का मैं वंदन करता हूँ।

बाड़मेर जिले की धोरीमना तहसील के चालकनूँ ग्राम में मामड़ नाम का एक चारण रहता था। साहबा शाखा का यह चारण परिवार माई हिंगलाज का परमभक्त था।

मामड़ ने हिंगलाज माता के दर्शन के लिए सात बार हिंगुलालय की गुफा की यात्रा की। प्रत्येक बार एक ही प्रार्थना की– 'माँ मुझ निपूते को सपूता करो।' सातवीं बार माँ ने परचा दिया और वचन दिया कि 'म्हूँ खुद आइस'( मैं स्वयं आऊँगी) । मामड़ की पत्नी महाड़ शाखा की चारण मोहब्बती की कोख से स्वयं आई हिंगलाज ने विक्रम संवत् 808 की चैत्र शुक्ल नवमी के दिन जन्म लिया। वे इस अवतार रूप में 'आवड़' कहलायीं। इन्हें आवड़ा ममड़ाई के नाम से ख्याति मिली, आवड़ जी सात बहनें थीं–

*आवड़ गुल रूपाँ आछी, लाँगी छाछी होल।*
*गढ़वी मामड़िये धएँ, साताँ बैन सतोल।।*

आवड़, आछी, छेछी, गहली, हुली, रूपाँ और लाँगदे– ये सप्त बहनें 'सप्त मातृका' कहलायीं। ये सप्त मातृकाएँ पौराणिक सप्त मातृकाओं से भिन्न हैं। पौराणिक सप्त मातृका– 'वाराही चैव कौमारी चामुण्डी भैरवी तथा माहेन्द्री वैष्णवी चैव ब्राह्मणी सप्तमातृका' मानी जाती हैं। ये मातृकाएँ सात मनोभावों का स्वरूप हैं। इसका वर्णन इसी ग्रंथ में 'अछरा माई' के प्रसंग में विस्तार से किया गया है।

सातों चारण देवियाँ एवं पौराणिक देवियों को समान रूप से लोक में पूजा जाता है। दोनों सप्त मातृकाओं को 'अछरा' कहकर मान दिया जाता है। सातों चारण कन्याएँ ब्रह्मचारिणी हैं। इनमें सबसे छोटी 'लांगदे' जैसलमेर में 'खोड़यारजी' कहलायीं। इनकी विशेष मान्यता सौराष्ट्र और गुजरात में है। केवल अहमदाबाद में ही खोड़ियारजी के अट्ठाईस मंदिर हैं। ये सातों बहनें मायाँ (मावल्याँ) के रूप में भी पूज्य हैं। नवजात बच्चों को 'मायाँ' धोकाई जाती है। इन्हें बायाँ/मायाँ नाम से पूजा जाता है। विवाह के पूर्व वधू को 'मायाँ' में बैठाया जाता है। उस काल में ये मायाँ माता वधू कन्या की बुरी आत्माओं से रक्षा करतीं। अखण्ड दीपक जलाकर वधू कन्या मायाँ के संरक्षण में सुरक्षित रहती है। बायाँ, मायाँ, महामायाँ, मावलियाँ (मालव्याँ), चालकनेचियाँ, डूगरेचियाँ और बीजासणियाँ के नाम से महिलाएँ अपने गले में इनकी मूर्ति पहनती हैं। इसे 'पातड़ी' कहा जाता है। दशपुर अंचल के चारण परिवारों में इन माताओं के देवरे हैं। वे इन्हें अपनी कुलदेवियों के रूप में पूजते हैं। इनकी स्तुति में 'चरजावाँ' गायी जाती है। चरजावाँ के दो स्वरूप होते हैं– सिगाऊ और घड़ाऊ। घड़ाऊ चरजावाँ तब गाई जाती है, जब भक्त पर विपत्ति होती है। सुख के मंगल कार्यों में घड़ाऊ चरजावाँ नहीं गायी जाती। सिगाऊ चरजावाँ देवी के चरित्र की प्रशंसा में रची जाती है।

यद्यपि ये समस्त देवियाँ (सातों) चारण कुलोत्पन्न थीं। इन्हें हिंगलाज माता का अवतार माना जाता है। इसी कारण नाथ पंथ के अनुयायी भी इन्हें मान देकर इनकी

पूजा करते रहे हैं। इन्हें सातों देवियाँ अछरा (सप्तमातृकाओं) माताओं का अवतार माना जाता है। इनके मंदिर गुजरात, राजस्थान और मालवांचल में है। नाथ पंथ भी इन्हें हिंगलाज मानकर मान देता है।

इसी प्रकार दशपुर अंचल की लोकमाताओं का भी पूरे अंचल में बहुत प्रभाव है। मेवाड़–मालवा इन्हें पूजता है। आँतरी, दूधाखेड़ी, मोड़ी, आवरी और मसरौली में नाथों का प्रभाव रहा है। इन शक्ति पीठों पर नाथ सिद्धों ने साधना कर सिद्धियाँ प्राप्त की हैं तथा नाथों के स्थाई मठ–आसन मढ़ियाँ भी यहाँ रही हैं।

दशपुर जनपद की लोकमाताओं के लिये एक विरद विशेष रूप से बखानी जाती है। समस्या यह है कि विरदें जितनी भी हैं, एक दूसरे में गड्ड–मड्ड हो गयी हैं। अलग–अलग विरद बखानों में छाँट लेना और क्रम देना बहुत कठिन और असाध्य कार्य है। वैसे भी माताओं की गणना को क्रम देना भी धृष्टता ही है। एक विरद के अनुसार आंतरी को 'आदधाम' कहा गया है। अर्थात् सबसे पुराना व आदि शक्तिपीठ आंतरी को माना जाता है।

*आद धाम आँतरी, मोड़ी तखत मंडाण।*
*मसरोली मेहमा घणी, महुए मात परवाण।।*
*भादवा जोत ज्वालकी, सतियाँ रो सत जाण।*
*साँगाखेड़ा आवरी, दूदाखेड़ी सकारण।।*
*भँवराँ रो भाले उठे, चामुण्डा रो उठे निसाण।*
*भेंसासरि रे ताप रो, किरणबद्ध करूँ बखाण।।*
*आवराँ आसापुरी दूभर ज्वाल भाणपुर की आण।*
*पतूखी मात सतवंती, सतियाँरी ओलखाण।।*
*भाट राव भोपा भणत, चारण चतर सुजाण।*
*विरद वखानी बारठाँ, ऊँची वाणी ताँण।।*

यह कह पाना कठिन है कि विरद में कुल इतने ही पद हैं अथवा यह किसी बड़ी विरद का अंश हैं। इस क्षेत्र में आँतरी माता सबसे पुरानी बस्तियों में से एक है। यह पूरा क्षेत्र किस समय आदिवासी बहुल क्षेत्र रहा है। जब चन्द्रावत लोग आँतरी में आये, तब भी यहाँ आदिवासी समुदायों का बाहुल्य था। रामपुरा पर रामा भील का शासन था। आँतरी रामाभील की सबसे सम्पन्न तहसील थी। आँतरी माता का स्थान तब भी यहाँ था, इसी स्थान पर था। यद्यपि यह मन्दिरनुमा न होकर खुला स्थान था। हो सकता है माता के ऊपर छाया हो। आदिवासी समुदाय इसे भेंसासरी माता के नाम से जानते थे। नाथ

पंथ के जोगी इस स्थान को हिंगलाज मानकर पूजते रहे । चन्द्रावत अपनी कुल देवी मानकर। वस्तुतः यह भील वीरांगना अंबली देवी का स्थान था। बाद में नाथों के आगमन पर उन्होंने उसी पिंडी में हिंगलाज की भावना स्थापित की। चन्द्रावत राजपूतों ने यहाँ सत्ता हथियाने के पश्चात् मूल पिंडी के पास अपनी कुलदेवी की स्थापना कर दी। आज भी दर्शनी पिंडी भीलमाता और हिंगलाज माता का ही है। यहाँ के पुजारी सदा बदलते रहे। पूर्व में भील, फिर नाथ और बाद में राठौर राजपूत।

यहीं पर शाकंबरी माता की भी स्थापना की गई। शाकंबरी तंत्र–मंत्र सिद्धियों की दात्री हैं। नाथों ने यहाँ खूब साधनाएँ की और सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। सांगाखेड़ा और आँतरी मंत्र धाम कहलाते हैं। सादड़ी में विराजित भंवरमाता गौरी का रूप है। उसे जंत्र धाम कहा जाता है। लोक में प्रसिद्ध हैं–

*मंत्र धाम सांगाखेड़ा, तंत्र धाम आँतरी।*
*जंत्र धाम गोरजा, पूरी–पूरी खातरी।।*

इन तीनों स्थानों पर नाथ पंथ के सिद्धों ने बहुत साधनाएँ की और सिद्धियों प्राप्त की हैं। इन देवियों के अनेक चमत्कार लोक में प्रसिद्ध है।

यशगाथा कहती है। मैं इन सब माताओं को वंदन करता हूँ, कामठा (तीर कमाण धारिणी) नाहर विराजित, रूपणमाता को मैं वंदन करता हूँ। ये माता दूध और पूत की रक्षक हैं। यह पहले आम्बा खोह में बिराजती थी, तब हिंगलाज कहलाती थी फिर यह झर (झरने में) चली गई। नदी तट पर विराजित यह देवी रूपा कहलाई। यह माता स्वप्न में आकर सब दुःख टालती है। मार्ग बताती है। दूधलाई की माता हिंगलाज जो स्वयं हिंगलाजगढ़ से आकर यहाँ बिराजी, मैं उसे वंदन करता हूँ।

रामपुरा की जालकी वीरांगना जिसने युद्ध में वीरगति प्राप्त की थी। मैं उसके शीश रूप में विराजित स्वरूप का वंदन करता हूँ। यह वीरांगना अत्यंत शौर्यपूर्वक युद्धरत थी। युद्ध करते शीश कट गया। उसी रूप में यह रामपुरा चौहटे पर पूजित हैं। शंखोद्धार के जलेरिया भैरव का वंदन करता हुआ, मैं यदि मार्ग से भटक जाऊँ, किसी भी आराधना को भूल जाऊँ, तब मेरे सद्गुरु गोरखनाथ का स्मरण करता हूँ। उन्हीं ने सद्मति का ज्ञान दिया है। मैंने जो विरदा बखानी है। इसका ज्ञान मुझे सरस्वती माता ने दिया है। पाताल देवी कालका व देव शेष जी सदा रक्षा करें। हे माता कालका! मैं सदा आपका स्मरण करता हूँ। आप कवच की तरह मेरी रक्षा करना।

मैं मसरोली माता, मोड़ी माता, कंकाली माता, दूधाखेड़ी माता, पारासली माता का वंदन करता हूँ। मोड़ी मेरा मूल मुकाम हैं। यहाँ नाथ आसन का मैं सेवक हूँ। जावदो की माता मड़माता, खोर की गोरजा, घाटामाता, महेशपुर, रुणीजा की गुफा की कालिका माता (हिंगलाज माता), तोरण बड़ की हिंगलाज, चण्ड–मुण्ड की संहारिणी, तीरकमंठा धारिणी माता समस्त सतियाँ, पितराणियाँ, मैं सबका वंदन करता हूँ।

आमद के गौराजी भैरव मैं स्मरण करता हूँ। गुरुधाम (मोड़ी) आसन पर बैठकर मैं यह विरदखली लिख रहा हूँ।

हे माता! तेरे रूप अनंत है। तू अपरम्पार है। तेरी महिमा कोई भी नहीं बखान सकता। तू कहीं देवलमाता है, कहीं इन्द्राणी, कालका, ब्रह्मणी, माहेश्वरी, परमेश्वरी, रमा (वैष्णवी) है। (सप्तमातृकाएँ) तू कष्यप, अछरा, बच्छड़ा सब में विराजित हैं। बिजली, घन गर्जना, तीज–चौथ–पंचमी, छठ के त्योहारों में तेरी पूजा होती है। तू ही बगुला माता, शंकोतरी माता के रूप में मंत्र शक्ति रूप हैं।

हे माता! तेरे रूप अनेक हैं। तूने खड़ग धारण कर अनगिनित राक्षसों का संहार किया है। वैष्णोंदेवी तथा हिंगलाज रूप में तू गुफा में विराजित है। तूने भ्रष्ट और अहंकरी नाथ भैरवों का संहार कर लोक कल्याण किया है। तू तिरिया, चिड़िया, बंगाल सुन्दरी, सीता, हींगला, अठाई माता, ब्राह्मणी, बीजासन, तू ही देवलोक की माता है। तू ही भ्रदकाली, कापाली, दुरगा, छिन्नमस्ता, तू गजरूपा इन्द्राणी है। तू ही गरुड़ विराजित लक्ष्मी है। नंदी विराजित पार्वती माहेश्वरी है। परमेश्वरी भी तू ही है। कौमारी भी तू है। वराही भी तू ही है। काली–महाकाली तू ही तो है।

लज्जा गौरी, गाजमाता, मातंगी, सतरंगी, भौमा, रेणुका, तुलजा भवानी, तू ही गणपति, हनुमान, शेष और शारदा की शक्ति है। भोपे, भाट, गंधर्व, दमामी, नाथ सब तेरा यश गाते हैं। सब तेरे द्वार के याचक हैं। मैं करणीनाथ तेरी विरदावली गाकर धन्य हुआ हूँ। हे माता! मैं तेरा द्वार छोड़कर किसके द्वार पर जाऊँ?

करणीनाथ ने यह विरदावली लिखी है और मैं इसे गाता हूँ। सात पीढ़ियों से यह गाथा गाई जा रही है। तू सभी देवियों का एक स्वरूप है। हे हिंगलाज माता! तू वरदायनी है। मैं आप सबकी जय–जयकार करता हूँ। आप सब मेरी विरद से प्रसन्न हों। सद्गुरु गोरखनाथ की जय। गाँव–गाँव में विराजित समस्त देवियों की जय। सभी देवों की जय।

(सौजन्य– सिद्धनाथ श्री जोगी रंगनाथजी संजीत, मूल रचियता करणीनाथ जोगी निवासी शक्तिधाम मोड़ी, तह. सुवासरा, जिला–मन्दसौर)

यह गाथा (विरदावली) इस अंचल की समस्त लोक देवियों, समस्त लोक देवताओं और पौराणिक देवी–देवताओं का अद्भुत यश गाथा है। इसका बखान कहीं अंश रूप से तो कहीं समग्र रूप से देवी स्थानों पर किया जाता है। जहाँ–जहाँ भाव आता है, वहाँ–वहाँ इसका बखान स्वयं भोपा गाकर करता है।

हिंगलाज स्थलों पर नाथ पंथ के पूजक– आराधक इसका बखान करते हैं। यहाँ भाव नहीं आता। नाथ पंथ में आत्मा का या देवी–देवता का भाव रूप में किसी के शरीर में आने की अवधारणा नहीं मिलती।

हिंगलाज माता की यह विरद हिंगलाज थानकों, नारसी माता थानकों, जोगणियाँ थानकों पर नाथ साधुओं द्वारा माता को वरदाने (यश बखान कर प्रसन्न करने) के लिये गाया जाता है। इसके गायन के साथ काँसे की थाली, डफ या कहीं–कहीं ढोलक भी बजाई जाती है। मानसा नारसी मंदिर पर भी इसे गाया जाता है।

विरदगाथा में अनेक लोक–देवियों, पौराणिक देवियों, अछरा माताओं, मालवा की लोक माताओं का भी उल्लेख किया गया है। यह विरद (यश गाथा) अब तक प्राप्त गाथाओं में सबसे लम्बी एवं अनेक देवियों के साथ हिंगलाज माता को केन्द्र में रखकर रची गई है।

नाथ पंथ के साधुओं द्वारा हिंगलाज मंदिरों में मैंने इसे वरदाते हुए सुना है। यही गाथा कई माता देवरों पर अन्य पण्डों–पुजारियों द्वारा भी वरदाई जाती है।

लोक देवियाँ सर्वपूज्य होती हैं। इस संदर्भ–प्रसंग का यह भी आशय यहाँ है कि नाथों में हिंगलाज माता को सर्वकल्याणी देवी के रूप में सर्वत्र पूजा–आराधा जाता है। यह नाथ पंथियों की विशिष्ट आराध्य देवी हैं।

*ममाय स्याह कीजिये, स आप पाय वंदना।*
*ब्रह्माडं खण्ड रचना, प्रफंच रंच्चु छंदना।।*
*मया उगत्त देहु सत काव्य कथ्य सारणी।*
*नमस्तु मातु हिंगलाज, तूं त्रिलोकी तारणी।।1।।*
*घम घमाट घूघरा, जम्ज जमाट जोगणी।*
*घटात घाट भैरवी, दय्यत दैन्त थागणी।।*
*उमंग जोग जंग अंग, कौच अंग धारणी।*
*नमस्तु मात हिंगलाज, तूं त्रिलोक तारणी।।2।।*
*डम डमाट डैरवास, भैरवास नच्चयत।*

प्रवाड़ दैत्य राड़ थम्भ, अंब जुद्ध रचियत।।
सवार नार खड्ग धार, मूंड काट डारणी।
नमस्तु मात हिंगलाज, तूं त्रिलोक तारणी।।3।।
छकाय मद छाकती, हकार रथ्थ हल्लीयम।
वकार मार मार यूं, उच्चार शौर गलियम।।
कराल काल कालिका, वैराट रूप धारणी।
नमस्तु मात हिंगलाज, तूं त्रिलोक तारणी।।4।।
महान बण्ड खण्ड चण्ड, मुण्ड रक्त दानवा।
पिनाक ताण बाणयुं, छिपाय देत भाणवा।।
उत्तंड बण्ड झुण्डको, घमण्ड गर्व गारणी।
नमस्तु मात हिंगलाज, तूं त्रिलोक तारणी।।5।।
कटि क्रमाल मेघ ज्वाल, व्है कराल कालिका।
चढ़ी चमूह बांध ब्रूह, ग्रीव रुण्ड बालिका।।
चलाय चक्र वक्र तुझ, शक्रु काज सारिणी।
नमस्तु मात हिंगलाज, तूं त्रिलोक तारणी।।6।।
पछाड़ दैत्य जाड़ फाड़, अंब जुद्ध जीतणी।
करेलल्क वीर हक्क, जाम अट्ठ वीतणी।।
उतार भार फूमिकोज, गर्व दुष्ट गारणी।
नमस्तु मात हिंगलाज, तूं त्रिलोक तारणी।।7।।
धपाय ग्रीथ आमिसां खपाय दीध तें खल्लम।
ममाय पाय आयृदेव, स्याह कीध ते भल्लम।।
पढ़ै स्तुत देव युत्थ, अंबिका उबारणी।
नमस्तु मात हिंगलाज, तूं त्रिलोक तारणी।।7।।
धपाय ग्रीध आमिसां, खपाय दीध में खल्लम।
ममाय पाय आयदेव, स्याह कीध ते भल्लम।
पढ़ै स्तुत देव युत्थ, अंबिका उबारणी।
नमस्तु मात हिंगलाज, तूं त्रिलोक तारणी।।8।।
प्रशाच भूत प्रेत शत्रु, डाव घाव कर छलम।
रहे जो मात सम्मुखी, सदैव मोद मंगल्लम।।
सुदिष्ट पिष्ट सांकी, फतेस काज सारणी।
नमस्तु मात हिंगलाज, तूं त्रिलोक तारणी।।9।।

हे माता! आप मेरी सहायता करें। मेरी वंदन स्वीकार करें। आप ब्रह्माण्ड की (सृष्टि) की रचयिता हैं। आपने ही यह सारा जीव जगत रचाया है। यह आपकी ही सारी लीला है। मुझे आप प्रेरणा दें, मैं आपकी वंदना रच सकूँ। हे त्रिलोकी की तारणहार माता हिंगलाज! आप मुझे काव्य सृजन की क्षमता प्रदान करो। हे घूघरे पहनकर ताँडव करने वाली माता! हे जोगणिया सिद्धि! हे दैत्यों का संहार करने वाली भैरवी! हे माता! हे उमंग जोग धारिणी अम्बे! हे कौच धारणी! भैरव आपके समक्ष डमरू बजाकर नृत्य करते है। दैत्यों के सम्मुख युद्धरत होकर उनका संहार करने वाली माता हिंगलाज नाहर पर सवार होकर खड़ग धारण कर दैत्यों के मुण्ड कटाने वाली माता। हे त्रलोकों तारिणी! तुझे नमस्कार है।

मद में मत्त होकर रथ पर आरुढ़ खड़गधारण कर दैत्यों के मुण्ड काटने वाली। हे कराल कालिका! हे विराट रुप धारिणी माता! तुझे नमस्कार है।

चण्ड–मुण्ड के रक्त का पान करने वाली, धनुष धारण करने वाली, अपने बाणों द्वारा भानु को छुपा देने वाली माता, हे शत्रु झुण्ड का गर्व नष्ट करने वाली चामुंडा! तुझे प्रणाम। कमर में कमरमाला, मेघों जैसी ज्वालामयी, कालिका के समान प्रचण्ड होकर दानवों के रुंड–मुंड काटने वाली कालिका। चक्र चलाकर सबके काज संवारने वाली जगत तारिणी माता! तुझे प्रणाम।

दैत्यों को पछाड़कर, उनकी छातियाँ फाड़कर, हे युद्ध जय करने वाली माता! भूमि से पाप का भार उतार कर दुष्टों का संहार करने वाली माता! गिद्ध इत्यादि शव भक्षियों का भरण पोषण करने वाली रणचंडिका! मुझ पर कृपा करो। मैं आपका वंदन करता हूँ। पिशाच, भूत–प्रेत से सबकी रक्षा करने वाली माता! जो भी आपके सम्मुख रहता है वह निर्भय होकर सदैव मुदित और मंगलमय रहता है।

हे सुदृष्टि करने वाली, विजय दिलाने वाली माता! मैं आपका वंदन करता हूँ। मुझ पर आप हर तरह से कृपा करें।

## नाथ जोगी कालबेलिए

नाथ पंथ के जिन नौ नाथों का उल्लेख किया गया है। उन्हीं नौ नाथों में एक नाथ कनिपाव हुए हैं। वे जालंधर नाथ के शिष्य थे। जालंधरनाथ के शिष्यों में प्रमुख का उल्लेख पीछे पृष्ठों में किया जा चुका है।

कनिपाव का एक नाम कृष्णपाद भी था। पाव पंथ का उद्भव श्रृँगारिपाद

(गोपीचंद) से (पाद या पाव पंथ) माना जाता है। कनिपाव अत्यंत चमत्कारी सिद्धनाथ थे।

कालबेलियों को उन्हीं का अनुयाई माना जाता है। जैसा कि पीछे लिखा गया है कि नाथ पंथ में नौ नाथों के अतिरिक्त बारह पंथ और चौरासी सिद्ध हैं। चौरासी सिद्धों की एक सूची भी पिछले पृष्ठों पर दी गई है। अलग–अलग संग्रह में चौरासी सिद्धों के नामों में अन्तर पाया जाता है। सभी संग्रहों का उल्लेख व सूची यहाँ उद्धृत करना संभव नहीं है।

डॉ. महेन्द्र भानावत ने जोधपुर निवासी जोगी सोरमनाथ से सुनी एक कथा बतायी, जो इस प्रकार है– एक समय नौ नाथों, चौरासी सिद्धों के अखाड़े सम्मिलित हुए। इनके गुरु जालंधरनाथ थे। उनका पाटनी शिष्य कनिपाव था। सिद्ध अपने–अपने खप्पर लेकर आये और अपनी–अपनी करामात से मनवांछित योजना की कामना कर बैठे। किसी ने भैंस के सिर की इच्छा व्यक्त की तो किसी ने मानव धड़ की। किसी ने मिठाई की कामना की तो किसी ने अन्य पकवानों की। कनिपाव सोच में पड़ गया कि वह किस बात की इच्छा प्रकट करें। उसने सर्प–जहर की कामना की और खप्पर में जहर आ गया। सभी लोग आपस में बांट–बूंटकर अपना भोजन करने लगे।

कनिपाव ने कहा कि मेरी मनसा से सर्प का जहर आया है। यदि कोई चाहे तो इसे ग्रहण कर सकता है। मगर इसके लिए कोई तैयार नहीं हुआ। फलतः कनिपाव सारा जहर स्वयं पी गया, परन्तु अन्य लोगों को यह बात ठीक नहीं लगी। अतः कनिपाव को उन्होंने अंठल (अखाड़े) से अलग कर दिया। तब से कनिपाव का एक स्वतंत्र पंथ चला। कनिपाव को मानने वाले कनिपाव के शिष्य बन गये। कनिपाव जंगल में रहकर तपस्या करते थे और भगवा धारण करते थे। अतः इनको मानने वाले भी जंगल में ही रहते हैं और भगवा बाना पहनते हैं। कहीं स्थाई रूप से घर–गृहस्थी नहीं बसाते और साँप पालकर अपनी आजीविका चलाते है। कानछेदन इनके लिये आवश्यक है। पहले इनमें भगवा वस्त्र धारण करने पर मुख्य जोर दिया जाता था। इसके लिए भगवे में आना और भगवे में जाना जैसी बात विशेष रूप से प्रचलित रही। अब इस तरह का कोई कठोर बंधन नहीं है। कुछ लोग स्थाई रुप से बस भी गए हैं।

## कालबेलिया नाथों के बारह पंथ

नाथों के बारह पंथों में आरण, हेरण, खाकी, वैरागी, बम, भारती, पुरी, बरी, दसनाम तथा गुंसाई प्रमुख हैं। कनफड़ नाथ अलग होते हैं। इनमें लालवादी, फूलवादी,

टोपीवाले वादी, घट्टीवाले वादी तथा सींगड़े वाले वादी जैसे फिरके हैं। लालवादी और फूलवादी झाड़फूँक, एलम तथा साँप बिच्छू का झाड़ा देने का काम करते हैं। हिंगलाज माता उनकी कुलदेवी हैं। इस देवी का कहीं देवरा नहीं होता। ये स्वयं ही इसका फूल अपनी कंडली में रखते हैं। यह फूल चाँदी का बना बिना नाके का होता है। फूल में शेर की सवारी पर दुर्गा चित्रित हिंगलाज की हुई बताई जाती है। नवरात्रा में इसकी पूजा की जाती है।

मृत्यु के बाद, मृतक को समाधि दी जाती है। समाधि पर भगवा चिन्दी लगाई जाती है और शिव का लिंग (स्थापित) खड़ा कर दिया जाता है। चार–पाँच दिन मृतक का सामान्य संस्कार करते हैं। डेढ़ साल पश्चात् मुखिया एकत्र होते हैं, तब काज करियावर (भंडारा) की रस्म पूरी की जाती है। इस समय भंडारा भी किया जाता है। इनका खास देव नाग है। इसी पर इनकी रोजी–रोटी निर्भर है। ये नाग को प्रायः मंतरते है। मंतर नहीं चलने पर दवाइयों का प्रयोग करते हैं। सभी साँप पुंगी से वश में नहीं होते हैं। केवल पुंगी वाला साँप ही पुंगी से वश में किया जा सकता है। यों इनकी मान्यता है कि पुंगी पर आने वाला नाग खास नाग होता है, जिसे कृष्ण का वरदान मिला है। ये साँपों की 162 जातियां बतलाते हैं। जहरीले साँप बहुत कम होते हैं। इनकी जातियाँ 30–35 से अधिक नहीं हैं। ये लोग अपने एलम से प्रत्येक किस्म के साँप को पकड़ने में बड़े दक्ष होते हैं। असली साँप कटखोरी जात का होता है।

## लालनाथी–फूलनाथी

कनिपाव का चेला जेपाल था। कालिया नाग को जिस पुंगी से वश में किया था, उस पुंगी को कृष्ण ने जेपाल को भेंट स्वरूप दी, तभी से इन जोगियों का पुंगी मुख्य वाद्य बना। जेपाल के चेले लालनाथ व फूलनाथ हुए। ये दोनों भाई थे। इनमें लालनाथ बड़ा भाई था। लालनाथ फक्कड़ व फूलनाथ गृहस्थ थे। आगे जाकर इन दोनों के दो पंथ हुए। लालनाथी दो झोली रखते हैं तथा लाल धोती, लाल साफा तथा लाल ही कमीज पहनते हैं। लालनाथी राजस्थान, मध्यप्रदेश, हरियाणा तथा पंजाब में फैले हुए हैं। फूलनाथी कच्छ में हैं। ये एक झोली रखते हैं और इनके मोर की कलंगी लगती है। देवी के नाम का डमरू भी ये लोग बजाते हैं।

नवरात्रा में ढाक तथा पुंगी के साथ ये सगत भवानी हिंगलाज खोड़ियाल, सरीअंबे, मामेरड़ी, हड़कमी, भेरु, बीसोत, बेचराजी, चावंडा, कालका आदि के भारत गाते हैं। ढाक का घेरा चंदन की लकड़ी का बना होता है। इस पर गो की खाल मढ़ी हुई होती है। आम तथा सोवन की लकड़ी भी काम में ली जाती है। इसे बजाने के लिये

बड़ के झाड़ की जड़ ठीक रहती है। भेरू सब देवों का चौकीदार होने के कारण सर्वप्रथम भेरू का गाना गाते हैं। आधी नवरात्रा तो ये मिठाई से तथा शेष नवरात्रा झटके से मनाते हैं। नौ ही दिन देवी का अखंड दीप प्रज्ज्वलित होता है। इन दिनों भजन भाव तथा जागरण (जलवा) होता है। जिस व्यक्ति को भाव पड़ने होते हैं, वह नौ ही दिन दुग्धाहार लेता है। नौवे दिन बकरा, मुरगा, गेटा अथवा पांड़े की बलि दी जाती है।

जंगल में जितने भी उनके शिष्य थे, सब उनके अनुयाई हो गए और नाथपंथ की मुख्यधारा से पृथक होने के उपरान्त भी गोरख–मछंदर आदिनाथ को आराधते हैं।

कालबेलिए अर्थात् काल बहेलिए। काल–सर्प–नाग को पकड़ने वाले। पंजाबी में बेली का अर्थ मित्र भी होता है। इस प्रकार कालबेलियों को हम सर्प–नाग मित्र भी कह सकते हैं। ये हर प्रकार के साँप–नाग को पकड़ सकते हैं। इनके पास सर्प विष उतारने के मंत्र और जड़ी–बूटियाँ होती है। सर्प काटे व्यक्ति या पशु का भी ये उपचार करते रहे हैं। ये साँप–नाग को पकड़ते ही उसकी विष पोटली जड़ से समाप्त कर देते हैं तथा दाँत तोड़ देते हैं, जिससे वह न तो काट पाता है और न उसमें विष पैदा हो सकता है।

कहा जाता है कि पूर्व समय में ये विषकन्याएँ तैयार करते थे। राजा–महाराजा ऐसी कन्याओं को प्रशिक्षित करवाते थे। बदले में इन्हें पर्याप्त धन मिलता था।

यह जाति अब सर्प विष का संग्रह कर उसका व्यवसाय भी करने लगी है। इसे कानून संगत नहीं माना जाता।

इनकी स्त्रियाँ नृत्य–गान में बहुत प्रवीण होती हैं। गाँव–खेड़ों या नगरों के चौराहों पर ये नृत्य गान कर धनार्जन करती हैं। इनके पुरुष साँपों के करतब दिखाकर रोटी–कपड़ा या पैसा मांगते दिख जाते हैं।

पूर्व काल में कालबेलिये पत्थर की हथचक्की (घट्टी) खरल आदि का व्यवसाय भी करते थे। आज वह चलन बंद हो गया है।

यह एक घुमक्कड़ जाति है। इनके डेरे चलत होते हैं। कई जोगी स्थाई रूप से बस भी गए हैं तथा खेती–बाड़ी का काम करते हैं। ये कनफाड़े होते हैं तथा भगवावेश धारण करते हैं, किन्तु आजकल ये दोनों परम्पराएँ टूट रही हैं। इनकी सबसे अधिक संख्या राजस्थान में है। उसके बाद मध्यप्रदेश फिर हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र में पाए जाते हैं। अन्य प्रदेशों में भी कम संख्या में उनकी जाति पाई जाती है।

नाथपंथ के ये कालबेलिए कई बार सर्पदंश से लोगों के प्राण बचाने और घरों–बाड़ों आदि से साँप पकड़ने के कारण अर्थ तो वो पाते ही हैं, सम्मान भी पाते हैं।

**औगड़**

यह जाति भी नाथपंथ की ही एक पृथक शाखा है। ये सभी स्वयं को गोरखनाथ और मछंदरनाथ का अनुयायी मानते हैं। इनका रहन–सहन भी विचित्र प्रकार का होता है। ये तंत्र–मंत्र, झाड़ फूक आदि टोटकों द्वारा समाज में रमते हैं और धनार्जन करते हैं।

इनका सबसे बड़ा त्योहार दशहरा होता है। दशहरे की 84 खांते के वीर मंत्रों को केशरिया रंग के मुरगे की धूप दी जाती है। इस दिन खुशहाली के रूप में खूब दारू–पाणी चलता है। अखाड़ा आदेश में ओगड़ है। ओगड़ के चेले के चेले पंथ और यह पंथ सबसे ऊँचा है। ओगड़ मसाणिये साधू होते हैं, जो मुर्दों को खाते हैं। जोधपुर इलाके में अभी भी ऐसे ओगड़ हैं। लखानाथ, केसानाथ, सवनाथ, पछाननाथ, राजानाथ, लालनाथ आदि अनेक जुझार हुए। इनके नाम का डोरा होता है। जहाँ इनकी मृत्यु हुई, वहाँ इनके चबूतरे भी बने हुए हैं। इन चबूतरों पर घुड़सवारी के रूप में पुतली प्रतिष्ठित कर दी जाती है। अपने ही खानदानी के दिल में ये जुझार भाव आते हैं। कहीं–कहीं आदमी के बजाय ये औरत के दिल में भी आते हैं।

नवरात्रा, होली, दीवाली तथा नारियल पूनम (रक्षाबंधन) इनके मुख्य त्योहार हैं। इनमें से राखी इनकी असली धरम का दस्तूर हैं। ऊँट, घोड़े, गधे पर ये लोग अपने डेरे लिए एक स्थान से दूसरे स्थान भ्रमण करते रहते हैं। बगड़ावत, झालावत, मरड़ा, गोहेल, राठौड़, शीशेदिया, राणावत, देवड़ा, मकवाड़ा, उदेस, चव्हाण आदि इनकी खांपें हैं।

शिवरात्रि को इनके विशेष भजन भाव होते हैं। इनमें तंबूरा, सितारा, एकतारा, दोतारा, तीनतारा, पांच तारा, छतारा तथा पुंगी का वादन करते हैं। इनकी ऐसी मान्यता है कि भगवान कृष्ण के दांत तोड़कर बीज बोया, जिससे तूंबा पैदा हुआ और उसकी पुंगी बनाई गई। इसी प्रकार बाल तोड़कर बाँस उगाया गया, जिसकी बीन बनाई गई।

सुगरा मरने पर उसके पीछे गवंतरी देते हैं। गुरु को विद्या देते हैं, ताकि अगला जन्म भी मनुष्य का ही मिले। मंत्र–तंत्र ये लोग अपने बाप–दादों से सीखते हैं। मोहरे वाले सांप लाखों में एक आध होते है। मणिधारी साँप होते हैं, पर जो मणिधर आदमी होता है, उसी को दिखाई देते हैं। ये लोग रमते जोगी और बहते पंथी होते है। व्याधि दूर करने के लिये हिन्दू मंत्र–तंत्र के अलावा मुस्लिम कलमों का प्रयोग भी करते हैं। भादवा सुदी 10 तथा 11 को जूणे (मेवाड़) में इनका मेला भरता है।

यह नाथ जोगी जाति उत्तर भारत के अंचलों में सर्वत्र पाई जाती है। कुछ लोग इस जाति के जोगियों को अच्छा नहीं मानते। बावजूद इसके इनका प्रभाव समाज में बना रहता है। नाथपंथ के सिद्ध जोगी इनका बहिष्कार करते हैं। उनका मत है कि इनके कारण लोक जीवन में गोरख द्वारा प्रवर्तित नाथ पंथ को अपयश प्राप्त होता है।

(सौजन्य–आदिवासी लोक–डॉ. महेन्द्र भानावत तथा सामुख्य चर्चा 9–6–2015 उज्जैन प्रवास)

### कामड़

कामड़ जाति राजस्थान–मालवा में विशेष रूप से पाई जाती है। इस जाति के लोग मेघवाल समाज के मंदिरों की पूजा और रामदेवजी के पगल्ये पूजते हैं। लोक मान्यता है कि जब रामदेवजी ने आतंकी भैरव राक्षस का वध किया, तब उनके शिष्यों को रामदेवजी ने अभयदान देकर अपनी शरण प्रदान कर दी। तबसे वे सब रामदेवजी के अनुयाई हो गए। जिस भैरव राक्षस को मारकर रामदेवजी ने उसके आतंक से क्षेत्र के लोगों को मुक्त करवाया, वह वस्तुतः राक्षस न होकर एक दुष्ट तांत्रिक नाथ ही था। उसका नाम भैरवनाथ था। उसे शिष्य भी नाथ पंथी ही थे।

एक कामड़ विद्वान चम्पादास कामड़ ने कामड़ समुदाय पर शोध प्रबंध लिखा है। उस ग्रंथ में वे कामड़ों का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं– ब्रह्मा, विषन, महेस, गुसाईं, गुरुदंत अधिकारया दंत के वासे पूरा वासा, दस भया अंकुरा, गिरि, पुरी, भारती, तीरथ, आसण जोग पर्वत, सागर, शिव सती। दस दो तो पूरा सती, निराकर, नौ नाथ उपाया– आदनाथ, अणभय की माया। बड़ा तो शंभुनाथ, दूजा ओंकारनाथ, तीजा बुद्धनाथ, चौथा ब्रदीनाथ, पांचवां आदनाथ छठा लीलानाथ, सातमा कणकनाथ, आठवों गौतमनाथ, नौवों नागनाथ। रुखी कुमैर के बारापुत्र जोग भेद, अवदूत, बड़ा तो आदरक, सातवां चौहान रंक, आठवां उड़ग रंक, नवां भातरंक, दसवाँ काग रंक, ग्यारवाँ गौतम रंक, बारहवाँ ब्रह्मरंग हाड़ा बारमां हिजड़ा रंक।

– (कामड़ समुदाय– डॉ. चम्पादस कामड़, पृष्ठ 72)

उपरोक्त उल्लेख से यह तो स्पष्ट है कि– कामड़ का समुदाय पूर्व में नाथ पंथी थे। भैरवनाथ के शिष्य–दास थे। बाद में ये रामदेव के अनुयायी हो गए। इनका समुदाय बड़ी संख्या में राजस्थान और मालवा में निवास करता है। इनके पूर्वज में बड़ों मल्लनाथ का नाम विशेष रूप से लिया जाता है।

## मरो हे जोगी मरो

कबीर ने कहा है– 'बजा नगाड़ा काल का मेरे मन आनंद। कब मरिहों कब

भेटिहों पूरण परमानंद'। मरना तो आनंद का विषय है। जो मरता है वह तो है ही नाशवान उसका आना क्या और जाना क्या?

दार्शनिक ओशो ने गोरख के विषय में जो कहा है, वह अद्‌भुत है। ऐसा अभी तक किसी विद्वान ने नहीं कहा था। मैं उनके एक लेख का कुछ अंश जस का तस पूरी विनम्रता एवं ईमानदारी से प्रस्तुत कर रहा हूँ। इन लेख अंशों को मैंने निरन्तरता देकर एक कर दिया है। ओशो ने गोरख की दिव्यता और भव्यता को अत्यंत तार्किक शब्दों में प्रस्तुत किया है, वे कहते हैं– 'महाकवि सुमित्रानंद पंत ने मुझसे एक बार पूछा कि भारत के धर्माकाश में वे कौन बारह लोग हैं, जो मेरी दृष्टि में सबसे चमकते हुए सितारे हैं? मैंने उन्हें यह सूची दी– कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, महावीर, नागार्जुन, शंकर, गोरख, कबीर, नानक, मीरा, रामकृष्ण और कृष्णमूर्ति। सुमित्रानंद पंत ने आँखें बंद कर ली और लंबी सोच में पड़ गये।

सूची बनाना आसान भी नहीं है, क्योंकि भारत का आकाश बड़े नक्षत्रों से भरा है। किसे छोड़ो, किसे गिनो?... वे प्यारे व्यक्ति थे– अति कोमल, अति माधुर्यपूर्ण । वृद्धावस्था तक भी उनके चेहरे पर वैसी ही ताजगी बनी रही, जैसी बनी रहनी चाहिए। वे सुंदर से सुंदरतर होते गये थे...। मैं उनके चेहरे पर आते–जाते भाव पढ़ने लगा। उन्हें अड़चन भी हुई थी। कुछ नाम, जो स्वभावतः होने चाहिए थे, नहीं थे। राम का नाम नहीं था। उन्होंने आँख खोली और मुझसे कहा– राम का नाम छोड़ दिया है आपने। मैंने कहा– मुझे बारह की ही सुविधा दी चुनने की, तो बहुत नाम छोड़ने पड़े। फिर मैंने बारह नाम ऐसे चुने हैं, जिनकी कुछ मौलिक देन है। राम की कोई मौलिक देन नहीं है, कृष्ण की मौलिक देन है। इसलिए हिंदुओं ने भी राम को पूर्णावतार नहीं कहा।

उन्होंने फिर मुझसे पूछा– तो फिर ऐसा करें, सात नाम मुझे दें। अब बात और कठिन हो गयी थी। मैंने उन्हें सात नाम दिये– कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध,महावीर, शंकर, गोरख और कबीर। उन्होंने कहा– आपने जो पांच छोड़े, अब किस आधार पर छोड़े? मैंने कहा– नागार्जुन बुद्ध में समाहित हैं, जो बुद्ध में बीज–रूप था, उसी को नागार्जुन ने प्रगट किया है। नागार्जुन छोड़े जा सकते हैं और जब बचाने की बात हो तो वृक्ष छोड़े जा सकते हैं, बीज नहीं छोड़े जा सकते। क्योंकि बीजों से फिर वृक्ष हो जायेंगे, नये वृक्ष हो जायेंगे। जहाँ बुद्ध पैदा होंगे, वहाँ सैकड़ों नागार्जुन पैदा हो जायेंगे। लेकिन कोई नागार्जुन बुद्ध को पैदा नहीं कर सकता। बुद्ध तो गंगोत्री है, नागार्जुन तो फिर गंगा के रास्ते पर आये हुए एक तीर्थस्थल हैं– प्यारे!  अगर छोड़ना हो तो तीर्थस्थल छोड़े जा सकते हैं, गंगोत्री नहीं छोड़ी जा सकती।

ऐसे में कृष्णमूर्ति भी बुद्ध में समा जाते हैं। कृष्णमूर्ति बुद्ध का नवीनतम संस्करण हैं—नूतनतम्, आज की भाषा में। पर भाषा का ही भेद है। बुद्ध का जो परम सूत्र था— 'अप्प दीपो भव'—कृष्णमूर्ति बस उसकी ही व्याख्या हैं। एक सूत्र की व्याख्या—गहन, गंभीर, अति विस्तीर्ण, अति महत्त्वपूर्ण। स्वयं अपने दीप बनो 'अप्प दीपो भव'— इसकी ही व्याख्या है। यह बुद्ध का अंतिम वचन था, इस पृथ्वी पर। शरीर छोड़ने के पहले यह उन्होंने सार—सूत्र कहा था। जैसे सारे जीवन की संपदा को, सारे जीवन के अनुभव को इस एक छोटे से सूत्र में समाहित कर दिया था।

रामकृष्ण, कृष्ण में सरलता से लीन हो जाते हैं। मीरा, नानक, कबीर में लीन हो जाते है; जैसे कबीर की ही शाखायें हैं। जैसे कबीर में जो इकट्ठा था, वह आधा नानक में प्रगट हुआ है और आधा मीरा में। नानक में कबीर का पुरुष—प्रगट हुआ है। इसलिए सिक्ख धर्म अगर क्षत्रिय का धर्म हो गया, योद्धा का तो आश्चर्य नहीं है। मीरा में कबीर का स्त्रैण रूप प्रगट हुआ है— इसलिए सारा माधुर्य, सारी सुगंध, सारा सुवास, सारा संगीत, मीरा के पैरों में घुँघरु बनकर बजा है। मीरा के इकतारे पर कबीर की नारी गाई हैं; नानक में कबीर का पुरुष बोला है। दोनों कबीर में समाहित हो जाते हैं।

इस तरह मैंने यह सूची बनाई। अब उनकी उत्सुकता बहुत बढ़ गयी थी। उन्होंने कहा और अगर पांच की सूची बनानी पड़ी ? तो मैंने कहा— काम मेरे लिये कठिन होता जायेगा।

मैंने यह सूची उन्हें दी— कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, महावीर और गोरख। ... क्योंकि कबीर को गोरख में लीन किया जा सकता है। गोरख मूल हैं। गोरख को नहीं छोड़ा जा सकता और शंकर तो कृष्ण में सरलता से लीन हो जाते हैं। कृष्ण के ही एक अंग की व्याख्या है, कृष्ण के ही एक अंग का दार्शनिक विवेचन हैं।

तब तो वे बोले : बस, एक बार और.... । अगर चार ही रखते हों?

तो मैंने उन्हें सूची दी— कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, गोरख। क्योंकि महावीर बुद्ध से बहुत भिन्न नहीं है, थोड़े ही भिन्न हैं। जरा—सा ही भेद हैः वह भी अभिव्यक्ति का भेद है। बुद्ध की महिमा में महावीर की महिमा लीन हो सकती है।

वे कहने लगे— बस एक बार और.... । आप तीन व्यक्ति चुनें।

मैंने कहा— अब असंभव है। अब इन चार में से मैं किसी को भी नहीं छोड़

सकूंगा। फिर मैंने उन्हें कहा— जैसे चार दिशाएँ हैं, ऐसे ये चार व्यक्तित्व हैं। जैसे काल और क्षेत्र के चार आयाम हैं, ऐसे ये चार आयाम हैं। जैसे परमात्मा की हमने चार भुजाएँ सोची हैं, ऐसी ये चार भुजाएँ हैं। ऐसे तो एक ही हैं, लेकिन उस एक की चार भुजाएँ हैं। अब इनमें से कुछ छोड़ना तो हाथ काटने जैसा होगा। यह मैं न कर सकूँगा। अभी तक मैं आपकी बात मानकर चलता रहा, संख्या कम करता चला गया, क्योंकि अभी तक जो अलग करना पड़ा, वह वस्त्र था, अब अंग तोड़ने पड़ेंगे। अंग—भंग मैं न कर सकूँगा। ऐसी हिंसा आप न करवायें।

वे कहने लगे— कुछ प्रश्न उठ गये; एक तो यह कि आप महावीर को छोड़ सके, गोरख को नहीं? गोरख को नहीं छोड़ सकता हूँ, क्योंकि गोरख से इस देश में एक नया सूत्रपात हुआ। महावीर से कोई नया सूत्रपात नहीं हुआ। वे अपूर्व पुरुष है; मगर जो सदियों से कहा गया था, उनके पहले जो तेईस जैन तीर्थंकर कह चुके थे, उसकी ही पुनरुक्ति हैं। वे किसी यात्रा का प्रारंभ नहीं है। वे किसी नयी श्रृंखला की पहली कड़ी नहीं है, बल्कि अंतिम कड़ी हैं।

गोरख एक श्रृंखला की पहली कड़ी हैं। उनसे एक नये प्रकार के धर्म का जन्म हुआ, आविर्भाव हुआ। गोरख के बिना न तो कबीर हो सकते हैं, न नानक हो सकते हैं, न दादू, न वाजिद, न फरीद, न मीरा—गोरख के बिना ये कोई भी न हो सकेंगे। इन सबके मौलिक आधार गोरख में है। फिर मंदिर बहुत ऊँचा उठा। मंदिर पर बड़े स्वर्ण—कलश चढ़े...। लेकिन नींव का पत्थर नींव का पत्थर है। और स्वर्ण—कलश दूर से दिखाई पड़ते हैं, लेकिन नींव के पत्थर से ज्यादा मूल्यवान नहीं हो सकते। और नींव के पत्थर किसी को दिखाई नहीं पड़ते, मगर उन्हीं पत्थरों पर टिकी होती है सारी व्यवस्था, सारी भित्तियाँ, सारे शिखर...। शिखरों की पूजा होती है, बुनियाद के पत्थरों को तो लोग भूल ही जाते हैं। ऐसे ही गोरख को भी भूल गये हैं।

लेकिन भारत की सारी संत—परंपरा गोरख की ऋणी है। जैसे पतंजलि के बिना भारत में योग की कोई संभावना न रह जायेगी; जैसे बुद्ध के बिना ध्यान की आधारशिला उखड़ जायेगी, जैसे कृष्ण के बिना प्रेम की अभिव्यक्ति को मार्ग न मिलेगा— ऐसे गोरख के बिना उस परम सत्य को पाने के लिये विधियों की जो तलाश शुरू हुई, साधना की जो व्यवस्था बनी, वह न बन सकेगी। गोरख ने जितना आविष्कार किया, मनुष्य के भीतर अंतर—खोज के लिये, उतना शायद किसी ने भी नहीं किया है। उन्होंने इतनी विधियाँ दीं कि अगर विधियों के हिसाब से सोचा जाये तो गोरख सबसे बड़े आविष्कारक हैं। इतने द्वार तोड़े कि लोग द्वारों में उलझ गये।

इसलिए हमारे पास एक शब्द चल पड़ा है– गोरख को तो लोग भूल गये– गोरखधंधा शब्द चल पड़ा है। उन्होंने इतनी विधियाँ दीं कि लोग उलझ गये कि कौन–सी ठीक, कौन–सी गलत, कौन–सी करें, कौन–सी छोड़ें.... ? उन्होंने इतने मार्ग दिये कि लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, इसलिए गोरखधंधा शब्द बन गया। अब कोई किसी चीज में उलझा हो तो हम कह कहते हैं, क्या गोरखधंधे में उलझे हो।

गोरख के पास अपूर्व व्यक्तित्व था, जैसे आइंस्टीन के पास व्यक्तित्व था। जगत के सत्य को खोजने के लिये जो पैने से पैने उपाय अलबर्ट आइंस्टीन दे गया, उसके पहले किसी ने भी नहीं दिये थे। हाँ, अब उनका विकास हो सकेगा, अब उन पर और धार रखी जा सकेगी। मगर जो प्रथम काम था वह आइंस्टीन ने किया। जो पीछे आयेंगे वे नंबर दो होंगे। वे अब प्रथम नहीं हो सकते। राह पहली तो आइंस्टीन ने तोड़ी, अब इस राह को पक्का करने वाले, मजबूत करने वाले, मील का पत्थर लगाने वाले, सुंदर बनाने वाले, सुगम बनाने वाले, बहुत लोग आयेंगे। मगर आइंस्टीन की जगह अब कोई भी नहीं ले सकता। ऐसी ही घटना अंतरजगत में गोरख के साथ घटी।

लेकिन गोरख को लोग भूल क्यों गये? मील के पत्थर याद रह जाते हैं, राह तोड़ने वाले भूल जाते हैं। राह को सजाने वाले याद रह जाते हैं, राह को पहली बार तोड़ने वाले भूल जाते हैं। भूल जाते हैं इसलिए कि जो पीछे आते हैं उनको सुविधा होती है संवारने की। जो पहले आता है, वह तो अनगढ़ होता है, कच्चा होता है। गोरख जैसे खदान से निकले हीरे हैं। अगर गोरख और कबीर बैठे हों तो तुम कबीर से प्रभावित होओगे, गोरख से नहीं। क्योंकि गोरख तो खदान से निकले हीरे हैं; और कबीर– जिन पर जौहरियों ने खूब मेहनत की, जिन पर खूब छेनी चली है, जिनको खूब निखार दिया गया है।

यह तो तुम्हें पता है न कि कोहिनूर हीरा जब पहली दफा मिला तो जिस आदमी को मिला था, उसे पता भी नहीं था कि कोहिनूर है। उसने बच्चों को खेलने के लिये दे दिया था, यह समझकर कि कोई रंगीन पत्थर है। गरीब आदमी था। उसके खेत से बहती हुई एक छोटी–सी नदी की धार में कोहिनूर मिला था। महीनों उसके घर पड़ा रहा, कोहिनूर बच्चे खेलते रहे, फेंकते रहे इस कोने से उस कोने, आँगन में पड़ा रहा...। तुम पहचान न पाते कोहिनूर को। कोहिनूर का मूल वजन तीन गुना था आज के कोहिनूर से। फिर उस पर धार रखी गई, निखार किये गये, काटे गये, उसके पहलू उभारे गये। आज सिर्फ एक तिहाई वजन बचा है, लेकिन दाम करोड़ों गुना ज्यादा हो गये। वजन कम होता गया, दाम बढ़ते गये, क्योंकि निखार आता गया– और, और निखार....।

कबीर और गोरख के साथ बैठे हों, तब तुम गोरख को शायद पहचानो ही न क्योंकि गोरख तो अभी गोलकोंडा की खदान से निकले कोहिनूर हीरे हैं। कबीर पर बड़ी धार रखी जा चुकी, जौहरी मेहनत कर चुके। .... कबीर तुम्हें पहचान में आ जायेंगे। इसलिये गोरख का नाम भूल गया। बुनियाद के पत्थर भूल जाते हैं।

गोरख के वचन सुनकर तुम चौंकोगे। थोड़ी धार रखनी पड़ेगी; अनगढ़ हैं। वहीं धार रखने का काम मैं यहाँ कर रहा हूँ। जरा तुम्हें पहचान आने लगेगी, तुम चमत्कृत होओगे। जो भी सार्थक है, गोरख ने कह दिया है। जो भी मूल्यवान है, कह दिया है।

तो मैंने सुमित्रानंदन पंत को कहा कि गोरख को न छोड़ सकूँगा। और इसलिए चार से और अब संख्या कम नहीं की जा सकती। उन्होंने सोचा होगा स्वभावतः कि मैं गोरख को छोडूँगा, महावीर को बचाऊँगा। महावीर कोहिनूर हैं, अभी कच्चे हीरे नहीं खदान से निकले। एक पूरी परंपरा है तेईस तीर्थंकरों की, हजारों साल की, जिसमें ध ाार रखी गई है, पैने किये गये हैं– खूब समुज्ज्वल हो गये हैं। तुम देखते हो, चौबीसवें तीर्थंकर हैं महावीर; बाकी तेईस के नाम लोगों को भूल गये। जो जैन नहीं हैं वे तो तेईस के नाम गिना ही न सकेंगे। और जो जैन हैं वे भी तेईस का नाम क्रमबद्ध रूप से न गिना सकेंगे, उनसे भी भूल–चूक हो जायेगी। महावीर तो अंतिम हैं–मंदिर का कलश। मंदिर के कलश याद रह जाते है। फिर उनकी चर्चा होती रहती है। बुनियाद के पत्थरों की कौन चर्चा करता है। वह बुनियाद गोरख हैं।

आज हम बुनियाद के एक पत्थर की बात शुरू करते हैं। इस पर पूरा भवन खड़ा है, भारत के संत–साहित्य का। इस एक व्यक्ति पर सब दारोमदार है। इसने सब कह दिया है जो धीरे–धीरे बड़ा रंगीन हो जायेगा, बड़ा सुंदर हो जायेगा; जिस पर लोग सदियों तक साधना करेंगे, ध्यान करेंगे; जिसके द्वारा न मालूम कितने सिद्धपुरुष पैदा होंगे।

*मरौ वे जोगी मरौ।*
*ऐसा अद्भुत वचन हैं ! कहते हैं : मर जाओ, मिट जाओ, बिलकुल मिट जाओ।*
*मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन ही मीठा।*

क्योंकि मृत्यु से ज्यादा मीठी और कोई चीज इस जगत में नहीं है।

*तिस मरणी मरौ....।*
*और ऐसी मृत्यु मरो,*
*जिस मरणी गोरष मरि दीठा।*

जिस तरह से मरकर गोरख को दर्शन उपलब्ध हुआ, ऐसे ही तुम भी मर जाओ और दर्शन को उपलब्ध हो जाओ।

एक मृत्यु है जिससे हम परिचित हैं; जिसमें देह मरती है, मगर हमारा अहंकार और हमारा मन जीवित रह जाता है। वही अहंकार नये गर्भ लेता है। वही अहंकार नयी वासनाओं से पीड़ित हुआ फिर यात्रा पर निकल जाता है। एक देह से छूटा नहीं कि दूसरी देह के लिये आतुर हो जाता है। तो यह मृत्यु तो वास्तविक मृत्यु नहीं है।

मैंने सुना है, एक आदमी ने गोरख से कहा कि मैं आत्महत्या करने की सोच रहा हूँ। गोरख ने कहा— जाओ और करो, मैं तुमसे कहता हूँ तुम करके बहुत चौंकोगे।

उस आदमी ने कहा— मतलब? मैं आया था कि आप समझायेंगे कि मत करो। मैं और साधुओं के पास भी गया। सभी ने समझाया कि भाई, ऐसा मत करो, आत्महत्या बड़ा पाप है।

गोरख ने कहा— पागल हुए हो, आत्महत्या कोई कर ही नहीं सकता। कोई मर ही नहीं सकता। मरना संभव नहीं है। मैं तुमसे कहे देता हूँ.... करो, करके बहुत चौंकोगे। करके पाओगे कि अरे, देह तो छूट गयी, मैं तो वैसा का वैसा हूँ। और अगर असली आत्महत्या करनी हो तो फिर मेरे पास रुक जाओ। छोटा—मोटा खेल करना हो तो तुम्हारी मर्जी—कूद जाओ किसी पहाड़ी से लगा लो गर्दन में फाँसी। असली मरना हो तो रुक जाओ मेरे पास। मैं तुम्हें कल कला दूँगा जिससे महामृत्यु घटती है, फिर दुबारा आना न हो सकेगा। लेकिन वह महामृत्यु भी सिर्फ हमें महामृत्यु मालूम होती है, इसलिए उसको मीठा कह रहे हैं।

*मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन ही मीठा।*
*तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा।।*

ऐसी मृत्यु तुम्हें सिखाता हूँ, गोरख कहते हैं, जिस मृत्यु से गुजर कर मैं जगा। सोने की मृत्यु हुई हैं, मेरी नहीं। अहंकार मरा, मैं नहीं। द्वैत मरा, मैं नहीं। द्वैत मरा तो अद्वैत का जन्म हुआ। समय मरा तो शाश्वतता मिली। वह जो क्षुद्र—सीमित जीवन था, टूटा, तो बूंद सागर हो गयी। हाँ, निश्चित ही जब बूंद सागर में गिरती है तो एक अर्थ में मर जाती है, बूंद की तरह मर जाती है। और एक अर्थ में पहली बार महाजीवन उपलब्ध होता है—सागर की भांति जीती है।

रहीम का वचन हैं—

*बिंदु भी सिंधु समान, को अचरज कासों कहे,*
*हेरन हार हैरान, रहिमन अपने–आपने !*

रहीम कहते हैं– बिंदु भी सिंधु के समान है फिर अरचज कासों कहे । किससे कहे, कौन मानेगा ! बात इतनी विस्मयकारी है, कौन स्वीकार करेगा कि बिंदु और सिंधु के समान है ! कि बूंद सागर है! कि अणु में परमात्मा विराजन है ! कि क्षुद्र यहाँ कुछ भी नहीं है ! कि सभी में विराट समाविष्ट है !

*बिंदु भी सिंधु समान, को अचरज कासों कहें।*

ऐसे अचरज की बात है, किसी से कहो, कोई मानता नहीं। अचरज की बात ऐसी है, जब पहली दफा खुद भी जाना था तो मानने का मन न हुआ था।

*हेरनहार हैरान ..... !*

जब पहली दफा खुद देखा था तो मैं खुद ही हैरान रह गया था।

*हेरनहार हैरान, रहिमन अपने आपने।*

देखता था खुद को और हैरान होता था। क्योंकि मैंने तो सदा यही जाना था कि क्षुद्र हूँ। लेकिन स्वयं का विराट तभी अनुभव में आता है, जब क्षुद्र की सीमाएँ कोई तोड़ देता है; क्षुद्र का अतिक्रमण करता है जब कोई।

अहंकारी होकर तुमने कुछ कमाया नहीं, गंवाया है। अहंकार निर्मित करके तुमने कुछ पाया नहीं, सब खोया है, बूंद रह गये हो, बड़ी छोटी बूंद रह गये हो। जितने अकड़ते हो उतने छोटे होते जाते हो। अकड़ना और–और अहंकार को मजबूत करता है। जितने गलोगे उतने बड़े हो जाओगे। जितने पिघलोगे उतने बड़े हो जाओगे। अगर बिल्कुल पिघल जाओ तो जाने सारा आकाश तुम्हारा है। गिरो सागर में तो तुम सागर जो जाओ। उठो आकाश में वाष्पीभूत होकर, तो तुम आकाश हो जाओ। तुम्हारा होना और ईश्वर का होना एक ही है।

*बिंदु भी सिंधु समान को अचरज कासौ है।*

गोरख के पंथ का सार यह पद है। जिसका उल्लेख पिछले पृष्ठों में गोरखवाणी के तहत किया गया है। ओशो भी इस पद को उद्धृत करते है।

*हबकि न चलिबा, ठबकि न चलिबा, धीरे धरिवा पाँव।*

तथा

*भरया ये थीरं, झलझलंति आधा।*
*सिद्धे सिद्ध मिल्यारे अवधू बोल्या अहलाधा।*

जो भरा हुआ वह वह थिर है। झलकता नहीं है।
तथा

*गरब करिबा, म सहजे रहिबा'*
सहज रहना और अहंकार नहीं करना।

गोरख का यही तो दर्शन है। सहजता की परिभाषा बहुत बड़ी है। सहज अर्थात् समस्त कामनाओं से मुक्त होकर, निर्भय होकर निर्बाध होकर रहना। यही नाथ पंथ का दिव्य और आधार दर्शन है। इसे लोक ने सहज मन से स्वीकार किया। स्वीकार ही नहीं आत्मसात भी किया। ओशो फिर एक स्थान पर कहते हैं–

कृष्ण को पहचानना कठिन है। सब उन्हें अपने–अपने मान से मानते हैं। जितना मान सकते हैं उतना मान लेते हैं, बाकी छोड़ देते हैं। अड़चन यही है। महावीर तुम्हें साफ अपने से विपरीत जाते मालूम पड़ते हैं। तुम सम्मान दे सकते हो, क्योंकि तुम्हें अपने लोभ, काम और क्रोध तथा लिप्सा का ज्ञान है और ये उसे छोड़कर जा रहे है। विशिष्ट हैं। लेकिन कृष्ण? ये वहीं खड़े हैं, इसी संसार में तुम्हारे आसपास। जहाँ तुम खड़े हो। कृष्ण को पहचानने के लिये बड़ी गहरी आँख चाहिए। महावीर को पहचानना अंधे के भी बस की बात है, कोई अड़चन नहीं है। अंधा भी पहचान लेगा कि ठीक, सब छोड़कर चले गये। लेकिन कृष्ण को पहचानने के लिये तो जब तक भीतर की आँख न खुली हो, तब तक पहचानना मुश्किल है। तो जब तक भीतर देखने की क्षमता न हो, तब तक तुम कृष्ण को न समझ पाओगे।

कृष्ण वाममार्गी है। इसलिए जैनों ने कृष्ण को नर्क में डाला है। अपने पुराणों में नर्क में डाल दिया है। वाममार्गी हैं। और क्या वाममार्ग होगा? जीवन का सहज स्वीकार, उत्साहपूर्वक स्वीकार, स्वागतपूर्ण स्वीकार... ! जीवन को उसकी समग्र विद्या में जीने की क्षमता, साहस... । जीवन में कुछ भी बुरा नहीं है। अगरे कांटे भी हैं तो फूल की रक्षा के लिये तत्पर हैं, इसलिए हैं। जीवन में जो भी है सुंदर है। और अगर किसी चीज का सौंदर्य हमें दिखाई नहीं पड़ा है तो हमारी कहीं भूल–चूक हो रही है। परमात्मा असुंदर बना कैसे सकता है? परमात्मा ही प्रगट हुआ है सारे रूपों में। काम में भी राम ही छिपा है। इतना साहस बहुत कम लोग जुटा पाते हैं। इतनी दृष्टि भी नहीं होती।

इसलिए मंत्र–तंत्र, वाममार्ग, अघोरपंथ, नाथपंथ जैसे नामों से लोग डरने लगे। इसलिए, क्योंकि ये तुम्हारे व्यवस्थित रुढ़ि को छिन्न–भिन्न कर देते हैं। ये प्यारे नाम गालियाँ बन गये। किसी को वाममार्गी लोग कह देते हैं, बस खत्म हो गया मामला। फलां आदमी वाममार्गी है– मतलब तुमने उसका खंडन कर दिया, अब और खंडन करने की जरूरत नहीं है। अब वह क्या कहता है, क्यों कहता है, इस तर्क और विस्तार में जाने का प्रयोजन नहीं है। वाममार्ग का लेबल लगा दिया, अब वह आदमी खत्म हो गया। अघोरपंथ–अघोर जैसा प्यारा शब्द गाली बन गया। किसी को अघोरी कह दो, वह लड़ने को तैयार हो जाता है। लोग अघोरी कहते ही है किसी को भी, जब उनको गाली देनी होती है।

अघोर शब्द का अर्थ समझते हो? अघोर का अर्थ होता है – सरल । किसी को 'घोरी' कहो तो गाली हो सकती है। घोर का अर्थ होता है– जटिल। कहते है न घोर–घमासन। खूब भयंकर युद्ध हुआ तो उसको कहते है घोर–घमासान–जटिल, उलझा हुआ, तो घोर....। अघोर का अर्थ होता है सरल, बच्चे जैसा निर्दोष ! लेकिन लोग 'अघोरी' गाली देना चाहते तब कहते हैं। लोग कहते है मोरारजी देसाई– अघोरी, क्योंकि जीवन–जल पीते हैं– अघोरी ! उनका मतलब यह है कि गाली दे रहे हैं वे । अघोर तो सिर्फ थोड़े–से बुद्धों के लिये उपयोग में लाया जा सकता है। गौतम बुद्ध–अघोरी, कृष्ण–अघोरी, क्राइस्ट–अघोरी, लाओत्से–अघोरी! ऐसे लोगों के लिये ही सिर्फ उपयोग में लाया जा सकता है। गोरख–अघोरी। सरल, निर्दोष, सीधे–सादे...। इतने सरल कि गणित जीवन में है ही नहीं। हिसाब–किताब लगाने का भाव ही चला गया है।

तुम तो जिसको धार्मिक कहते हो, वह भी हिसाब–किताब लगाता है। वह देखता है कि इतने उपवास करुँ तो स्वर्ग मिलेगा, इतने व्रत रखूं तो स्वर्ग मिलेगा, इतना दान करुँ तो स्वर्ग मिलेगा। यह सब हिसाब–किताब है। इस दान में भी बाजार है। इस दान में भी व्यवसाय है, सौदा है। इस पुण्य में भी छिपा हुआ पाप है। अघोरी का अर्थ होता है– सरल, सीधा– जिसके जीवन से हिसाब–किताब समाप्त ही हो गया। जो बच्चों की भाँति जीता है। यह तो परम अवस्था है, परमहंस अवस्था है– अघोर। मगर ये गालियाँ बन गयीं दुर्भाग्य से।

नाथपंथ गोरखनाथ और उनके गुरु मच्छिंदरनाथ के कारण तंत्र की यह शाखा नाथपंथ कहलाने लगी। भाव बड़ा प्यारा है। नाथ का अर्थ होता है– मालिक, जिसको सूफी कहते है– 'या मालिक'। सब उसका है, मालिक का है। हम भी मालिक के,

संसार भी उसका है, सब उसका है। जैसी उसकी मर्जी वैसे जियेंगे। जैसा जिलायेगा वैसे जीयेंगे। हम अपने संकल्प को आरोपित न करेंगे। हम चेष्टा से न जीयेंगे। हम ऐसे बहेंगे जैसे कोई नदी की धार में बह जाये, हम तरेंगे नहीं। यह भाव है। उस मालिक के रहते हम अपना संकल्प क्यों बीच में लायें? हमारा संकल्प आया कि अहंकार आया, अहंकार आया कि हम भटके। तो हम तो बिना अहंकार के जीयेंगे, उसकी जैसी मर्जी...।

जैसे सूखा पत्ता हवा में उड़ता है, पश्चिम जाये कि पूरब, दक्षिण जाये कि उत्तर, उसे कोई चिंता नहीं; हवा जहाँ ले जाये। लड़ता नहीं, प्रतिरोध नहीं करता, संघर्ष नहीं करता कि मैं तो पश्चिम जाऊँगा कि मुझे पूरब नहीं जाना, मुझे क्यों पूरब लिये जा रहे हो? नहीं, पत्ते की क्या मर्जी ? ऐसा जो हो जाये तो समझना कि नाथपंथी। ऐसे ही रहे गोरख। हम सहज मर्जी से रहे। इस सरलता से रहे। मगर लोग अहंकार से जीते हैं। इस जगत में अधिकतम लोगों के जीवन की भाषा अहंकार की भाषा है। स्वभावतः इतने सरल लोग उन्हें बर्दाश्त नहीं होंगे। उन्हें तो लगेगा, बड़ा खतरा पैदा हो गया। इतनी सरलता से लोग जीने लगेंगे, तो फिर नीति क्या होगा? अनीति ही अनीति फैल जायेगी, जैसे अभी नीति है।

ये बड़े मजे की बातें हैं। लोग इस तरह की बातें करते हैं जैसे कि अभी नीति है, फिर अनीति फैल जायेगी। कहाँ है नीति? कैसी नीति? नीति के नाम पर पाखंड है। थोथे मुखौटे लगाये लोग बैठे हैं, झूठे मुखौटे लगाये लोग बैठे हैं। नीति कहाँ है? लेकिन लोग समझते हैं कि अगर सब लोग सरल होने लगे, सहज जीने लगे, स्वाभाविक होने लगे तो बेहतर होगा।

बात उल्टी ही है। लोग संकल्प से जी–जी कर अनैतिक हो गये हैं। मनुष्य से ज्यादा अनैतिक और कौन है इस पृथ्वी पर ? मनुष्य से ज्यादा हिंसक और कौन है इस पृथ्वी पर? मनुष्य से ज्यादा संघातक और कौन है इस पृथ्वी पर? पशु–पक्षी कम–से–कम अपनी जाति के लोगों को मारकर नहीं खाते। कोई सिंह–सिंह को मारकर नहीं खाता। कोई बाज–बाज पर नहीं हमला करता। आदमी अकेला पशु है इस पूरी पृथ्वी पर, जो सवयं की जाति में ही मारकाट करता है, और थोड़ी बहुत नहीं, लाखों की, करोड़ों की ! हत्या करने में ऐसा रस ! और बड़ा मजा है, इसको भी नैतिक जामा पहना दिया जाता है। इसको कहते हैं जिहाद, धर्मयुद्ध हो रहा है। धर्मयुद्ध हो रहा है तो फिर मारो। फिर कोई हर्जा नहीं, जितने मारे उतना ही लाभ है। जितने मारे उतना ही स्वर्ग निश्चित है।

लोग जिहाद कर रहे हैं, धर्मयुद्ध कर रहे हैं सदियों से; एक–दूसरे को काट रहे हैं परमात्मा के नाम पर। काटना है उन्हें, नाम कोई भी हो। कभी राजनीतिक के नाम पर काटते हैं, कभी धर्म के नाम पर काटते हैं, कभी सिद्धांत के नाम पर, कभी शास्त्र के नाम पर। ये सब बहाने हैं, काटना लक्ष्य है। बिना काटे मन नहीं मानता। यह कैसा मनुष्य हमने पैदा किया है? यह कैसा रुग्णचित्त मनुष्य हमने पैदा किया है।

## गोरखवाणी का दर्शन

गोरख की वाणी को सारंगी पर उन्हीं के नाथ लोक गायक बड़ी श्रद्धा से गाते हैं। गली–गली गाते हैं। रात जागरण भजनों में भी उनकी वाणी बड़ी श्रद्धा से तथा तन्मयता से गाई जाती है। लोक गायक गाता है। अपना अभीष्ट लेकर दूसरे द्वार पर चला जाता है। मैंने अनेक बार गोरखवाणी सुनी है। उनके रातजगों के भजन सुने हैं। रात–रातभर जागकर भजनों का आनंद लिया। उनके भाव भी समझने का प्रयत्न किया है। दार्शनिक ओशो ने जो कहा है– कबीर, महावीर, मीरा ये सब किसी न किसी स्तर पर गोरख के भीतर से प्रकट है। यदि हम गोरखपंथियों के मिथक स्वीकार करें, तब तो हम कहेंगे कि बुद्ध और गोरख एक ही दर्शन का प्रकटीकरण करते दिखते हैं।

न तो लोक गायक जानता है गोरख क्या कहना चाहते न गोरख पंथी अन्य अनुयाई ही यह जानते हैं। केवल आस्था पर आकाश टिका है। उसी आस्था के कारण गोरख स्वीकार हुए। उनका पंथ स्वीकार हुआ है। आज भी कोई अन्तर मैं नहीं देखता हूँ। तब भी क्या गोरख को समझ पाया ?

ओशो ने गोरख को जितना जाना, समझा और व्यक्त किया है लगता है। गोरख ने ओशों को जितना प्रभावित किया है वैसा कबीर और बुद्ध ने भी नहीं किया। यहाँ जिन दो गोरखवाणी के पदों का मैं हवाला दे रहा हूँ। ये पद सभी गोरखवाणियों में छपे हैं। ग्रंथों में गोरखवाणी का छपा होना ठीक वैसा ही है, जैसा किसी तिजोरी में रखे नोटों का बंडल। रुपये वही उपयोगी होते हैं जो चलन में हों। यही वाणी अधिकतर गायक गाते भी हैं। किन्तु सब स्वर और वाद्य में विलीन हो जाता है।

मैंने इन पदों को कई बार सुना। संग्रह में लिया। उनका अर्थ समझा। तब लगा कि इनमें निहित गोरख का संदेश और उपदेश नाथ पंथ का प्राण है। यदि इन्हें ठीक–ठाक से लोक तक व्यक्त किया जाए, तब निश्चित रूप से नाथपंथ का महत्त्व सर्वप्रिय एवं सर्वग्राह्य हो जाएगा। यही हुआ भी। नाथ पंथियों ने वाणी को तो जीवित रखा उसका संदेश लोक तक नहीं पहुँचा पाए।

मैंने उसका अर्थ और भावार्थ कर अपने इस ग्रंथ में लेना चाहा। जब ओशो में देखा—पढ़ा, समझा तब लगा मेरे लिखे पृष्ठ व्यर्थ हैं। जैसा ओशो ने अभिव्यक्त किया है, वैसा मैं नहीं कर सकता। ओशो के समक्ष न तो मेरी औकात न हैसियत न हिम्मत। इसीलिए मैं ओशो का विचार अंश यहाँ देना उचित मान रहा हूँ।

**गोरखवाणी**

*घटि घटि गोरख बाही क्यारी, जो निपजै सो होइ हमारी।*
*घटि घटि गोरख कहै कहाणी, कांचै भांडै रहै न पाणी।।*
*घटि घटि गोरख फिरै निरुता, को घट जागे को घट सूता।*
*घटि घटि गोरख घटि घटि मीन, आपा परचै गुरमुषि चीन्ह।।*
*सुणि गुणवंता सुणि बुधिवंता, अनंत सिंधा की वाणी।*
*सीस नवानत सदगुरु मिलिया, जागत रैन बिहाणी।।*
*उनमनि रहिबा भेद न कहिबा, पियबा नीझर पाणी।*
*लंका छाड़ि पलंका जाइबा, तब गुरुमुष लेबा वाणी।।*
*थंभ बिहूँणी गगन रचीलै, तेल बिहूँणी बाती।*
*गुरु गोरख के वचन पतिआया, तब द्यौंस नहीं तहां राती।।*
*उदय न अस्त राति न दिवस, सबरे सचराचर भाव न भिन्न।*
*सोई निरंजन डाल न मूल, सब व्यापीक सुषम न अस्थूल।।*
*कहा बुझै अवधू राई गगन न धरणी, चंद न सूर दिवस नहीं रैनी।*
*ओंकार निराकर सूछिम न अस्थूल, पेड़ न पत्र फलै नहीं फूल।।*
*डाल न मूल न वृष न बेला, साषी न सबद गुरु नहीं चेला।*
*ग्याने न ध्याने जोगे न जुक्ता, पापे न पुने मोषे न मुक्ता।।*
*उपजै ज विनसै आवै न जाई, जुरा न मरण बांके बाप न माई।*
*भणत गोरखनाथ मछींद्र नां दासां, भाव भगति और आस न पासा।।*

यह समय जो गोरख के साथ बीता, तीर्थयात्रा थी। इस समय को तुम जिंदगी में गिनती कर सकते हो। सारे दिन जिंदगी में नहीं गिने जाते, नहीं गिने जा सकते हैं। वे ही दिन जो प्रभु—स्मरण में बीतें, ये ही दिन जो प्रभु के गीत से पगे हों—बस उतने ही दिन जीवन में गिने जा सकते हैं। इन दिनों को तुम जिंदगी में गिन लेना। ये बहुमूल्य दिन थे।

गोरख के अमृत शब्द सुन भी लिये हैं, कान में पड़ भी गये, तो भी बहुत कुछ हो जायेगा। वे बीज बन जायेंगे, ठीक समय पर अंकुरित होने लगेंगे।

*कटा है नासेहे–मुसफिक्कस से गुफ्तगू में जो वक्त,*
*उसे तू जीस्त की मीयादा में शुमार न कर।*

कवि ने ठीक कहा है कि पंडित–पुरोहितों के साथ धर्म–चर्चा में जो समय गया है। हे प्रभु! उसे तू मेरी जिंदगी में शुमार मत करना, वह व्यर्थ ही गया है।

लेकिन गोरख पंडित नहीं है, ज्ञानी हैं। गोरख जो कहे हैं जान कर कहे हैं। उनके साथ गुफ्तगू में जो समय गया, उसे तुम जिंदगी में शुमार कर लेना। वे दिन चमकते रहेंगे। उन दिनों में एक अलग प्रकाश और एक अलग संगीत आ गया है।

शब्द तो गोरख के सीधे–साफ हैं। सैकड़ों साल के बाद भी उनकी चोट जीवंत है। जो बिलकुल मुर्दा नहीं है, उनके हृदय में अब भी रोमांच हो आयेगा। जो मर ही नहीं गये हैं, संवेदनहीन ही नहीं हो गये हैं, उनकी हृदय–वीणा के तार छिड़ जायेंगे।

*घटि घटि गोरख बाही क्यारी।*

एक–एक हृदय में उसी की बागिया है। बगिया, प्रतीक प्यारा है। मनुष्य जो भी बनाता है वह बन तो जाता है, लेकिन बढ़ता नहीं। कितने आकाश को छूने वाले भवन हम बनाते हैं, बन तो जाते हैं, मगर मुर्दा होते हैं, बढ़ते नहीं। और जहाँ बढ़ाव नहीं, वहाँ जीवन नहीं। इसलिए आदमी जितनी चीजें बनाते हैं, सब मुर्दा होती हैं। परमात्मा की बनायी सब चीजें बढ़ती हैं। उनमें गति होती है, वे गत्यात्मक होती हैं। बीज कैसा लगता है, पत्थर जैसा। लेकिन जल्दी ही उसमें अंकुर आ जाता है। जल्दी ही पत्ते निकल आते हैं। जल्दी ही शाखाएँ... जल्दी ही बड़ा वृक्ष खड़ा हो जाता है। कल्पना भी नहीं कर सकते थे उस बीज में इस वृक्ष की। इतना बड़ा वृक्ष उसमें छिपा होगा, इसे सपने में भी नहीं सोच सकते थे। छिपा था, सिर्फ प्रगट होने की प्रतीक्षा करता था।

ऐसा ही मनुष्य है। उसके भीतर विराट छिपा है, सिर्फ वसंत की प्रतीक्षा है। और जिसे सत्संग मिल गया, उसका वसंत आ गया। जिसे सद्गुरु मिल गया, उसका समय आ गया, उसकी घड़ी आ गयी; बीज के टूटने का क्षण आ गया। सद्गुरु की भूमि में ही, सत्संग के वसंत में ही, तुम अंकुरित हो सकोगे।

बहुत अभागे हैं वे लोग जो बीज की भाँति ही जीते और बीज की भाँति मर जाते हैं। क्योंकि उन्हें पता ही नहीं चल पाता कि कितनी हरियाली उनमें छिपी थी; कितना जीवन वे अपने भीतर छिपाए बैठे थे; कितने सुर्ख फूल उनके भीतर थे। कितनी शाखाएँ निकलतीं और आकाश में फैलतीं, और बादलों से गुफ्तगू होती और चाँद–तारों से

मुलाकात होती और फूल खिलते और गंध बिखरती और न मालूम कितने यात्री उनके नीचे विश्राम करते और न मालूम कितने पक्षी उन शाखाओं में नीड़ बनाते। बीज को तोड़ोगे तो यह कुछ भी न पाओगे। बीज को तोड़ोगे तो एक पत्ता भी न मिलेगा। बीज की भी टूटने की समायोजना करनी होती है।

आदमी को ऐसा ही तोड़कर देखोगे, जैसा विज्ञान देखता है, तो आत्मा मिलती ही नहीं। यह तुमने बीज को तोड़ लिया। उठाया पत्थर् और बीज को चकनाचूर कर दिया। अब तुम पूछते हो कहाँ इसमें पत्ते और कहाँ हैं फूल, और कहाँ है गंध, कहाँ है हरियाली। कहाँ हैं वे शाखाएँ जिनकी बातें की जाती थीं? कुछ भी न मिलेगा। गलत ढंग से तोड़ दिया बीज। बीज तो जमीन में गिरकर टूटना चाहिए। बीज तो अपने से टूटना चाहिए, किसी के द्वारा तोड़ा नहीं जाना चाहिए। उसी लीनता से वृक्ष उठेगा, जगेगा; जो सोया पड़ा था वह प्रगट होगा। ऐसे ही मनुष्य है।

अगर वैज्ञानिक की जांच–पड़ताल आदमी के सम्बन्ध में होगी तो न आत्मा मिलेगी, न परमात्मा मिलेगा; न कोई ध्यान, न कोई प्रेम, नहीं कोई फूल, नहीं कोई गंध, नहीं कोई संगीत, कुछ भी न मिलेगा। यह तो ऐसा ही है जैसे कोई वीणा को तोड़ ले और सोचे कि वीणा को तोड़ कर संगीत को पा लेगा। भरा होगा संगीत वीणा में....। भरा है, मगर वीणा तोड़कर नहीं मिलता। जगाना पड़ता है; सोया है, उठाना पड़ता है; पुकारना पड़ता है। किन्हीं कलाकार की अंगुलियों का जादू चाहिए– जो सोए को जगा दे, जो छिपे को बाहर बुला ले, जो घूँघट उठा दे।

*घटि घटि गोरख बाही क्यारी।*

गोरख कहते हैं– एक–एक हृदय में, एक–एक घट में उसकी बगिया तैयार होने के लिये मौजूद है, छिपी है। एक पूरा उपवन बन सकते हो तुम। मगर सम्यक ऋतु चाहिए। सम्यक भूमि चाहिए। अनुकूल वातावरण चाहिए। इसी अनुकूल वातावरण को पैदा करने के लिये सदियों–सदियों में बार–बार सद्गुरुओं ने सत्संग निर्मित किये हैं। बुद्ध के पास संघ बना– वह सत्संग था। उसमें हजारों बीज टूटे और वृक्ष बने। गोरख के पास भी सत्संग बना। ये उन्हीं के कहे गये वचन हैं।

मैं तुम्हें संन्यासी कहता हूँ, गोरख अपने संन्यासियों को अवधूत कहते थे। ये अवधूतों को संबोधित वचन हैं– जो टूटने को राजी थे, जो मरने को राजी थे, जो मिटने को राजी थे।

*अरे, सूदो–जियां देखा नहीं जाता मुहब्बत में*
*यह सौदा और सौदा है यह दुनिया और दुनिया है*

लाभ–हानि नहीं देखी जाती है प्रीति में।

लाभ–हानि का जो विचार करता है वह तो प्रेम से वंचित ही रह जाता है। और सद्‌गुरु के साथ होना तो प्रेम की परम घटना है। सत्संग में डूबना तो प्रेम की चरम परिणति है।

यह ऐसा सौदा है जिसमें हारने से जीत होती है; जिसमें खोने से पाना होता है। और जो लोग ऐसी दुनिया में प्रवेश कर जाते है और ऐसा सौदा करने की हिम्मत कर लेते हैं, उनके भीतर बीज टूटते हैं। अनंत–अनंत रंगों में उनके भीतर परमात्मा की अभिव्यक्ति होती है। ये क्यारियाँ बन जाते हैं। वे वसंत में प्रगट हुए उपवन बन जाते हैं।

लेकिन खयाल रखना, जितना प्रगट होगा वही तुम्हारा हो सकेगा।

*जो निपजै... ।*

अभी कुछ प्रगट नहीं हुआ है। अभी तुम सिर्फ बीज मात्र हो। इसलिए अभी तुम्हारे हाथ में कुछ नहीं, सिर्फ संभावना है। संभावना का वास्तविक करना होगा।

*जो निपजै सो होइ हमारी।*

उतना ही होगा तुम्हार जितना प्रगट हो जायेगा। इस बात को खूब ध्यान से रख लेना, सम्हाल लेना; यह बड़ी बहुमुल्य बात है।

*जो निपजै सो होइ हमारी।*

उतना ही है तुम्हारा, जितना तुम अपने भीतर प्रगट कर लोगे। वही गीत तुम्हारा है जो तुमने गाया। वही संगीत तुम्हारा है जो तुमने वीणा में जगा लिया। वही फूल तुम्हारा जो प्रगट हुए हैं, और जिन्होंने हवा में गंध बिखेरी। अप्रगट तुम्हारा नहीं है। अप्रगट पर तुम्हारा क्या बस ? छिपा तुम्हारा नहीं हैं। घूँघट के पट खोल। वह घूँघट उठे, तो जो चेहरा दिखाई पड़े, वही तुम्हारा है। और बहुत कुछ छिपा है, अनंत छिपा है। तुम चुकता न कर पाओगे, इतना छिपा है।

कभी तुमने सोचा है, एक छोटा–सा बीज सारी पृथ्वी को हरियाली से भर सकता है। उसकी अनंतता तुमने देखी, एक छोटे–से बीज की अनंतता ? बिंदु में छिपा सागर

देखा ? एक छोटा—सा बीज, वैज्ञानिक कहते हैं, सारी पृथ्वी को हरियाली से भर सकता है। एक बीज से हजार बीज होंगे, हजारों बीजों से करोड़ों बीज होंगे, करोड़ों बीजों से अरबों बीज होंगे। एक बीज भर जमीन पर आ जाये, तो सारी पृथ्वी फिर समय की ही बात है सारी पृथ्वी हरी हो जायेगी।

*घटि घटि गोरख कहै कहाणी, कांचै भांडै रहै न पाणी।*

गोरख कहते हैं। मैं तो पुकारता हूँ, मैं तो बरस उठता हूँ। मगर जो कच्चे घड़े हैं, उनमें पानी टिकता नहीं। वे तो उल्टे नाराज हो जाते हैं। कच्चा घड़ा तो नाराज हो ही जायेगा। उसकी तो जिंदगी खराब हो गयी। उस पर तो वर्षा क्या हो गयी, वह तो मिट गया। वर्षा सौभाग्य नहीं बनी, दुर्भाग्य हो गयी। कच्चा घड़ा तो वर्षा से डरेगा। लेकिन जो घड़ा वर्षा से डरेगा, वह भरेगा कैसे? कच्चा घड़ा कभी नहीं भर पायेगा, खाली का खाली रहा आयेगा। गरक हो जायेगा, गल जाएगा।

इसलिए तो अधिक लोगों की जिंदगी अर्थहीन है— रिक्त, खाली, उसमें कोई रसधार नहीं बहती ऐसा भी नहीं लगता कि क्यों हम जी रहे हैं, किसलिए? क्या प्रयोजन है? न होते तो क्या हर्ज था? हुए तो लाभ क्या? लोग जी लेते है, ढो लेते हैं जीवन के बोझ को। लेकिन इस जीवन में कोई नृत्य—गीत—उत्सव नहीं होता और जहाँ नृत्य नहीं, उत्सव नहीं, गीत नहीं, वहाँ परमात्मा के प्रति धन्यवाद का तो सवाल कैसे उठेगा? धन्यवाद तो केवल वे ही दे सकते हैं जो धन्यभागी है। और धन्यवाद ही प्रार्थना है और धन्यवाद ही पूजा है।

*यहाँ भी तू वहाँ भी तू, जमीं तेरी फलक तेरा,*
*कहीं हमने पता पाया न हरगिज आज तक तेरा।*

बड़े मजे की बात है—विरोधाभासी—कि वो सब जगह है और उसका पता कहीं मिलता नहीं। किसी से पूछो परमात्मा कहा हैं तो कोई उत्तर नहीं दे सकता। जो जानते हैं वे कहते हैं सब जगह है। मगर अगर उनसे यह पूछो कि ठीक—ठीक जगह बता दें कहाँ हैं, ताकि वहाँ हम चले जायें और दर्शन कर लें, तो कोई पता नहीं दे सकता।

यह तो हम सुनते हैं कि आकाश भी तेरा और पृथ्वी भी तेरी है और यहाँ भी तू है और वहाँ भी तू है, सब तरफ तू है। लेकिन तेरा पता नहीं मिलता। पता तब तक न मिलेगा, जब तक तुम्हें उसका होना भीतर मालूम न पड़ जाये। आकाश में होगा, यह तो अनुमान है, सुनी हुई बात है, कहते हैं ज्ञानी। पृथ्वी उसकी होगी; सारे बुद्धपुरुष कहते हैं, तो ठीक ही कहते होंगे। मगर यह भरोसा हुआ, अनुभव न हुआ। उसका

प्राथमिक अनुभव स्वयं के भीतर होता है, वहाँ से पता मिलता है। और जिसे वहाँ पता मिल गया, उसे फिर सब जगह उसका पता है। फिर जगह–जगह वही है। जिसने भीतर देख लिया उसे सब जगह वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। और जिसे अपनी बगिया में फूल दिखायी पड़ गये, फिर हर फूल में उसी की झलक है और जिसने भीतर नाद सुन लिया, फिर कहीं भी नाद होगा तो उसी की याद आयेगी।

*मेरे हक में हुआ अच्छा मेरा हद से गुजर जाना*
*खुदाई हाथ आयी तर्क जब कर दी खुदी मैंने।*

लेकिन कब कोई स्वयं के भीतर उसे जान पाता है? जब स्वयं को मिटा देता है। इसलिए बीज का प्रतीक सार्थक है।

जब स्वयं को कोई समर्पित कर देता है, तो स्वयं के आत्यंतिक अर्थ को जान लेता है। बीज जब मिट जाता है तो वृक्ष हो जाता है। और बूंद जब खो जाती है सागर में तो सागर हो जाती है। और फिर तो उठो–बैठो, सोओ–जागो सब प्रार्थना ही है।

*तेरी गली के कायदा कयाम की क्या बात*
*इसी को दिल की जबां में नमाज कहते हैं।*

जिसे उसकी गली मिल गयी, फिर उसमें बैठे, उठे। इसी को दिल की जबा में नमाज कहते हैं। फिर यही प्रार्थना है।

*घटि घटि गोरख फिरे निरुता।*

गोरख कहते हैं कि परमात्मा चुपचाप बिना आवाज किये एक–एक हृदय में घूमता फिरता है, पुकारता फिरता है।

*घटि घटि गोरख फिरे निरूता।*

जगाता फिरता है और चुपचाप, आवाज भी न हो उसकी शोर–गुल भी न हो। उसकी पगध्वनि सुनाई नहीं पड़ती, वह निःशब्द आता है।

*घटि घटि गोरख फिरे निरुता, को घट जागे को घट सूता।*

लेकिन कभी मुश्किल से कोई जागा हुआ मिलता है। परमात्मा तो रोज आता है, अनंत–अनंत रूपों में आता है। मगर कभी कोई जागा हुआ मिलता है, जो जागता हुआ मिल जाता है, उससे मिलन हो जाता है। अधिकतर तो सोए हैं।

कोई जाग रहा है, कोई सो रहा है। जो सो रहा है, परमात्मा उसके पास भी आता है। वसंत तो उन बीजों के लिए भी आता है, जो जमीन में गिर गये और मिट गए, और उन बीजों के लिए भी आता है जो जमीन में नहीं गिरे और अपने को सम्हाले हैं। वसंत तो सभी के लिए आता है। वसंत की कोई शर्त तो नहीं होती, वसंत आया तो सभी के लिये आया।

लेकिन जिन्होंने जमीन में अपने को खो दिया है, जिन्होंने अपनी खुदी खो दी है, वे वसंत का पूरा लाभ उठा लेंगे; और जो अपने को बचाये बैठे हैं, वे वंचित रह जायेंगे।

## गोरखवाणी

*अवधू मांस भषंत दया धरम का नास। मद पीवंत तहां प्राण निरास।*
*भांगि भषंत ज्ञान ध्यान षोवतं। जम दरवारी ते प्राणी रोवंत।*
*जीव क्या हतिये रे प्यंडधारी। मारिलै पंचभू मृगला।*
*चरै थारी बुधि बाड़ी। जोग का मूल है दया–दाण।।*
*कथंत गोरख मुकति लै मानवा, मारिलै रे मन द्रोही।*
*जाके बप वरण मांस नहीं लोही।।*
*पावड़िया पग फिलसै अवधू, लोहै झीजंत काया।*
*नाग मनी दूधाधारी, एता जोग न पाया।*
*हिरदा का भाव हाथ में जाणिये, यह कलि आई षोटी।।*
*बदंत गोरख सुणौ रे अवधू, करवै होइ सु निकसै टोटी।।*
*कोई बादी कोई विवादी, जोगी कौं बाद न करनां।*
*अठसठि तीरथि समंदि समावै, यूं जोगी को गुरुमुषि जरनां।।*
*अवधू मन चंगा तौ कठौती ही गंगा। बांध्या मेला तो जगत्र चेला।*
*बदंत गोरख सति सरूप। तत विचारै ते रेख न रुप।।*
*यहु मन सकती यहु मन सीव। यहु मन पांचतत् का जीव।*
*यहु मन ले जे उनमन रहै। तौ तीनि लोक की बातां कहै।।*
*दाबि न मारिबा खाली न राषिबा, जानिबा अगिना का भेवं।*
*बूढ़ी ही थै गुरबाणी होइगी, सति सति भाषंति श्री गोरख देवं।।*
*राति गई अधराति गई, बालक एक पुकारै।*
*है कोई नगर मैं सूरा, बालक का दुख निबारै।।*
*देवल जात्रा सुंनि जात्रा, तीरथ जात्रा पाणीं।*
*अतीत जात्रा सुफल जात्रा, बोलै अमृत वाणी।।*

जन्म होंगे मृत्युएँ होंगी। लेकिन मन अगर शेष रहा, तो दिवस का अंत तो आता रहेगा बार–बार, लेकिन डगर का अंत न आयेगा। डगर का अंत नहीं होता, लेकिन जब तक मन है, तब तक नहीं आता। मन ही डगर है। और सब पंथ राहें तो बस नाममात्र की है। असली तो मन की राह है, दिन आएंगे रात आयेंगी।

डगर बाहर नहीं है। डगर है भीतर। डगर है वही जिस पर विचार चलते हैं, वासनाएँ चलती हैं, कल्पनाएँ–कामनाएँ चलती है, स्मृतियाँ चलती है, भविष्य के स्वप्न चलते हैं। डगर है वही, पहचान लेना ठीक से। बाहर के रास्ते पर असली डगर नहीं है। बाहर के रास्ते पर भी लोग चल रहे हैं, क्योंकि भीतर की डगर ने उन्हें बाहर के रास्ते पर चलाया है।

चीन की एक बड़ी प्रसिद्ध कथा है। एक फकीर को सम्राट ने आमंत्रित किया था अपने महल पर। वे दोनों छत पर खड़े–खड़े सांझ डूबते सूरज को देखते थे। सामने ही सागर है। उत्ताल उसकी तरंगें हैं। सागर में डूबता हुआ सूरज का अग्नि का गोला है और सैकड़ों जहाज आ रहे, जा रहे हैं। सम्राट ने कहा फकीर को; देखते हैं, कितने जहाज आते हैं कितने जहाज जाते हैं। वह फकीर बोला कि नहीं, कितने नहीं देखता, बस दो ही देखता हूँ। दो ही जहाज हैं।

सम्राट ने कहा–आप होश में है ? मुझे गिनती नहीं आती ? सैकड़ों जहाज है, गिने भी न जा सकें, इतने जहाज हैं।

लेकिन फकीर फिर भी बोला कि नहीं, दो ही जहाज है। एक धन की यात्रा पर निकला है, एक पद की यात्रा पर निकला है। बाकी सब बहाने है। बाकी फिर उन्हीं के रुपांतरण हैं, उन्हीं के रूप है, उन्हीं की आकृतियाँ है। जहाज तो दो हैं, एक धन की यात्रा, एक पद की यात्रा। लेकिन अगर इन दोनों को भी ठीक से समझो, तो ये दोनों जहाज भी एक ही लकड़ी से बने हैं; वह लकड़ी है अहंकार की लकड़ी और अगर बहुत खोज करो, तो ये जहाज बाहर नहीं चलते, ये भीतर तुम्हारे मन के सागर में चलते हैं। मन की डगर है। मन ही डगर है। और जब तक मन चल रहा है, तब तक थको, गिरो; फिर–फिर उठोगे, फिर–फिर उठोगे, फिर–फिर चलोगे–मन चलाता ही रहेगा।

*दिवस का अंत आया, पर डगर का अंत कब आया।*

साधारणतः नहीं आता। कभी–कभी आता है। किसी बुद्ध को, कबीर को, गोरख को, नानक को... कभी–कभी आता है। आ सबको सकता है। पर इतना हमें होश ही नहीं सम्हालते। हमें यह पता ही नहीं कि हमारी असली यात्रा बाहर नहीं हो रही है,

भीतर हो रही है और जिन यात्रियों से हम बाहर मिल रहे हैं, वे असली यात्रा नहीं है; जिनसे हम मन की डगर मिलते हैं, वे ही असली यात्री हैं। वहाँ तुम किस–किससे मिलते हो? मिलते हो अतीत की स्मृतियों से, भविष्य की कल्पनाओं से, न मालूम कितने वासनाओं से, न मालूम कितने विचारों से।

भीड़ वहाँ इकट्ठी है। राह चलती ही रहती है। जागो तो चलती है, सोओ तो चलती है। राह चलती ही रहती है। जन्मते हो तो चलती है। मरते हो तो चलती रहती है। मरते–मरते भी मन की राह बंद नहीं होती। देह छूट जाती है, मन नयी देह पर सवार हो जाता है। एक वाहन टूट गया, मन नये वाहन निर्मित कर लेता है, मगर यात्रा जारी रहती है। इस यात्रा का नाम ही संसार है।

संसार से तुम अर्थ मत समझना, वह जो बाहर फैला हुआ है, वैसा अर्थ समझा तो भूल हो जायेगी। फिर तो संसार को छोड़ न सकोगे कभी जहाँ भी जाओगे, वहीं बाहर कुछ होगा। पहाड़ पर भी होगा, वन–कंदराओं में भी होगा। संसार से अर्थ है, वह जो भीतर चलता है। उसे तोड़ा जा सकता है। उसे रोका जा सकता है और मन गिर जाये तो संसार गिर जाता है। और मन गिर जाये तो फिर और जन्म नहीं है। मन गिर जाये तो फिर कोई मृत्यु नहीं है। फिर अमृत से मिलन है । सूत्र–

*अवधू मांस भषंत दया धरम का नास। मद पीवंत तहां प्राण निरास।*
*भांगि भषंत ज्ञानं ध्यानं षोवतं। जम दरवारी ते प्राणी रोवंत।*

एक दिन मृत्यु के द्वार पर रोओगे, बुरी तरह रोओगे, जार–जार रोओगे। लेकिन तब बहुत देर हो चुकी होगी। इसके पहले कि मृत्यु के द्वार पर रोना पड़े, सम्हल जाओ। सम्हलने के सूत्र ये रहे। पहला सूत्र– करुणा।

जीवन में इतना उपद्रव क्यों है, इतनी हिंसा क्यों है, इतना वैमनस्य क्यों हैं, इतना विद्वेष क्यों है? करुणा खो गयी है। और ऐसा नहीं है कि करुणा दूसरे के हित में है। करुणा तुम्हारा हित है, स्व–हित है।

एक बुनियादी सूत्र समझ लेना– जो तुम दूसरे के साथ करते हो, वही तुम पाओगो। जो बोओगे, वही काटोगे। अगर चाहते हो कि अमृत को काटो, तो मौत को मत बोओ। अगर चाहते हो शाश्वत जीवन मिले, तो फिर जीवन का विनाश न करो। अगर चाहते हो कि प्रेम तुम पर बरसे, तो घृणा के कांटे दूसरों के रास्तों पर मत डालो। जो गड्ढे तुमने दूसरों के लिए खोदे हैं, वे अपने लिए ही खोदे हैं। सब तुम्हीं पर वापिस लौट आता है।

यह जगत तो ऐसा है जैसे कोई पहाड़ों में जाकर, घाटियों में जोर से आवाज लगाये, और सारी घाटियों से आवाज लौटकर उसी पर बरस जाये। यह जगत एक प्रतिध्वनि है।

करुणा का अर्थ होता है– दो प्रेम, ताकि पा सको प्रेम। और प्रेम पाने की सभी की आकांक्षा है। ऐसा कौन है जो प्रेम नहीं पाना चाहता? पाना तो सभी चाहते हैं, लेकिन कीमत कोई भी चुकाना नहीं चाहता। इसलिए छीना–झपट्टी बहुत, मिलता कुछ भी नहीं। प्रेम दो और प्रेम मिलता है, और हजार गुना होकर मिलता है।

*अवधू मांस भषंत दया धरम का नास।*

यह तो असंभव है, थोड़े–से समझदार, बोधपूर्ण व्यक्ति को, जो जीवन को समझने की चेष्टा में संलग्न है, कि अपने स्वाद के लिये लोगों को, पशुओं की हत्या कर सके, आदमियों को खाने वाले कबीले हुए हैं। अभी भी कुछ लोग हैं, अमेजान के कछार में, जो आदमियों को खा जाते हैं। उनकी संख्या खुद ही कम होती जाती है, क्योंकि कबीला अपने को ही खाता जाता है। मनुष्य को खाने वाले लोग जमीन पर थे। वे हमारे ही पूर्वज थे। फिर किसी तरह समझाया–बुझाया; पशुओं को खाने लगे और समझाया–बुझाया। बामुश्किल आदमी को आदमी बनाने की चेष्टा की जा सकी हैं, फिर भी आदमी कभी पूरा आदमी नहीं बन पाया।

हिंसा जब भी तुम कर रहे हो, फिर किसी भी कारण से कर रहे हो, तुम इस हिंसा के माध्यम से कभी भी आनंद को उपलब्ध न कर सकोगे। दुःख दोगे, दुःख पाओगे। बैर बोओगे, बैर काटोगे।

महावीर ने कहा है– बैर मज्झि न केव। जिसने शत्रुता बांधी, उसने शत्रुता के अतिरिक्त और कभी कुछ न पाया। तो महावीर कहते हैं– मैं किसी से बैर नहीं करता। बुद्ध ने कहा है–शत्रुता से शत्रुता नहीं मिटती। हिंसा से हिंसा नहीं मिटती। हिंसा से हिंसा और बढ़ती है।

जीवन जहाँ तक बन सके, हिंसा से विमुक्त करो। और किन छोटी–छोटी बातों पर हिंसा में लगे हो ? स्वाद है, स्वाद जैसी छोटी बात के लिये जीवन के परम धन को खो रहे हो । स्वाद क्षणभंगुर है। परिणाम बहुत लम्बे होंगे। जन्मों–जन्मों तक कष्ट भोगना पड़ सकता है। कष्ट दिया है, कष्ट ही भोगना पड़ेगा। और ऐसा मत सोचना कि यह बात सिर्फ मांसाहार के लिए की जा रही है, किसी भी तरह की हिंसा, किसी भी तरह का दुःख। और ऐसा ही नहीं कि दूसरों को मत देना, अपने को भी मत देना।

दुःख देना ही मत। क्योंकि तुम किसी को भी दुःख दो, तुमने परमात्मा को ही दुःख दिया। तुम एक वृक्ष को दुःख दो, तो भी तुमने 'उसी' को दुःख दिया। क्योंकि 'वही' था हरा वृक्ष में। और तुमने एक पक्षी मार डाला, तुमने 'उसी' को मारा। क्योंकि वही उड़ता था पक्षी में। और तुमने अपने को दुःख दिया तो भी तुम ने 'उसी' को दुःख दिया, क्योंकि 'वही' तुम्हारे भीतर भी विराजमान था। उस एक का ही विस्तार है। उस एक के ही सागर की हम सब अनंत तरंगें है। वह जो तंरग दूसरी मालूम पड़ रही है, वह भी दूसरी नहीं है; जुड़ी हैं हमसे। हम सब संयुक्त हैं, हम सब एक अस्तित्व हैं— इस घोषणा का नाम अहिंसा है।

*अवधू मांस भषंत दया दरम का नास, मद पीवंत तहाँ प्राण निरास।*

और ऐसे भी लोग हैं जो जीवन के इस अमूल्य अवसर को बेहोशी में गंवा रहे हैं। और साधारण बेहोशी भी उनको काफी नहीं मालूम पड़ती; उन्हें शराब चाहिए। ऐसे ही बेहोश हैं, लेकिन उस बेहोशी को और घना करने की कोशिश में लगे हैं। होश जगाओ, कौन तुम्हारे भीतर बैठा है। होश में ही उससे पहचान होगी। ध्यान की तरफ लो। थोड़ी जागृति की बेला आये। प्रभात हो। जागे तुम्हारे भीतर का सूरज। तुम रोशनी से भरो। उल्टे तुम बेहोशी की तरफ जा रहे हो।

लेकिन लोगों ने तरह—तरह की शराबें खोज ली हैं। शराब से इतना ही मत समझना कि जो शराबखाने में बिकती हैं। और भी सूक्ष्म शराबें हैं। वह तो सबसे सस्ती शराब है जो शराबखाने में बिकती है, और महंगी शराबें है— धन का मद, पद का मद है।

देखते हो, एक आदमी पद पर पहुँच जाता है, तो उसकी चाल ही बदल जाती है, उसकी अकड़ ही बदल जाती है। उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते। शराबी तो लड़खड़ाता है, मगर तुमने पद के मद से भरे लोगों को देखा, कोई शराबी इतना नहीं लड़खड़ाता। पद में पहुँचते ही सारी बात बदल जाती है। धन पाते ही सारी बात बदल जाती है। ये सब नशे हैं। ज्ञान का भी नशा है, थोड़ा—सा ज्ञान हो जाये तो सिर भारी हो उठता, फूल जाता है। त्याग का भी नशा है, थोड़ा सा त्याग हो जाये तो उसकी भी अकड़ आ जाती है।

नशे का सार समझ लो। नशे का सार है जहाँ भी अहंकार अकड़ जाये वहीं नशा, जहाँ भी तुम होश खोकर काम करने लगो वहीं नशा। जहाँ तुम्हारे जीवन में मूर्च्छा और तंद्रा सघन होने लगे वहीं नशा।

एक तो ऐसे लोग हैं जो जागे भी जागे नहीं है। और इसी पृथ्वी पर ऐसे भी लोग हुए हैं जो सोये थे तो भी जागे थे। ये दो छोर है। चुन लो, जो तुम्हें चुनना हो। जो नींद को चुनेगा वह मौत के दरवाजे पर बहुत बुरी तरह तड़फेगा और रोयेगा, लेकिन तब कुछ किया नहीं जा सकता। अवसर बीत गया।

रविन्द्रनाथ की एक कथा है– एक भिक्षु सुबह–सुबह घर से निकला। और जैसे भिखारी अपनी झोली में थोड़े से दाने डाल लेते हैं घर से निकलते समय, उसने भी चावल के थोड़े दाने डाले लिये थे, क्योंकि झोली खाली हो तो कोई देता नहीं। झोली भरी हो तो लोगों को थोड़ा लाज–संकोच आता है। तुम्हारे द्वार पर भिक्षु दस्तक देता है और तुम देखते हो उसके पात्र में, उसकी झोली में कुछ है, तो तुम्हें ऐसा लगता है कि पड़ोसी ने दिया है, अब मैं न दूँ तो जरा अहंकार की चोट लगती है। तुम दया के कारण तो भिक्षु को देते नहीं, अहंकार के कारण देते हो। तो सभी भिखारी अपने पात्र में थोड़े–से दाने, थोड़े पैसे, घर से डालकर चलते है। पैसा पैसे को खींचता है, दाना दाने को खींचता है।

उस भिखारी ने भी अपनी झोली में डाल लिये हैं कुछ चावल के दाने और चला, लेकिन चौंक गया। राह पर आया नहीं था कि राजा का रथ आकर रूका। उसके आनंद का तो पारावार न रहा। बहुत बार राजद्वार तक गया था, लेकिन पहेरदार भीतर ही न जाने देते थे। राजा के सामने झोली फैलाने का अवसर ही न मिला था। आज मिल गया अवसर। उसके आनंद का तो पारावार नहीं। वह तो भूल ही गया, ठगा ही खड़ा रह गया। देने की तो उसे आदत ही न थी, दिया तो उसने कभी था ही नहीं, मांगा ही मांगा था। और सम्राट ने कहा कि सुन भाई, माना कि तू भिखारी है और तुझसे मैं माँगू, यह योग्य भी नहीं, लेकिन ज्योतिषियों ने कहा है कि राज्य पर बड़ा संकट है। संकट टल सकता है अगर मैं आज निकलूँ सुबह–सुबह सूरज के उगने के समय, जो भी व्यक्ति पहली बार रास्ते पर मुझे मिल जाये उसी से भीख माँग लूँ, तो राज्य का संकट टल सकता है। ना मत कर देना। चार दाने भी देगा तो चलेगा। नाममात्र को कुछ भी दे दे। यह भी कैसी अड़चन हो गई कि मैं एक भिखमंगे के सामने पड़ गया हूँ।

अब भिखमंगा खड़ा है हतप्रभ। सोचा था कि राजा से मांग लूँगा, सोने से भर जायेगी झोली, यह तो उल्टा हो गया, और पास के दाने भी चले। मुट्ठी भरता है और नहीं निकाल पाता झोली से। आदतें पुरानी है; दिया तो कभी नहीं। बामुश्किल बड़ी हिम्मत करके, एक दाना, सिर्फ एक दाना चावल का राजा की झोली में डाल दिया।

औपचारिकता पूरी हो गई, राजा तो बैठा रथ पर, स्वर्ण–रथ जा भी चुका, धूल उड़ती राह पर रह गई और भिखारी के मन में पश्चाताप रह गया। कुछ मिलता, वह तो मिला नहीं, पास था कुछ, वह भी गया। गांठ का भी कुछ गया।

उस दिन उसे बहुत दान मिला, इतना कभी न मिला था। देने वाले को मिलता है। यह जगत चारों तरफ से बांटता है, अगर हम देने को तैयार हो। ज्यादा दिया नहीं था उसने, मगर जितना दिया था वह भी भिखारी के मन से बहुत था। साम्राज्य ही दे दिया था भिखारी ने। बहुत मिला, झोली भर गई, मगर चित्त में पश्चात्ताप था उस एक दाने का जो कम था। कहीं राजा न मिला होता तो एक दाना और ज्यादा होता।

हम ऐसे ही हैं; जो मिल जाता है उसके लिये धन्यवाद नहीं देते, जो नहीं मिलता उसके लिये शिकायत जरूर करते रहते हैं। तुम्हें कितना मिला है, तुमने कभी मंदिर में जाकर परमात्मा को धन्यवाद दिया है? नहीं, लेकिन जो नहीं मिला है, उसकी शिकायत तो हर घड़ी तुम्हारी श्वास–श्वास में भरी है। कहो या न कहो, तुम्हारे प्राण शिकायतों से भरे हैं। वह आदमी भी थका–मांदा लौटा और आकर झोली पटक दी। पत्नी ने कहा–उदास दिखते हो। इतनी झोली तो कभी न भरी थी। उसने कहा कि क्या खाक भरी, आज जैसा दुर्दिन कभी नहीं आया। सुबह ही सुबह, बोहनी बिगड़ गई। कभी मैंने दिया न था, आज देना पड़ा। खुद सम्राट मांगने खड़र था। आज इस झोली में एक दाना कम है। आज चित्त मेरा पश्चात्ताप से भरा है।

पत्नी ने झोली उड़ेली, दोनों चौंक कर खड़े रह गये। चावल के दाने गिरे ढेर, उसमें एक दाना सोने का था। एक ही दाना उसने दिया था, वही सोने का हो गया था। यह कथा प्यारी है। जो हम देते हैं वही सोने का हो जाता है, जो हम बचा लेते हैं वही मिट्टी हो जाता है। जीवन में जितना जो देता है, उतना ही उसका जीवन स्वर्णिम हो जाता है। मगर अब तो बहुत देर हो गई। अब तो बहुत पछताने लगा, छाती पीट–पीटकर भिखारी पछताने लगा कि काश मैंने पुरी मुट्ठी भर कर दे दी होती, तो सब दाने सोने के हो गये होते। मैं भी कैसे अभागा हूँ। लेकिन अब तो अवसर बीत चुका था। यह जो कथा रवीन्द्रनाथ ने एक कविता में लिखी हैं, उसका शार्षक है– अवसर बीत गया!

जीवन के बीतने पर बहुतों के जीवन का शीर्षक यही होता है, अवसर बीत गया।

मत ऐसा करना। तुम्हारी झोली सोने से भर सकती है, मगर दोगे तो भरेगी, बाँटोगे तो भरेगी। जोड़ोगे तो मिट्टी ही हाथ रह जायेगी। और जो भी अहंकार से भरे

हैं, वे जोड़ते हैं— धन जोड़ते, पद जोड़ते, प्रतिष्ठा जोड़ते, ज्ञान—त्याग, जो भी मिल जाये हर चीज को संपदा बना लेते हैं, हर चीज के ऊपर अकड़कर, फन मारकर बैठ जाते हैं।

और फिर बहुत तरह के मद हैं— धन का मद है, पद का मद है, ज्ञान—मद है, त्याग—मद भी है। देखते हो त्यागी को अकड़ा हुआ। जहाँ अकड़ है वहाँ नशा है। जहाँ नशा है वहाँ आत्मज्ञान संभव नहीं।

इसलिये कहा है कि अहंकार हो तो आत्मज्ञान संभव नहीं, क्योंकि अहंकार ही असली मदिरा है। अंगूरों से नहीं निकलती असली शराब, असली शराब तो अहंकार से निचुड़ती है। और घर—घर में लोगों ने भट्टियाँ खोल रखी हैं— अहंकार से शराब निचोड़ने की भट्टियाँ।

*अवधू मांस भषंत दया धरम का नास, मद पीवंत तहाँ प्राण निरास।*

और जो—जो मद से भरेंगे, उनके प्राण सिवाय निराश के और कुछ भी न जानेंगे। उनके प्राणों में कभी सुबह न होगी, सदा रात ही रहेगी। वे निद्रा जानेंगे, तंद्रा जानेगे, जागरण का उन्हें कभी कोई अनुभव न होगा। सूरज से उनका मिलन न होगा। उनके जीवन में कभी प्रभात न होगा, कभी प्रभाती के स्वर ने गूंजेगे।

*भांगि भषंत ज्ञानं ध्यानं षोवतं।*

और लोग हैं कि खोज में लगे हैं, ऐसी खोज में लगे हैं कि किसी तरह ध्यान हो जाये। वेदों से लेकर अब तक आदमी ने बड़े सस्ते ध्यानों की खोजे की हैं। सोमरस से लेकर एल.एस.डी. तक आदमी की तलाश यह रही है कि कोई रासायनिक तत्त्व मिल जाये, जिससे ध्यान लग जाये— कि गांजे की दम मार ले कि भांग पीसकर पी जायें कि एल.एस.डी. की टिकिया गटक लें, कि किसी रासायनिक द्रव्य का इंजेक्शन लगा लें। कोई ऐसी सस्ती तरकीब मिल जाये कि यात्रा बिना किये पूरी हो जाये। यह कोई नई खोज नहीं है, यह सदियों पुरानी खोज है और आदमी के इस तरह के बहुत—से रासायनिक द्रव्य खोज निकाले हैं, जिनके माध्यम से झूठे ध्यान का धोखा पैदा हो जाता है, जो ध्यान जैसे ही मालूम पड़ते हैं।

तुमने अगर भंग पी ली है तो तुम आकाश में उड़ते मालूम होने लगते हो; हो जमीन पर ही, मगर आकाश में उड़ते मालूम होने लगते हो। ध्यान में भी वैसी उड़ान होती है— बड़ी ऊँची उड़ान होती है। तुमने अगर एल.एस.डी. लिया तो सारा जगत तुम्हें

ऐसा रंगीन मालूम हो लगता है, जैसा कभी नहीं था। हरे वृक्ष खूब हरे मालूम होते हैं। गुलाब का फूल खूब गुलाबी मालूम होता है। पक्षियों की आवाजें अति मधुर हो जाती है। छोटे–छोटे रास्ते के किनारे पड़े हुए कंकड़–पत्थर हीरे–जवाहरातों जैसे चमकने लगते हैं। सारा अस्तित्व एक अपूर्व सौंदर्य से भर जाता है।

ऐसी ही घटना ध्यान में भी घटती है। मगर जो ध्यान में घटती है घटना, वह तो स्थिर हो जाती है, और जो एल.एस.डी. से घटती है वह घड़ी–भर को है, और फिर गई। और जब जाती है तो बहुत अंधेरे में छोड़ जाती है। आँखें बिल्कुल फीकी हो जाती है। एल.एस.डी. के प्रभाव में तो हर चीज रोशन मालूम होती है, पत्ते–पत्ते में रोशनी झरती मालूम पड़ती है।

सोमरस से लेकर एल.एस.डी. तक आदमी ने जितने रासायनिक द्रव्य खोजे हैं– गांजा है, भांग है, मारिजुआना है, और–और न मालूम क्या–क्या अलग–अलग देशों में अलग–अलग चीजें खोज ली हैं– इन सबके पीछे तलाश है इस बात की कि कोई शार्ट–कट, कोई सीधा–सा रास्ता, बिना श्रम किये, बिना साधना किये, परमात्मा के अनुभव का मिल जाये। जगत के सत्य को और सौंदर्य को हम देख लें, जान लें। रास्ते मिल भी गये हैं, मगर वे सब रास्ते झूठे हैं, और उनमें गंवाया गया समय सिर्फ गंवाया गया समय है। तुम कल्पना–जाल में खो जाते हो और छोटे–छोटे लोगों की बात छोड़ दो, बड़े–बड़े विचारशील लोग तक धोखे में आ जाते हैं।

पश्चिम का बहुत बड़ा विचारक अल्डुअस हक्सले जब पहली दफा एल.एस.डी. लिया, तो एल.एस.डी. के बाद उसने अपनी डायरी में लिखा कि अब मैं जानता हूँ कि यही बुद्ध को हुआ, यही कबीर को हुआ। अल्डुअस हक्सले जैसा विचारशील आदमी, इस सदी के दो–चार इने–गिने विचारशील लोगों में एक, मगर उसको भी भ्राँति हो गई कि यही कबीर को हुआ था। क्योंकि कबीर ने भी खूब बात कहीं अमी रस बरसे! खूब घनघोर आनंद के मेघ घिरे हैं और आनंद की वर्षा हो रही है। और भीतर दीयों पर दीये जले हैं, जैसे हजार–हजार सूरज एक साथ उगे हो ! ऐसा ही अल्डुअस हक्सले को हुआ एल.एस.डी. के प्रभाव में– खूब अमृत की वर्षा होने लगी, दीये पर दीये जलने लगे। स्वभावतः लौटकर उसने प्रभाव से कहा कि अब मैं जानता हूँ कि यही कबीर को हुआ था।

और उसने यह भी लिखा कि अब जैसे पुराने दिनों में आदमी बैलगाड़ी से चलता था और सौ मील चलने के लिये कितना समय लग जाता था और अब तो सौ मील ऐसे पहुँच जाते हो क्षण में हवाई जहाज से। जैसे बैलगाड़ी और हवाई जहाज का फर्क है

ऐसा ही अल्डुअस हक्सले ने लिखा कि बुद्ध ने जो ध्यान की प्रक्रिया की वह बैलगाड़ी जैसी थी, छह साल लगे। महावीर की और भी पुरानी रही होगी बैलगाड़ी, बारह साल लगे। अब एल.एस.डी. हमें मिल गया है। अब यह जेट–युग की चीज है। अब इसकी तो जरा–सी, जरा–सी मात्रा, आँख से भी दिखाई न पड़े ऐसी जरा–सी मात्रा ले लेने से समाधि लग जाती है तो हमने खोज लिया राज। और उसने लिखा कि जल्दी ही हम उस परम औषधि को खोज लेंगे, जिसकी तलाश सदा से चलती रही है।

ऋग्वेद के स्मरण में उसने उस परम औषधि को सोम नाम दिया। इस सदी के पूरे होते–होते उसकी आशा थी कि सोम की खोज हो जायेगी। वैज्ञानिक इंजेक्शन निकाल लेंगे, जिसको भी चाहिये समाधि, तब समाधि ले ले।

पर ऐसी समाधि दो कौड़ी की है। अल्डुअस हक्सले कितना ही बड़ा विचारक रहा हो, समाधि और ध्यान के जगत का उसे कोई अनुभव नहीं था, इसलिये धोखा खा गया। शब्दों का तालमेल बैठ गया और उसने सोचा कि हो गई बात। शब्दों का तालमेल तो स्वप्न और यथार्थ में भी कभी–कभी बैठ जाता है। कभी तो तुम स्वप्न में भी ऐसे सौंदर्य का अनुभव कर लेते हो कि जाकर सारा जगत फीका लगे, तो भी तुम यह तो नहीं कहते कि वह सत्य था। तुम जानते हो कि सपना आखिर सपना था।

रासायनिक द्रव्यों से तो शरीर की भीतर की रासायनिक प्रक्रियाएँ बदली जा सकती हैं, लेकिन चेतना का आरोहण नहीं होता। चेतना पर तो रासायनिक द्रव्यों के पार हैं। उसे पाने के लिये तो कुछ और करना होगा।

*भांगि–भषंत ज्ञानं ध्यानं षोवतं।*

और जो लोग रासायनिक द्रव्यों में पड़ गये हैं, वे ध्यान खो देते हैं, ज्ञान खो देते हैं, और इस मजे में रहते हैं कि मिल गया, पा लिया। इस देश में हजारों साधु हैं– दम मारों दम.... और यह कोई नई बात नहीं है इस देश में। इस देश में साधु और गांजा न पीये तो साधु ही क्या–सधुक्कड़ा। साधु तो वही है जो दिल भर कर पीये। असली साधु तो वही– जो पीता ही रहे। नब्बे प्रतिशत साधु इस देश के गांजा, भांग, अफीम और न मालूम क्या–क्या। रासायनिक द्रव्यों में उलझे रहे हैं और तुम इन्हें साधु की तरह पूजते भी रहे हो।

पश्चिम में तो यह रोग नया है। पूरब में तो यह रोग बड़ा प्राचीन है। पश्चिम को तो लोग गालियाँ देते हैं। अगर गोवा में हिप्पी आकर और मारीजुआना और एल.एस. डी. लेते हैं तो सारी भारतीय संस्कृति को धक्का लगता है। और तुम्हारे साधु–संन्यासी

पाँच हजार साल से यही कर रहे हैं और तुम्हारी संस्कृति को धक्का नहीं लगा। तुम्हारे साधुओं के अखाड़ों से हो क्या रहा है? मगर गांजा, भांग पीकर राम की धुन लगा दी उन्होंने, बस चित्त प्रसन्न हो गया। तुम भी प्रसन्न हुए कि देखो कैसे राम की धुन लगी है। गांजे के नशे में बकवास चल रही है, तुम भी प्रसन्न हुए कि देखो कैसे राम की धुन लगी है। राम—राम जपने की आदत बन गई तो जब गांजा पी लेते हैं, तब राम—राम जपना की आदत जारी रहती है और जोर—जोर से जपने लगते हैं और उछलने—कूदने लगते हैं। मगर यह कोई समाधि की अवस्थायें तो नहीं है।

समाधि की अवस्था तो बड़ी शांति की अवस्था है। उसमें नृत्य भी होता है तो उस नृत्य में भी एक समता होती है, एक संतुलन होता है। उसमें गीत भी पैदा होते हैं तो सम स्वर होते हैं। समवेत होते है। उसके गीत भी ध्यान—आपूरित होते हैं। वह नृत्य भी कोई तांडव नृत्य नहीं होता। मगर लोगों ने तो अपने हिसाब से इंतजाम कर लिये हैं, खुद ही नहीं पीते, वे तो शिवजी तक को पिला रहे हैं। भंगेड़ी, गंजेड़ी, उनकी जमातें. ... वे सोचते हैं कि शिवजी से चल रही है यह परंपरा, कोई नई थोड़ी है। इसलिये बम भोले..। भोले का स्मरण करते हैं, फिर दम लगती है।

धर्म के नाम पर चलता रहा तो किसी को कोई अड़चन नहीं है, तो हमने बिलकुल स्वीकार कर लिया है। हम ऐसे अंधे है कि धर्म के नाम पर कुछ भी चलता हो तो हम स्वीकार कर लेते हैं, बस धर्म की आड़ होनी चाहिए। धर्म की आड़ हो तो सब ठीक है।

हमारे देश के निन्यानबे प्रतिशत साधु—साधु नहीं हैं, साधु कहे जाने के हकदार भी नहीं हैं। मगर उनकी पूजा चल रही है, तुम उनके पैरों पर गिर रहे हो। तुम कभी कुंभ के मेले में अपने साधुओं की जमातें तो जाकर देखो। तुम्हें देशभर के और सब दादा इत्यादि छोटे मालूम पड़ेंगे। इन्हीं की जमात इकट्ठी हो जाती है तो तुम कहते हो : संतन की भीड़ लगी है। आँखें खोलो। गोरख वही कह रहे हैं, नहीं तो फिर आखिरी घड़ी में बहुत पछताओगे।

*जम दरवारी ते प्राणी रोवंत।*

धोखे आसानी से हो जाते है, धोखे सस्ते होते हैं। धोखा खाना बहुत आसान है। झूठ को सत्य का आवरण पहनाना आसान है। आदमी आत्मवाचक होता है। वह अपने को ही धोखा देने के लिये छाँव बना लेता है। अपने ही धोखे में डूब जाता है। जो व्यक्ति सत्य की खोज में निकला है। उसे बहुत सावधानियाँ बरतनी पड़ती है 'सत्य के मार्ग

पर बड़े धोखे हैं' सत्य के मार्ग पर बहुत पगडंडियाँ हैं। उनकी तरफ सचेत कर रहे हैं गोरख।

*जीव क्या हसिये, रे खंडधारी। मारिलै पंचभूत मृगला।*
*चरैं थारी बुद्धि बाड़ी जोग का मूल है दया दाण।*
*जीव क्या हसिये रे खंडधारी।।*

तुम खुद ही जीव हो, तुम खुद ही शरीरधारी, क्यों दूसरे शरीरधारियों को सता रहे हो ? तुम उन जैसे हो, वे तुम जैसे हैं। तुम जैसे असहाय, वे भी असहाय है, जरा सोचो, तुममें और उनमें भेद क्या है?

*मारिलै पंचभू मृगला।।*

लेकिन लोग जाते हैं शिकार खेलने। आदमी को छोड़कर दुनिया में कोई जानवर शिकार नहीं खेलता। जानवर मारते हैं एक–दूसरे को, लेकिन भूख लगती हो। भूख के लिये मारते हैं और क्षमा के योग्य हैं, क्योंकि उन्हें कुछ और पता भी नहीं कि पेट कैसे भरें। वही उनका प्रकृतिगत भोजन है। लेकिन बिना भूख के कोई जानवर नहीं मारता। सिंह के पास खरगोश बैठा रहता है, अगर भूख न लगी हो सिंह को, तो कोई हर्जा नहीं, गुफ्तगू चलती है, बातचीत होती है। जंगल की बातें, अफवाहें, कहाँ क्या हो रहा है। भूख न लगी हो तो कोई अड़चन नहीं है। एक आदमी अकेला ऐसा है कि बिना भूख के मारता है, खिलवाड़ में मारता है। यह हद हो गई ।

तुम जाते हो जंगल खिलवाड़ करने सिंह से, बंदूकें लेकर, मचानें बांधकर। यह भी कोई खिलवाड़ है? और सिंह अगर तुम पर हमला मार दे तो यह दुर्घटना है, और तुम अगर उसे मार लो तो यह खेल है, मृगया है। और तुम सारे साज–सामान से जाते हो और सिंह निहत्था। और तुम दूर मचान पर बंदूकें लेकर बैठे हो और सिंह के पास कोई भी आयोजन नहीं सुरक्षा का, और यह खेल चल रहा है। थोड़ा विचारो।

गोरख कहते हैं– अगर मारने का ही कुछ मजा है तो वह जो पंचभूतों से बनी हुई देह है, इसकी गुलामी को मार डालो, इसके मालिक बन जाओ। अगर कुछ खेल का ही मजा है, अगर कुछ वीरता ही सिद्ध करनी है तो इस देह को जीत लो।

*मारिलै पंचभू मृगला। चरै थारी बुधि बाड़ी।*

या उस मन को मारो जो तुम्हारे बुद्धि की बाड़ी को चरे जाता है। लेकिन न तो मन को मारते, न तन को मारते; न तन को जीतते, न मन को जीतते। इनके तो तुम

गुलाम बने हो और निरीह, असहाय पशुओं की हत्या करने चले जाते हो। लोग बैठे हैं, घंटों मछलियाँ मार रहे हैं। आदमी घंटों बैठकर मछलियाँ मारता रहता है, इतनी देर में तो मन मार लिया जाये और जितनी एकाग्रता से लोग मछली मारते हैं.. जरा देखो, लगाकर बंसी ध्यानी जैसा बैठते हैं एकाग्र, दत्तचित्त होकर, इतने दत्तचित्त होकर अगर बैठ जायें तो मन को जीत लें, मन की मछली को मार लें। मगर मन की मछली को मारने में उत्सुकता किसकी है, ध्यान ही नहीं है। एक मछली मार लायेंगे तो बड़ी अकड़ से लौटेंगे, कंधे पर लटका कर उसको।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन आया, मछलियों की दुकान पर खड़ा हुआ, बाहर से ही कहा कि जरा तीन चार बड़ी–बड़ी मछलियाँ तौलकर मेरी तरफ फेंक दो। दुकानकार ने कहा– फेंक दो। क्या हाथ में नहीं ले सकते? उसने कहा कि नहीं, फेंक ही दो। बात असल ऐसी है कि तुम तो मुझे जानते हो कि मैं झूठ बोलना कभी पसंद नहीं करता, पत्नी से जाकर कहूँगा कि मछलियाँ पकड़ी है। तुम फेंकोगे तो मैं पकड़ूँगा। झूठ तो मैं बोल ही नहीं सकता। तो तुम जरा फेंक ही दो, ताकि मैं पकड़ लूँ।

लोग बाजार से मछलियाँ खरीद लाते हैं– यह बताने को कि मछलियाँ मारकर लौटे हैं। मछली मारने वालों की बातें सुनी हैं कभी बैठकर, बड़ी लम्तड़ाम हो जाती है। दो मछलीमार बैठे बात कर रहे थे। एक ने कहा : आज तो हद हो गई, एक ऐसी मछली पकड़ी कि जिसके भीतर सिंकदर जिस पात्र से जल पीता था, वह पात्र निकला। दूसरे ने कहा : यह कुछ भी नहीं, मैंने आज एक मछली पकड़ी, जब उसको काटा तो नेपोलियन रात में जिस लालटेन को जलाकर पढ़ता था, वह लालटेन निकली और जलती हुई। तो पहले ने कहा कि देखो भाई, ऐसा करो, मैं सिंकदर का पात्र वापिस लिये लेता हूँ, लेकिन तुम कम–से–कम लालटेन बुझा दो। छोड़ो, नहीं था सिंकदर का पात्र, मगर कम–से–कम लालटेन बुझा दो। यह तो हद हो गई।

पर लोग शिकार भी इसलिये कर रहे हैं कि वह भी अहंकार की दौड़ है। पशुओं के सामने अपने को श्रेष्ठ करने की चेष्टा चल रही है। मछलियों के सामने। शर्म भी नहीं आती। श्रेष्ठ ही करना हो तो मनुष्यों के सामने अपने को श्रेष्ठ सिद्ध कर लो। और श्रेष्ठ होने का तो एक ही उपाय है, दूसरा तो कोई उपाय नहीं कि तुम मन के मालिक हो जाओ, कि तुम अपने तन के मालिक हो जाओ, कि तुम जान लो उसे जो मन और तन के पार है।

*कथंत गोरख मुकति लौ मानवा, मारिलै रे मन द्रोही।*

एक ही है मुक्ति का द्वार, एक ही है परम स्वतंत्रता की उपलब्धि।

*मारिलै रे मन द्रोही।*

यह जो मन है, यह जो द्रोही मन है, इसे मार ले। द्रोही क्यों? मन नास्तिक है। समझना इसे। मन कभी आस्तिक होता ही नहीं। मन जीता ही 'नहीं' पर है। मन का वातारण 'नहीं' है। 'नहीं' मन का भोजन है। इसलिए मन 'हां' कहता है। 'ना' कहने में बड़ा प्रसन्न होता है। 'ना' कहने में बड़ा आंदोलित, आनंदित होता है। तुम जरा जांच करना। जब भी तुम 'नहीं' कहने में समर्थ हो जाते हो तब मजा आ जाता है, रस आ जाता है। ऐसी बातों में तुम 'नहीं' कह देते हो जिन्हें 'नहीं' कहने का कोई कारण ही नहीं था। सोचना कि क्यों तुमने 'नहीं' कहा? छोटा बच्चा है माँ से कह रहा कि बाहर खेल आऊँ? नहीं ! कोई कारण नहीं है 'नहीं' कहने का। बाहर सूरज निकला है, स्वच्छ हवायें हैं, वृक्ष हैं, पक्षी गीत गा रहे हैं, 'नहीं' कहने का कोई कारण नहीं है। लेकिन 'नहीं' तत्काल आती है। नौकर तनखाह माँगता है कि आज तनखाह मिल जाये... कल ले लेना। जैसे कि आज देना असंभव है। नहीं, लेकिन अभी तो 'नहीं' कहनी ही होगी।

'नहीं' कहने से तुम्हें बल मिलता है। इसलिये छोटा-छोटा आदमी भी, छोटे-छोटे पद पर भी जो बैठा है, वह भी मौका पाकर 'नहीं' कहने का मौका नहीं छोड़ता। चपरासी बैठा है दफ्तर के सामने, तुम पहुँचे : 'साहब हैं? वह कहता है : नहीं'। फिर आना !' वह यह दिखलाना चाह रहा है कि समझा क्या है अपने को ! होओगे लाट साहब अपने घर के, अभी लाट साहब मैं हूँ। चपरासी भी ऐसे बोलता है। स्टेशन गये हो टिकिट खरीदने, टिकिट बाँटने वाला क्लर्क कुछ काम भी न हो तो भी रजिस्टर खोल कर उलटने-पलटने लगता है। वह यह कह रहा है कि खड़े रहो, ऐसे कई खड़े रहते हैं। ऐसे तुम जैसे आते ही रहते हैं। क्या समझ रखा है अपने-आपको? ये सब बातें कही जा रही हैं, जब वह बिना कहे चुपचाप अपना रजिस्टर पलट रहा है।

तुम खुद भी अपनी जांच करना, तुम भी यही करते हो। रास्ते पर खड़ा हुआ पुलिसवाला रोक देगा तुम्हें कि रूको, चाहे अभी रुकने का कारण हो या न हो, चाहे जरुरत हो चाहे जरुरत न हो।

तुम आदमी के जरा मन को पहचानो। मन जीता है 'नहीं' पर; 'नहीं' उसका पोषण है नकार उसकी आत्मा है। इसलिये मन संदेह करता है, इंकार करता है, विरोध करता है। गोरख ने उसे द्रोही कहा है और वही तुम्हारे जीवन को धीरे-धीरे निषेधा से भर देता है। और जहाँ निषेध है वहाँ अंधकार है। जहाँ निषेध है वहाँ निराशा है।

जहाँ निषेध है वहाँ मृत्यु के सिवाय कभी कुछ भी न घटेगा। विधेय में होती है सुबह। विधेय में प्रकाश का जन्म है। विधेय में ही परमात्मा का अनुभव है।

आस्तिकता का अर्थ होता हैः 'हां' कहने की क्षमता। यह सवाल ईश्वर को ही 'हां' कहने का नहीं है। ऐसा मत सोचना कि ईश्वर को 'हां' कह दिया, अब सारी दुनिया को 'ना' कहने के तुम हकदार हो गये। यह कोई आस्तिकता नहीं है।

आस्तिक का अर्थ होता है– 'हां' जिसको सुगम हो गई; जिसमें 'हां' सरलता से बहती है; जिसे 'ना' मुश्किल हो गई। नास्तिक का अर्थ है– सौ में निन्यानबे मौके पर वह 'नहीं' कहेगा। और अगर 'हां' कहना भी पड़ेगा तो इस ढंग से कहेगा उसके 'हाँ' में भी 'नहीं' का स्वर होगा, 'नहीं' का स्वाद होगा। और जब भी मौका मिल जायेगा तो वह 'हां' को बदल कर 'नहीं' कर देगा।

फिर आस्तिक कौन है? आस्तिक वह है जो सौ में निन्यानबे मौके पर 'हाँ' कहेगा, सरलता से कहेगा, सुगमता से कहेगा, बेझिझक कहेगा, बिना नानुच कहेगा, बेशर्त कहेगा और अगर सौवीं बार उसे 'नहीं' कहनी भी पड़ी तो मजबूरी में कहेगा, क्षमा मांगते हुए कहेगा, और जैसे ही अवसर आ जायेगा 'हाँ' में बदलने का, वह 'नहीं' को 'हाँ' में बदल लेगा। यह आस्तिक और नास्तिक की परिभाषा है। ईश्वर को मानना न मानना गौण है। आत्मा को मानना गौण हैं। अगर तुमने 'हाँ' कहने में कुशल होते गये, निष्णात होते गये, तो आत्मा–परमात्मा तो दूर, तुम जीवन को भी जानने से वंचित रह जाओगे। आकाश तारों से भरा रहेगा, लेकिन तुम्हारी आँखों में अंधेरा होगा। सुबह ऊगेगी लेकिन तुम अंधे रहोगे, क्योंकि 'नहीं' की परतें आदमी को अंधा करती हैं।

कोई 'नहीं' में जी थोड़े ही सकता है। 'नहीं' का अर्थ ही होता है जो नहीं है, उसमें कैसे जियोगे? और अधिक लोग नहीं में जीने की कोशिश कर रहे हैं, इसलिए उनका जीवन छिन्न–भिन्न है, खिन्न है, उदास है, रूखा–सुखा है, रस–विहीन हैं। उनका जीवन बस कामचलाऊ जीवन है। उसमें फूल नहीं खिलते, उसमें साज नहीं बजते, उसमें नृत्य नहीं होता, उसमें प्रेम नहीं पकता, उसमें प्रार्थना नहीं लगती। ये सब लगें कैसे ? रस धारा ही नहीं तो प्रार्थना के फल कैसे लगें? रस ही नहीं बसता, जड़े रस ही नहीं लेतीं पृथ्वी से, तो फूल कैसे खिलें, नृत्य कैसे हो, गान कैसे हो?

जिस व्यक्ति के जीवन में 'हाँ' आ जाती है उसके जीवन में काव्य आ जाता है। अब तुम फर्क समझना। 'नहीं' है मन का स्वभाव और 'हाँ' है हृदय का स्वभाव। इसलिये जो 'हाँ' कहता है, वह धीरे–धीरे हृदय में सरक जाता है और जो 'नहीं' कहता

है, वह धीरे–धीरे सिर में ही वास करने लगता है। 'नहीं' है तर्क, 'नहीं' है संदेह, 'हाँ' है श्रद्धा, 'हाँ' है भरोसा। और उस भरोसे में ही जीवन का प्रभात है।

*कथंत गोरख मुकति लै मानवा....।*

अगर मुक्ति चाहिये हो, स्वातंत्र्य चाहिये ही, क्योंकि स्वतंत्रता तो सबसे बड़ी विधायकता है।

*मारिलै मन द्रोही।*

जो इस द्रोही मन को, नास्तिक मन को, नकार करने वाले मन को जीत ले, मार ले।

*जाके बप वरण मांस नहीं लोही।*

और इसे मारने में कोई हिंसा नहीं होगी, क्योंकि न तो इसमें माँस है, न लहू है, न देह है। यह मन तो केवल एक धारणा है। इसको मारने में कोई हिंसा नहीं होगी। इसलिये गोरख कहते हैं– मारो ! इसको मारने में कोई हर्जा नहीं है। क्योंकि कोई मरेगा नहीं। यह तो केवल तुम्हारी धारणा है, तुम्हारी भ्रांति है, तुम्हारी मान्यता है। छोड़ दोगे, गिर जायेगी। छोड़ दोगे, बिखर जायेगी। और इसके बिखरते ही तुम मुक्त हो जाओगे।

तुम उन जंजीरों में बंधे हो जो है नहीं। तुम उन कारागृहों में कैद हो, जो है नहीं, लेकिन तुमने मान रखे हैं, तुमने भरोसा कर लिया है।

गुराजिएफ बहुत दिनों तक कजाकिस्तान में रहा। कजाकिस्तान में अब भी यह प्रक्रिया है। छोटे बच्चों को लेकर कजाकिस्तान की स्त्रियाँ जंगल में काम करने जाती है, खेत में काम करने जाती है, तो स्त्रियों को कुछ–न–कुछ उपाय करने पड़ते हैं बच्चों के लिये। उन्होंने एक बड़ी अद्भुत प्रक्रिया खोज निकाली है, सदियों से वहाँ चल रही है और वह कारगर है। वह छोटे बच्चे को बिठा देती हैं और उसके चारों तरफ खड़िया से एक लकीर खींच देती है और उस बच्चे को कह देती हैं, इसके बाहर तू नहीं निकल सकेगा, कोई कभी नहीं निकल सका है। अब बचपन से ही यह बात कही जाती है और गांव भर के बच्चे को कही जाती है। सब बच्चे हैं जानते हैं कि खड़िया की रेखा के बाहर नहीं निकला जा सकता। कोई बच्चा नहीं निकलता। निकल ही नहीं सकते, तो कैसे निकलोगे? ये सम्मोहि हो जाते हैं बच्चे और बच्चों तक ही बात नहीं है, गुरजिएफ ने लिखा है कि तुम किसी बड़े आदमी के पास खड़िया खींच दो और वह नहीं निकलेगा। गुरजिएफ तो चौका जब उसने देखा कि उसने कोशिश की लोगों को कि

निकल आओ, हिम्मत दी कि आ जाओ, मत घबड़ाओ– ये निकलने की कोशिश भी करते हैं तो कोई अदृश्य दीवाल ठीक लकीर के ऊपर खड़ी हुई उनको वापिस लौटा देती है। वे उससे आकर टकरा जाते हैं। कोई अदृश्य दीवाल, जो वहाँ है ही नहीं। गुरजिएफ मजे से भीतर–बाहर–आ–जा रहा है। ये देख भी रहे, मगर फिर भी उनके लिये है दीवाल।

तुमने कभी सम्मोहन का कोई खेल देखा ? सम्मोहन करने वाला जो भी कह देता है सम्मोहित व्यक्ति को, वह वैसा ही व्यवहार करने लगता है। तुम्हारा मन एक तरह का सम्मोहन है। और तुम हँसना मत कि ये कजाकिस्तान के लोग नासमझ है, तुम्हारी भी हालत वही है। अगर गीता को पैर लग जाये तो जल्दी से नमस्कार करते हो। बचपन में कहा गया है कि गीता को पैर लग जाये, पाप हो जायेगा। मुसलमान का लग जाता है, उसे कोई फिक्र नहीं होती, मजा आ जाता है कि एक पुण्य का कृत्य हुआ। तुम्हारा कुरान से पैर लग जाये, तुम्हे भी कोई अड़चन नहीं होती। तुम मंदिर के सामने से निकलते हो, तुम्हारे हाथ अपने–आप जुड़ जाते हैं, जोड़ने नहीं पड़ते, यंत्रवत। मस्जिद के सामने तुम्हें ही याद नहीं आती कि मस्जिद थी और हाथ जोड़ने थे। ये सब सम्मोहित प्रक्रियायें हैं। ये तुम्हारे भीतर बैठ गई हैं।

मन एक तरह का सम्मोहन है, है नहीं, बस भरोसे में है। मान लिया है तो है, छोड़ दोगे तो गिर जायेगा। हत्या नहीं होगी कुछ, इसलिये कहते है गोरख कि ऐसा मत सोच लेना कि मैं मारने–धारने की बातें कर रहा हूँ। इसमें न मांस है, न खून है, न जीवन है, एक थोथी धारणा है। और दुनिया में अलग–अलग तरह के मन हैं । जितनी जातियाँ है, जितनी संस्कृतियाँ है, जितने समाज है, अलग–अलग तरह का मन पैदा करते है। फिर जैसा मन पैदा हो जाता है, वह उसी के अनुसार चलता है, उससे भिन्न चलने में अड़चन हो जाती है। उसके भिन्न का भरोसा ही नहीं आता कि मैं चल सकता हूँ।

तुम अपनी ही जांच करना और तुम पाओगे कि तुम्हारा मन समाज के द्वारा दिया गया एक संस्कार है, और कुछ भी नहीं। तुम जिस दिन समझोगे उसी दिन गिरा सकते हो।

*पावड़ियां पग फिसलै अवधू, लोहै छीजंत काया।*

और कहते हैं गोरख कि ऊपर के वेश इत्यादि बदल लेने से कुछ भी न होगा, क्योंकि हमारे खड़ाऊँ से भी पैर फिसलते देखा है। बड़ी प्यारी बात कहते है–

*पावड़ियां पग फिसलै अवधू।*

खड़ाऊ तक से पैर फिसल जाते हैं, हमने देखा है। खड़ाऊँ यानी साधु–संन्यासी बजाते फिरते हैं न खड़ाऊँ। खड़ाऊँ से भी पैर को फिसलते देखा है। खड़ाऊं नहीं बचा सकती, भीतर का बोध ही बचा सकता है। ऊपर के उपचार, ऊपर के क्रिया कांड नहीं बचा सके, केवल अंतर की ज्योति ही बचा सकती है।

*पावड़ियां पग फिसलै अवधू लोहै छीजंत काया।*

और तुम शरीर को कितना ही सम्हाल लो–योग, तप, व्यायाम–लोहे जैसा बना लो शरीर को, तो ही छीज ही जायेगा एक दिन, देर–अबेर।

*लोहै छीजंत काया।*

हमने तो लोहे जैसे शरीर को भी छीजते देखा है, मरते देखा है। इसलिए इस पर व्यर्थ समय खराब मत करो। सुंदर से सुंदर देह भी सड़ जायेगी। सबल से सबल देह भी गल जायेगी। और तुम हैरान होओगे यह जानकर कि कितनी सबल देह बनाने की कोशिश की जाती है, उतनी बुरी तरह गलती है, क्योकि जबदरस्ती हो जाती है। गामा के पास सबल देह थी, और क्या देह चाहिये, लेकिन सड़–सड़कर मरा गामा। क्षय–रोग से मरा। जरूरत से ज्यादा शरीर को बांधने की कोशिश की, अनाचार हो गया। गुनिया के पहलवान अक्सर बुरी तरह से मरते हैं, बुरी बीमारियों से मरते हैं। अस्वभाविक चेष्टा का परिणाम बुरा होता है। तुम सोचते हो, पहलवानों की देह स्वाभाविक है ? नहीं, जरा भी स्वाभाविक नहीं है। वे जो मसलें उठती हुई दिखाई पड़ती हैं, वे स्वाभाविक नहीं है, चेष्टागत हैं, हजार–हजार दंड–बैठक रोज लगा–लगाकर के, जबरदस्ती कर–कर मसलों को उभारा गया है। उनके उभारने में ऊपर से तो बड़ी ताकत मालूम होने लगी, लेकिन भीतर सब खोखला हो गया। यह स्वाभाविक नहीं है प्रक्रिया।

गोरख कहते हैं कि लोहै छीजंत काया... हमने तो ऐसे लोगों की देह को भी आखिर छीजते देखा, जो लोहे जैसे मालूम पड़ते थे। इसलिये व्यर्थ की चेष्टाओं से मत लगो। योगी लग जाते हैं इस तरह की चेष्टाओं में–कि काया को पवित्र करें, काया को दृढ करें, काया को मजबूत करें, काया को ऐसा करें– वैसा करें। काया में ही उलझ जाते हैं। काया की माया के ऊपर उठ ही नहीं पाते। साक्षी तक पहुँचने का तो सवाल ही नहीं। घर की सफाई में लग गये, मालिक की तो याद ही भूल गई। और घर तो सभी गिर जायेंगे, झोपड़े भी गिरते हैं और महल भी गिर जाते हैं।

*पावड़िया पग फिसलै अवधू....।*

बड़ा प्यारा प्रतीक लिया है कि खड़ाऊँ से भी पैर फिसलते देखे है। हम सब जानते हैं, खड़ाऊँ से भी पैर फिसल जाते हैं। सच तो यह है खड़ाऊँ से जितने जल्दी फिसलते हैं, और किसी चीज से नहीं फिसलते। खड़ाऊँ पर चलकर देखना जरा। खड़ाऊं से और जल्दी फिसल जाते है। क्यों? क्यों? क्योंकि खड़ाऊँ एक अस्वभाविक चीज है। पकड़—पकड़कर चलना होता है। अंगुलियों के बल पर ही खड़ाऊँ को सम्हालना होता है, वजनी भी होता है, लकड़ी की होती है।

औपचारिक रूप से जो लोग जीते हैं, ऊपर—ऊपर का आडंबर करके जो जीते हैं, उनके गिर जाने की संभावना बहुत ज्यादा है। इससे तो सीधे—सादे सरल लोग अच्छे है। उनके गिरने का डर नहीं है। वे खड़ाऊँ पर चलते ही नहीं है। उनके गिरने का डर नहीं है, क्योंकि वे कोई धोखा और पाखंड करते ही नहीं है, वे तो सीधे—साफ हैं। प्रकृति के अनुकूल चलते हैं तो गिरने का कोई डर नहीं हैं।

गोरख सहज—योग के पक्षपाती हैं। वे कहते हैं— जहाँ तक बन सके प्रकृति के अनुकूल ही परमात्मा को साधना, प्रतिकूल साधने की कोशिश कठिनाइयों में ले जायेगी। सम्यक आहार करना, न कम न ज्यादा, तो फिसलोगे नहीं। कुछ हैं कम आहार करते हैं, कुछ हैं जो ज्यादा आहार करते हैं, दोनों के फिसलने का डर है। जो कम आहार करता है वह भी चौबीस घंटे आहार की सोचता रहेगा और जिसने ज्यादा कर लिया है, वह चौबीस घंटे ज्यादा करने के कारण पीड़ित, बोझिल रहेगा। जिसने कम किया है उसके भीतर बेचैनी रहेगी, क्योंकि भूख कायम है, भूख मांग करेगी और जिसने ज्यादा कर लिया है, वह बोझिल हो गया है, उस पर तंद्रा छा जायेगी, मूर्च्छा छा जायेगी, उसे ध्यान मुश्किल हो जायेगा।

दोनों के लिये ध्यान मुश्किल है। जो भूखा ध्यान करने बैठा है, उसे भूख की याद आयेगी। भूखे भजन न होई गुपाला। और जो ज्यादा भोजन करके बैठ गया है, उसको नींद आयेगी। क्योंकि जैसे ही ज्यादा भोजन कर लिया, शरीर कहता है कि अब विश्राम करो, ताकि पचा सको, सब काम बंद करो, अब सारी शक्ति पचाने में ही लगानी जरूरी है। इसीलिये तो भोजन करने के बाद एकदम नींद आने लगती है। ज्यादा कर लोगे तो उसका अर्थ इतना हुआ कि अब पेट कहता है, अब सारी शक्ति पचाने में लगानी है। बुद्धि से भी पेट अपनी शक्ति को वापिस ले लेता है। इसलिये नींद आती है। नींद का वैज्ञानिक कारण यही है भोजन के बाद, कि जो शक्ति बुद्धि में काम करती है, मस्तिष्क को जगाकर रखती है, पेट उसको भी वापिस बुला लेता है, क्योंकि संकटकाल की

स्थिति पैदा कर दी तुमने। अब कहीं भी शक्ति जा नहीं सकती, पेट में ही होनी चाहिए, तभी पच सकेगा। नहीं तो पचेगा नहीं, तो बोझ हो जायेगा, शरीर पर जहर हो जायेगा। और जब मस्तिष्क की शक्ति पेट में चली जाती है तो तुम्हें नींद आने लगती है। नींद का और कोई मतलब नहीं होता। इसलिये उपवास करोगे तो नींद नहीं आयेगी, क्योंकि जब उपवास किया तो पेट को शक्ति की जरूरत ही नहीं है पचाने के लिये। तो शक्ति लौट–लौटकर मस्तिष्क में चली जायेगी, रात–भर तुम्हें जगाये रखेगी।

सम्यक आहार चाहिये, न कम न ज्यादा। सम्यक व्यायाम चाहिये, न कम न ज्यादा। सारी चीजें सम्यक चाहिये। सम्यक शब्द को स्मरण रखना, क्योंकि वह सहज–योग की आधारशिला है।

*पावड़ियां पग फिसलै अवधू, लोहै छीजंत काया।*
*नागा मूनी दूधाधारी, एता जोग न पाया।।*

गोरख कहते हैं– तुमसे स्पष्ट कहे देता हूँ कि नग्न रहने से किसी ने कभी परमात्मा नहीं पा लिया है। नग्न तो सारी प्रकृति है, तुम भी नग्न हो जाओगे तो क्या होगा ? मौन रहने से किसी ने परमात्मा नहीं पा लिया है। मौन तो पत्थर भी है, पहाड़ भी हैं, वृक्ष भी हैं। मौन रहने से कोई परमात्मा को नहीं पा सका है।

नागा मूनी दूधाधारी....।

और तुम दूध ही दूध पी कर रहोगे तो भी परमात्मा को नहीं पा लोगे, क्योंकि सभी बच्चे दूध ही पीकर रहते हैं, कोई परमात्मा को नहीं पा लेता। इसका यह अर्थ मत समझ लेना कि  गोरख कह रहे हैं कि मौन अच्छा नहीं है कि गोरख कह रहे है कि नग्नता में कोई पाप है।

नहीं, गोरख इतना ही कह रहे हैं कि नग्न रहने में तुम्हें सुखद मालूम पड़ता हो, प्रीतिकर लगता हो, स्वाभाविक लगता हो, मजे से रहना, मगर यह मत सोच लेना कि नग्न रहने से ही कोई परमात्मा को पा लेता है। कपड़े पहने–पहने भी परमात्मा पाया जाता है। परमात्मा और आदमी के बीच कपड़े बाधा नहीं है– बाधा मन है। इसलिये कपड़ों को गिराकर यह मत सोच लेना कि हो गया काम पूरा।

दिगंबर जैन मुनि यही कर लेते हैं। सारी जिंदगी का अभ्यास यही होता है। पाँच सीढ़ियाँ पार करते हैं। एक–एक सीढ़ी के पार करने में दो–दो, तीन–तीन, चार–चार साल लग जाते हैं। पाँचवी सीढ़ी पर जाकर नग्न हो पाते हैं। पन्द्रह–बीस साल की लंबी चेष्टा और कुल परिणाम इतना कि नग्न हो गये, इससे कुछ मिल न जायेगा। तुम जरा

जैन दिगंबर मुनि को देखना। उसके चेहरे पर तुम कोई प्रतिभा की आभा न पाओगे, आनंद का अहोभाव न पाओगे। सब सूखा–सूखा, सब रूखा–रूखा... जैसे कोई वृक्ष सूख गया हो, जिसमें अब पत्ते नहीं लगते, फूल भी नहीं आते, जिस पर अब पक्षी भी अपना नीड़ नहीं बनाते। लेकिन जो मानते हैं जैन मुनि को, वे तो कहेंगे अहा.. कैसा वैराग्य। अपूर्व वैराग्य।

हमारी मान्यतायें ऐसी हैं कि अगर हमारे चित्त में धारणायें बैठी हों तो हम उन्हीं धारणाओं के अनुसार देखते हैं। तुम जाकर देखोगे तो तुम्हें कुछ भी न दिखाई पड़ेगा कि कौन–सा आनंद है, कौन–सा परमात्मा का अनुभव हुआ, कौन–सी समाधि है। न तो कोई समाधि का संगीत बजता सुनाई पड़ता है। यह आदमी बिल्कुल मुर्दे जैसा हो गया है। लेकिन जो मानते हैं वे कुछ और कहेंगे। उनका देखने का ढंग, उनकी आँख पर एक चश्मा है। सबकी आँखों पर चश्में है। और चश्मे उतारने जरूरी हैं। और जो सब चश्मे उतार देता है, वही मन से मुक्त होता है। मन सारे चश्मों का नाम है– हिन्दू चश्मा, मुसलमान चश्मा, जैन चश्मा। चश्मे ही चश्मे हैं और जब आँख नग्न हो जाती है, स्वच्छ होकर देखती है, बिना किसी चश्मे के, तो वह दिखाई पड़ता है, जो है।

नग्न होने का कोई विरोध नहीं है गोरख को, न मौन होने से कोई विरोध है। इतना ही कह रहे हैं कि इसी को सब मत समझ लेना, क्योंकि कोई आदमी मौन तो हो सकता है और भीतर सारा पागलपन चल रहा है। ऊपर से मौन बैठ गये। सच तो यह है कि ऊपर से मौन बैठ जाओगे तो जो–जो कहकर निकाल लेते थे, वह भी भीतर–भीतर घूमेगा, निकलने की भी जगह न रही, निकास भी न रहा। जैसे घर की नाली थी, उसको भी बंद कर दिया, उसमें से कुछ बाहर निकल जाता था कूड़ा–कचरा, अब वह भी बाहर नहीं जाता, वह भीतर ही भीतर घूमेगा। बातचीत करके इसीलिये तो लोग हल्का अनुभव करते हैं। मिल बैठ दो यार, जरा बातें हो गई, कुछ तुमने कहीं कुछ उनने कहीं, कुछ तुमने सुनीं कुछ उनने सुनीं, दोनों हलके होकर घर आते हैं। कहते है आज मित्र मिल गया, बड़ा आनंद आया। आनंद कुछ भी नहीं आया, कुछ कचरा तुमने उसमें डाला, कुछ कचरा उसने तुममें डाला। तुम भी हल्के हुए कुछ, वह भी हल्का हुआ कुछ। फिर नया कचरा पुराने से बेहतर लगता है। जैसे आदमी मरघट ले जाता है न किसी को कंधे पर रखकर, तो रास्ते में कंधे बदल लेते हैं। इस कंधे से अर्थी हटा ली, उस कंधे पर रख ली। अर्थी का वजन तो वही है, लेकिन नये कंधे पर थोड़ा कम मालूम पड़ता है। फिर थक जायेंगे तो फिर दूसरे कंधे पर रख लेंगे। ऐसे तुम कचरे का लेन–देन करते रहते हो। नया कचरा थोड़ा अच्छा लगता है–परिचित है। पुराने कचरे से तुम ऊब गये थे, किसी की खोपड़ी में डाल देना चाहते थे।

जो आदमी मौन होकर बैठ गया, उसकी मुसीबत समझो। अब सारा कचरा उसी के भीतर घूमेगा। ऊपर से तो मौन, भीतर विक्षिप्त होने लगेगा। मौन पर्याप्त नहीं है, पहले ध्यान। ध्यान का अर्थ होता है, भीतर अब शांति आ गई। अब भीतर कुछ है ही नहीं। फिर अगर तुम मौन रहो तो उस मौन में एक सौंदर्य होगा और ऐसा ही नग्नता के संबंध में भी समझना। भीतर तुम निर्मल हो गये, छोटे बच्चे की भाँति हो गये। फिर तुम नग्न हो गये तो उस नग्नता में सौंदर्य होगा। अपूर्व सौंदर्य होगा, निर्दोषता होगी।

*हिरदा का भाव हाथ में जाणिये, यह कलि आई षोटी।*

यह जमाना बुरा आया है। अब तो एक ही उपाय है कि जो तुम्हारे ह्रदय में हो उसको तुम्हारे आचरण में बहने दो। अब वे दिन गये, जब लोग सूक्ष्म में जीते थे। अब तो स्थूल में बताना होगा। यह स्थूल युग आया। 'यह कलि आई षोटी।' यह जमाना स्थूल का है। लोग शरीर को मानते हैं, आत्मा को तो मानते ही कहाँ? लोग संसार को मानते हैं, परमात्मा को तो मानते ही कहाँ? लोग तो पत्थर को मानते हैं, प्रेम को मानते ही कहाँ? यह जमाना तो खोट आया। यहाँ तो लोग जिसका दर्शन हो सके, स्पर्श हो सके, इंद्रियों से पकड़ में आ सके, उसको मानते है। तो अब तुम्हें धर्म को भी इस योग्य लाना होगा।

*हिरदा का भाव हाथ में जाणिये।*

इसीलिये अब ह्रदय में ही रखने की बात नहीं है, इसे अपने हाथ में लाना होगा। अगर ह्रदय में प्रेम है तो हाथ से प्रेम बांटना होगा। अगर ह्रदय में देने का भाव है तो हाथ से देना होगा। अगर ह्रदय में सेवा है तो हाथ से करनी होगी। अब ह्रदय से ही काम पूरा न हो पायेगा। अब तुम जो सोचते हो, जो भीतर जीते हो, उसे बाहर भी अभिव्यक्ति देनी होगी। यह जगत तो अब आचरण को ही पकड़ सकेगा। अब ह्रदय के भाव न पकड़ सकेगा। पुराने दिन और थे। गोरख बड़ी ठीक बात कह रहे हैं।

बुद्ध बैठ गये बोधिवृक्ष के नीचे और हम सबने पहचान लिया था। जो पहचान सकते थे, उन्होंने पहचान लिया था। उस सन्नाटे में, उस चुप्पी में भी बुद्ध को पहचान लिया था। ह्रदय का भाव ह्रदय में ही रहा था, बाहर नहीं आया था, हाथ में प्रगट नहीं हुआ था। बुद्ध ने करुणा बरसाई, मगर वह ह्रदय की थी; अस्पताल नहीं खोले, नहीं तो हाथ की हो जाती। प्याऊयें नहीं खोलीं, नहीं तो हाथ की हो जाती। बीमारों के हाथ–पैर नहीं दबाये, नहीं तो हाथ की हो जाती।

इस अर्थ में जीसस ज्यादा कलियुग के करीब है; जो ह्रदय का था उसे हाथ में

लाये। अंधों को आँखें दीं, कि लंगड़ों को पैर दिये, कि बीमारों की सेवा की। अगर इस दुनिया में ईसाइयत का प्रभाव बढ़ता जाता है तो इसका और कुछ कारण नहीं है, उसका कारण यह है कि ईसाइयत के पास स्थूल की पकड़ है। और जो पुराने धर्म है— हिन्दू हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं— इनकी पकड़ अभी स्थूल पर नहीं है। इनकी पकड़ अभी भी सूक्ष्म पर है। ये पुराने दिनों की बातें कर रहे हैं। ये सतयुग की बातें कर रहे हैं। मगर 'यह कलि आई षोटी।' अब जमाना और है। जो चीज तुल सकती है तराजू पर, वही मानी जायेगी।

हिंदू बहुत परेशान रहते हैं कि लोग ईसाई क्यों बनाये जा रहे हैं, लोगों को रिश्वत दी जा रही है, लोगों को ईसाई बनाया जा रहा है। यह सब बकवास है। कोई किसी को जबरदस्ती ईसाई नहीं बना रहा है। लेकिन ईसाइयत इस युग के बड़े अनुकूल मालूम पड़ती है। गरीब को लगता है कि कुछ सहारा मिला। बुद्ध ध्यान की बात करते हैं, गरीब को ध्यान से कुछ लेना—देना नहीं है। गरीब कहता है—ध्यान की बात पीछे, भोजन कहाँ है? ईसाई मिशनरी आती है, वह पहले भोजन की बात करती है। ध्यान की तो यह कभी बात करती ही नहीं, वहाँ सिर्फ भोजन ही भोजन है, अस्पताल खोल देता है, स्कूल खोल देता है, कारखाना लगा देता है, अच्छे कपड़े लोगों को मिल जाते हैं, नौकरी मिल जाती है, शिक्षा मिल जाती है। लोगों को लगता है कि यह बात ठीक है, यह धर्म की बात हो रही है।

ईसायत बढ़ती चली गई है। आज दुनिया में एक तिहाई ईसाई है। सारे धर्मों पर छाती चली गई है। और उसका कुल कारण इतना है कि इस देश के धर्म सतयुग की भाषा ही बोले चले जाते हैं। अभी भी हम कहते हैं कि साधु की सेवा करो और ईसाई कहता है कि साधु वह जो सेवा करे। इन दोनों का फर्क समझ लो। साधु आ जाये, हम सब उसके पैर दबाने जाते हैं। जैन तो कहते ही हैं, अगर उनसे पूछो, कहाँ जा रहे हो, वे कहते है, साधु महाराज की सेवा करने जा रहे हैं। यह तो हम सोच ही नहीं सकते कि साधु और हमारी सेवा करे। साधु अगर तुम्हारे पैर दबाने लगे, तुम एकदम उचक कर खड़े हो जाओगे, तुम कहोगे, यह क्या करते महाराज! नरक भिजवाओगे? आप और मेरा पैर दबाते हैं। मुझसे कोई कसूर हुआ? आप नाराज हैं? पैर मैं दबाऊँगा।

मगर ये बातें बदल गई हैं। यह भाषा सतयुग की है, जब साधु के पैर दबाये जाते थे, क्योंकि तब लोगों के पास आँखें भी थीं कि सूक्ष्म को देख सके, हृदय प्रगट था, पारदर्शी था। अब हालत ऐसी नहीं है। गोरख के जमाने में भी न रही होगी। तब तो गोरख कहते हैं—

*हिरदा का भाव हाथ में जाणिये, यह कलि आई षोटी।*
*बदंत गोरख सुणौ रे अवधू, करवै होइ सु निकसै टोटी।।*

अब तो प्रमाण देना होगा। जैसे कि हम नल खोलते हैं न, तो टोंटी में से पानी निकलता है, अंदर हो तो ही निकलता है, अंदर न हो तो अकेले टोंटी खोलने से कुछ नहीं होता।

मैंने सुना है, लारेंस ने अरब के लोगों की बड़ी सेवा की। लारेंस एक अद्‌भुत आदमी था। उसने जितनी अरब–जाति को उठाने की कोशिश की, किसी दूसरे आदमी ने नहीं की। वहाँ कुछ अरबी लोगों को लेकर विश्व–प्रदर्शनी होती थी पेरिस में, तो गया दिखाने। बड़ी होटल में उनको ठहराया। मगर वह बड़ा हैरान हुआ, उनको किसी और चीज में मजा ही नहीं था, वे तो एकदम बाथरूम में घुस जायें। अरब के निवासी, पानी की मुश्किल, वर्षों पानी न मिले, ऐसी हालत। नहाना–धोना कहाँ और यहाँ एकदम टोंटी खोलो कि बस फव्वारा जारी... पानी–पानी, पानी–पानी। जैसे ही वे प्रदर्शनी में एक–से–एक चीजें थीं, मगर वे अरब कहें कि बस अब चलो होटल वापिस। और जैसे ही वे होटल में आये कि वे गये बाथरूम में और जो घुसें तो निकलें ही न। लारेंस ने कहा कि ठीक है, करने दो, इनको नहा लेने दो, मजा कर लेने दो जितना पानी का करना है, बेचारों को पानी की तकलीफ है।

लारेंस ने पूछा– यह तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा, ये टोटियाँ तो हम घर ले जायेंगे। ये टोटियां बड़ी गजब की है। जहाँ दिल चाहो, खोलो, बस पानी ही पानी।

उन गरीब अरबों को क्या पता कि टोटियों के पीछे बड़ा जाल है। टोटियाँ दिखाई पड़ रही है, उनके अंदर पीछे और पाइप लगे हैं, और पाइप दूर सरोवरों से जुड़े हैं, इस सबका उनको क्या पता? वे तो समझे कि यह टोंटी का ही मजा है, यह टोंटी बड़ी जादू की है। खोलकर अपने खीसे में रख लो, छोटी–सी टोंटी, किसको पता चलेगा? ये बड़ी कोशिश कर रहे थे कि किसी तरह टोंटी खुल जाये, वह खुल भी नहीं रही थी, इसलिये देर भी लग रही थी।

गोरख कहते हैं कि टोंटी खोलोगे तो वही निकलता है जो भीतर है। तुम्हारे हाथ प्रमाण होने चाहिये तुम्हारे हृदय के।

*कोई बादी कोई विवादी, जोगी कौं बाद न करनां।*

वे कहते है, पक्ष–विपक्ष में मत पड़ना। यह ठीक वह ठीक, इस झंझट में मत पड़ना। क्योंकि बिना जाने ठीक तय होता ही नहीं। ईश्वर है या नहीं, इस बात में भी

मत पड़ना। ऐसा है वैसा है, इस विवाद में भी मत पड़ना, क्योंकि उस विवाद में जितना समय गया व्यर्थ ही गया।

*अठसठि तीरथि समंदि समावै।*

और जैसे सारे तीर्थ अंततः समुद्र में ही गिर जाते हैं—गंगा हो कि यमुना हो कि सरस्वती हो, कि गोदावरी हो कि नर्मदा हो, जैसे सारे तीर्थों को बनाने वाली नदियाँ अंततः जाकर समुद्र में गिर जाती है—

*यूं जोगी को गुरुमुषि जरनां।*

ऐसे गुरु के मुँह से जो झर रहा है, बस उसको योगी पी ले, पर्याप्त है। उसे वाद—विवाद में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। जैसे सारे तीर्थ समुद्र में गिर जाते हैं, ऐसे ही सारे तीर्थ गुरु की वाणी में गिर रहे हैं। गुरु को खोज लिया, फिर कोई चिंता वाद—विवाद को नहीं करनी चाहिये। फिर रसलिप्त, फिर रसविमुग्ध, फिर उसके साथ एक ताल में आबद्ध हो जाना चाहिये।

*अवधू मन चंगा तौ कठौती ही गंगा।*

और सारी बात मन के चंगे होने की है, आनंदमग्न होने की है, फिर तुम्हें गंगा जाने की जरूरत नहीं, तुम्हारे घर की कठौती में ही गंगा है।

*अवधू मन चंगा तौ कठौती ही गंगा। बांध्या मेला तो जगत्र चेला।*

और एक दफा बंधन से छूट जाये तुम्हारा मन तो सारा जगत तुम्हारा चेला हो जाये। तुम एक बार मुक्त हो जाओ। तुम मत फिरो इस फिक्र में कि इनको समझायें, उनको समझायें, इससे विवाद करें, उससे विवाद करें, इसको जीतें, उसको अपने पक्ष में लायें। इस सबमें समय खराब मत करो। तुम मन से मुक्त हो जाओगे तो सारा जगत तुम्हारा चेला हो जायेगा। फिर जिन्हें भी सत्य की चाह है, वे अपने से खिंचे चले आयेंगे, तुम्हें बुलाने भी उनके घर जाना न होगा। वे तुम्हें खोजते चले आयेंगे।

*बदंत गोरख सति सरूप। तत विचारै ते रेख न रूप।*

और गोरख कहते है कि जिसकी न कोई रेखा है, न कोई रूप है, न कोई परिभाषा है, उसका तुम विचार कैसे करोगे? उसका तो अनुभव ही हो सकता है।

गुरु में डूबो, जिसने जाना है उससे जुड़ो। जिसने पहचाना है उसमें डुबकी मारो। जो स्वयं भी अपरिभाष्य हो गया है, उसका स्वाद लो।

*यहु मन सकती यहु मन सीव।*

यही मन शक्ति है, यही मन शिव।

*यहु मन पांच तत्व का जीव।*

यही मन पाँच तत्त्व हैं, पाँच तत्त्वों से बना हुआ जीव है। यह सारा खेल मन का है। मन मगर बंधन में पड़ा है वासना के, तो तुम संसार में उलझे रहोगे। और मन अगर वासना से उठ गया ऊपर, तो तुम मुक्त हो गये।

*यहु मन ले जे उनमन रहै।*

बस इतना ही कर लो कि इसी मन के रहते–रहते तुम उनमन हो जाओ, अनमन हो जाओ। जिसको झेन फकीर कहते हैं– नो माइंड, वह उनमन शब्द का ही अनुवाद है। उनमन रहै...। ऐसे रहो जैसे मन है ही नहीं। न कोई विचार, न कोई वासना, न कोई भाव। निर्विचार, निर्भाव, निर्वासना, चुप, सन्नाटे में जीयो। यही ध्यान है।

*यहू मन ले जे उनमन रहै। तौ तीनि लोक की बातां कहै।।*

फिर तुम्हारे भीतर से तीनों लोकों के अदृश्य सत्य प्रगट होने शुरू हो जायेंगे।

*दाबि न मारिबा।*

और इस मन को तुम दबा कर न मार सकोगे।

*दाबि न मारिबा, खाली न राषिबा।*

और तुम चाहो कि इसको सदा खाली रख लें, तो भी संभव नहीं है। खाली कोई चीज रह ही नहीं सकती। बड़ा प्यारा सूत्र है। जैसे तुम जल भरते हो नदी से, तुमने अपनी मटकी भरी, गड्ढा हो जाता है वहाँ, लेकिन तत्क्षण चारों तरफ से जल दौड़कर उस गड्ढे को भर देता है। तुम हवा खाली कर लो एक जगह की, चारों तरफ से हवा दौड़कर वहाँ आ जाती है। इसलिये तो गर्मी के दिनों में अंधड़ चलते हैं। क्योंकि गर्मी में कहीं ज्यादा धूप पड़ जाती है सूरज की, तो हवा विरल हो जाती है, स्थान रिक्त हो जाता है। स्थान के रिक्त होते ही आसपास से हवायें दौड़ पड़ती है। इतनी तेजी से दौड़ी है कि अंधड़ मालूम होता है। प्रकृति खालीपन को पसंद नहीं करती, तत्क्षण भर देती है। परमात्मा भी खालीपन को पसंद नहीं करता, तत्क्षण भर देता है। तुम खाली तो होओ... इधर मन खाली हुआ कि उधर परमात्मा भरा। यह सूत्र बड़ा अदभुत है–

*दाबि न मारिबा।*

एक तो .यह खयाल रखना कि मन को दबा–दबा कर मारने की कोशिश में मत लग जाना, नहीं तो मुश्किल हो जायेगी, कभी न मार पाओगे। जिसको दबाओगे वह बना ही रहेगा, वह भीतर बना रहेगा, और भीतर सरक जायेगा। उसका जहर और तुम्हारे प्राणों में फैल जायेगा।

*दाबि न मारिबा, खाली न राषिबा।*

और एक बात पक्की है कि तुम इसे खाली करो, घबड़ाओ मत, यह मत सोचो कि कहीं ऐसे हो गये इस मन को तो छोड़ दिया, फिर रह गये खाली के खाली, शून्य। नहीं, ऐसा होता ही नहीं। तुम शून्य हुए कि पूर्ण आया। इधर शून्य और पूर्ण एक ही सिक्के दो पहलू हैं।

*जाबिना अगनि का भेदं।*

और यही भेदों का भेद है। यह तुमसे रहस्य की बात कहते हैं गोरख, कि यह भेदों का भेद है। यही उस परम अग्नि का भेद है जिसकी शास्त्रों में चर्चा है, कि जल मिटो, मर मिटो। जल जाओ बिलकुल कि तुम बचो ही न। जैसे ही तुम नहीं बचोगे, वैसे ही परमात्मा अवतरित हो जायेगा।

*मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरनण।*
*तिस मरनी मरौ, जिस मरनी मरि गोरख दीठा।।*

मर जाओ, शून्य हो जाओ, मिट जाओ, आ जायेगा परमात्मा अपने–आप। तुम्हें उसे खोजने भी जाना न पड़ेगा।

*दाबि न मारिबा, खाली न राषिबा, जानिबा अगानि का भेदं।*
*बूढ़ी ही थै गुरबाणी होइगी, सति सति भाषांति श्री गोरख देवं।*

और बड़ी मधुर बात कहते हैं कि जिस दिन तुम भर जाओगे परमात्मा से– मन से खाली और आत्मा से भरे– उस दिन तुम पाओगे।

*बूढ़ी ही थै गुरबाणी होइगी।*

तब यह माया ही, यह बूढ़ी माया, बहुत पुरानी है यह माया, कोई नई तो नहीं, यह माया ही तब तुम्हें गुरु का संदेश देने लगेगी। इसी के कण–कण से वेदों का जन्म होने लगेगा। इसी माया से उपनिषद प्रगट हो उठेंगे। इसी संसार से तुम्हें सत्य का संदेश मिलने लगेगा, क्योंकि है तो यह संसार उसी का। छिपा वही है इसमें।

कण–कण पर उसी का हस्ताक्षर है। मगर तुम्हारे पास अभी देखने वाली आंख नहीं है।

*राति गई अधारित गई, बालक एक पुकारै।*

और दिन बीते जा रहे हैं, समय बीता जा रहा है, और तुम्हारे भीतर कोई पुकार है, सुनो उसे। तुम्हारे भीतर से कोई पुकार रहा है कि खोज लो, समय मत गंवाओ।

*राति गई अधराति गई, बालक एक पुकारै।*
*है कोई नगर में सरा, बालक का दुख निबारै।।*

कोई है, जो इस भीतर की पुकार का दुःख निबार दे ? अगर तुम पुकारोगे, जरूर कोई सूरा मिल जायेगा। उसी को गुरु कहते है। तुम पुकारोगे तो जरूर कोई मिल जायेगा जो इस बालक का दुःख निबार दे।

*देवल जात्रा सुंनि जात्राष।*

यह तो व्यर्थ की यात्रा है। इसका कोई मूल्य नहीं है।

*तीरथ यात्रा पाणीं।*

और गये तीरथ, यह तो पानी की यात्रा है, इससे क्या होने वाला है? फिर कहाँ जायें?

*अतीत जात्रा सफल जात्रा बोलै अमृत वाणी।।*

अपने से पार जाओ। अपना अतिक्रमण करो। मनातीत।

*अतीत जात्रा सुफल जात्रा, बोलै अमृत वाणी।।*

और जिस दिन तुम अपने ऊपर उठ जाओगे– अपना अतिक्रमण करोगे– उस दिन तुम पाओगे तुम्हारी वाणी से अमृत बहने लगा, तुम्हारी वाणी वेद उचारने लगी। वेद कंठस्थ नहीं करने पड़े। जब कोई अतिक्रमण कर जाता है, तो वह जो भी बोलता है, वही वेद है।

# नाथ पंथ की लोक स्वीकृति

भारत एक गुलदस्ते जैसा सुन्दर देश है। यह अद्‌भुत और अनोखा भी है। अनेक रंग–बिरंगे फूलगुच्छ से सुगंध फैलाता कोई और देश पृथ्वी पर अस्तित्व में है, मैं नहीं जानता। भाँति–भाँति के रहन–सहन, रीति–रिवाज, मन्नत–मान्यताएँ, धर्म–सम्प्रदाय, पंथ, पर्व, दर्शन, भाषा–भूषा, भूमि, देवस्थान, गुरुधाम, देवरे, पूजा पद्धति, तंत्र–मंत्र, मठ, दरगाह, मंदिर, मस्जिद, पीर–पैगंबर सब भिन्न यहाँ तक रूप–रंग, देह यष्टि तक भिन्न, खान–पान भी एक जैसा नहीं। उसके बावजूद भी सब एक! एक सुन्दर गुलदस्ते की तरह सजा–धजा।

जितने देवी–देवता यहाँ है, उतने तो अन्यत्र कहीं नहीं होंगे। उज्जैन अकेले में चौरासी शिव मदिर हैं। बाकी देवता तो अनगिनत है। अगर गाड़ी में एक बोरा चावल रखकर चलो और एक–एक मुट्ठी चावल प्रत्येक मंदिर पर चढ़ाते जाओ तो कम पड़ जाएँगे।

मेरा जन्म पाकिस्तान के एक छोटे से किसानी गाँव **'पंचगृही'** जिला मियाँवाली में हुआ। विभाजन के बाद हम दो–तीन कैम्पों में रहते–रहाते 1948 ईस्वी में मनासा पहुँचे। यहाँ एक धर्मशाला में हमें ठहाराया गया। मैं घायल था। दाहिनी बगल में आर–पार भाला लगा था। पिता को भरोसा था मैं नहीं मरूँगा। वे कहते इसे मरना होता तब भाला चूकता नहीं, सीधा छाती में घुस जाता। पिता वैसे भी बहुत दिलेर थे। माँ के मन में भय था। खून तो बहुत बह गया। घाव में पीप पड़ा है। वह जबान से तो अशुभ नहीं बोलती थी, किन्तु मन में शुभ भी नहीं सोच पाती थीं। माँ जो थी।

उसी धर्मशाला में एक नाथ परिवार भी रहता था। कनफाड़ा जोगी। वृद्ध होते हुए भी उस परिवार का मुखिया बहुत दबंग था। भैरव नाथ नाम था उसका शरीर से भी वाणी से भी। धूनी रमाता था। गाँजा फूँकता और रात में मदिरा पान भी। माँस भी पकता था।

तीन बेटे थे। बड़ा गुलाबनाथ, दूसरा गोरखनाथ और तीसरा रामनाथ। दोनों के कान फटे थे। मुद्रा पहनते थे। रामनाथ की अभी दीक्षा नहीं हुई थी। माँ मुझे प्रतिदिन सबेरे बड़े नाथ बाबा की धूनी पर ले जाती थी। नाथ बाबा मोरपंखी से आशीर्वाद देते। माँ का विश्वास था, नाथों में बहुत शक्ति होती है। वे तंत्र–मंत्र के जानकर होते हैं। नाथ बाबा के आशीर्वाद से तेरे पर आया संकट टल जाएगा। मुझे उस नाथ बाबा से बहुत डर लगता था। मुझे क्या सबको डर लगता था। डर के बावजूद भी सब उन्हें धोक लगाने जाते और आशीर्वाद लेकर रोग–शोक से मुक्त होने का भरोसा बनाए रखते थे।

एक दिन रामनाथ की दीक्षा का मुहूर्त भी आ गया। क्षेत्र के कई नाथ वहाँ एकत्र हुए। रात भर खूब भजन गाए गयें, इसे वे जलवा कहते हैं। रात भर पूर्वजों और बड़े नाथों को याद किया गया। सबेरे विशेष पूजा हुई। रामनाथ को बैठाया गया। उसके दोनों हाथ घुटनों के बीच दबे थे। धर्मशाला वाले नाथ बाबा ने एक तीखे औजार से उसके कान छेदकर मुद्राएँ पहना दी। ढोल जोर–जोर से बच रहा था। रामनाथ की पीड़ा और चिल्लाहट उस ढोल में दब गई। थोड़ी देर में सब शांत। भजन कीर्तन होता रहा। उसी मैदान के निकट दाल–बाटी बन रह थी। परसादी सबने छककर खाई। खूब मंगलाचार हुआ।

हमारे परिवारों ने भी उस पवित्र आयोजन का आनंद लिया, रामनाथ की सबने धोक लगाई। वह अब पूरा–पक्का नाथ बन गया था। पूज्य भी। मनासा में नाथों के कई परिवार है। आसपास के अंचल में भी बहुत सारे परिवार हैं। उस दिन तो सब वहाँ उपस्थित थे। एक नाथ घोड़े पर बैठकर गाँव–गाँव जाते थे। सारंगी पर भरथरी और दूसरे भजन गा–गाकर भिक्षा लाते थे। उनके पास भी मोरपंखी होती थी। वे सबको मोरपंखी से आशीर्वाद देते थे।

एक और नाथ थे। बौने थे। संध्या समय सिंगी सैली और घूघरे बाँधकर भैरव झोली पर निकलते। उनकी कदमताल अद्‌भुत होती थी। कमर में बंधी एक सैली के नीचे वाले छोर पर दो मोटे घूघरे बंधे रहते थे। वे घघूरे एक बार बायें पाँव पर दूसरी बार दायें पाँव (जंघा) से टकराते थे और एक विचित्र ध्वनि निकालते थे। बौने नाथ एक स्थान पर रुकते नहीं थे। जिस घर या दूकान से भिक्षा लेना होती थी। जोर से अलख

लगाते और उस घर के सामने आगे–पीछे चलते रहते थे। भिक्षा मिल जाने पर आगे बढ़ जाते।

उनके प्रति लोक आस्था बहुत थी। एक हाथ में खप्पर और दूसरे हाथ में मोरपंखी। बच्चों के झुंड उनसे आशीर्वाद लेने उमड़ पड़ते थे। औरतें अपने गोदी के बच्चों को लेकर द्वार पर आ खड़ी होती। 'नाथजी के आशीर्वाद से बच्चे पर किसी की नजर नहीं लग सकती। लगी हो तो दूर हो जाती है। रोग–शोक मिट जाते हैं। लोग नाथ जी की प्रतीक्षा करते थे। कहीं जाना होता, तब नाथजी का समय देखकर फिर जाते। काम तो होते रहेंगे। आशीर्वाद नहीं चूकना है।'

मनासा में एक डाक्टर आए। अजमेर से आए। ऐसा उस डाक्टर ने बताया। साथ में दो साथी भी। कभी सिंधी बोलें, कभी मराठी, कभी पंजाबी, कभी हिन्दी। थोड़े दिनों बाद मालवी भी सीख गए।

रंग काला। अधेड़ उम्र बिखरे बाल, इलाज कमाल। मैं उनके साथ जुड़ा। तब मेरी उम्र 11–12 वर्ष रही होगी। अपने दोनों साथी थोड़े दिनों बाद चले गए। डॉक्टर किशोर अकेला रह गया। मुझे उनसे साथ जोड़ लिया। थोड़े दिनों में मैं पक्का कम्पाउंडर बन गया। डॉक्टर दवा लिखता और मैं इलाज करता। उसने अभावों के रहते कई जटिल बीमारियों का इलाज करने में सफलता प्राप्त की। वैसे उसे बेंडा (पागल) डॉक्टर कहा जाता था। और मुझे छोटा डॉक्टर।

काछी मोहल्ले में एक प्रसूति हुई। प्रसूत दाई माँ ने करवाई थी। बच्चा मर गया और प्रसूता 'प्रसूतिवाय' से पीड़ित हो गई। इलाज हमारा चल रहा था। तीन दिन हो गए थे। बहुत फर्क था। तीसरे दिन मैं इंजेक्शन लगाने गया, तब घर की औरतों ने मना कर दिया। इंजेक्शन मति लगाड़ो। अणने इंजेक्शन की बीमारी नहीं है। ऊपर की छाया लाग गी (इंजेक्शन मत लगाओ, इसे इंजेक्शन का रोग नहीं है, ऊपर की छाया है।)

उन्हीं दिनों मनासा में एक नाथ बाबा कहीं बाहर से आया था। मनासा गाँव से पश्चिम में एक बावड़ी पर इमली के नीचे उसका डेरा था। बहुत बड़ा तांत्रिक था। सबेरे से शाम तक श्रद्धालुओं का ताँता लगा रहता। गंडे–ताबीज, झाड़–फूँक सब करता था। एक मेला जैसा माहौल हो गया था। चढ़ावा खूब आता। मिठाई, मदिरा, मांस, नगदी और पता नहीं क्या–क्या? सब का बंटवारा हो जाता। नगदी नाथ जी की और बाकी सब सेवकों का। गाँजे का धुँआ दिन भर उड़ता रहता। मदिरा की शीशी आते ही नाथ बाबा थोड़ा सा पी लेते और शेष भंडार में जमा हो जाता। रात में माँस पकता। मदिरा

उड़ती। कई महिला दुखियारियों को वह रात में बुलाकर उनका इलाज करता। भूत, प्रेत, डाकन तो रात में ही उजागर होते हैं। बाँझ स्त्रियाँ भी रात में झाड़–फूँक करवाने जाती थीं।

उस समय मनासा छोटा सा कस्बा या कहिए बड़ा गाँव था। बिजली नहीं थी। संध्या के बाद अंधेरा पसर जाता। हाथ–पर–हाथ नहीं सूझता था। उस अंधेरे में भी उस नाथ बाबा को बहुत कुछ सूझता था।

बात हमारी उस प्रसूता मरीज की चल रही थी। उनके परिवार वाले महाराज नाथ बाबा के पास पूछताछ करने पहुँचे, तब उसने बताया 'उस औरत को कच्चा कलवा (बालभूत) लग गया है। उसका जो बच्चा पैदा होते ही मर गया है, वही भूत बनकर उसे सता रहा है। उतारा करना पड़ेगा।

उतारा तैयार हुआ। एक पीतल का थाल, थाल में एक सेर माँस, एक बोतल शराब, एक सेर मावे की मिठाई, एक चाँदी का गोला, सवा पाँच रुपये कलदार, सवा सेर उड़द, दो मुट्ठी कोयले, एक नारियल और एक पुड़ा अगरबत्ती, माचिस, ऊपर काला कपड़े का ढकाव। लोहे के नौ छल्ले। काछी मोहल्ले के निकट उत्तर में शमशान है। वहीं एक नाला भी है। उसी नाले में से भूत प्रकट होकर हाथों हाथ चढ़ावा ले लेगा।

मैंने सारी बात जाकर डॉक्टर को बतलाई। तब मोहनलाल जी सोनी की दुकान पर सब लोग शाम को बैठते थे और गाँजा पीते थे। उस दिन भी डॉक्टर वहीं बैठा था। मेरी व्यथा–कथा सुनकर सब सकते में आ गए। तय हुआ कि मोहनलाल जी स्वयं वह चढ़ावा लें। नाथ का आदमी वहाँ पहुँचे, उससे पहले चढ़ावा झेल लिया जाए।

अगले दिन ही चौदस थी। उसी रात चढ़ावा देना था। मोहनलाल जी खूब लम्बे तगड़े व्यक्ति थे। मुझे साथ लिया। डर था मन में। मोहन जी ने कहा डर मत। तू खाल (नाले) के किनारे बैठे रहना। मैं नीचे उतरूँगा और चढ़ावा ले लूँगा। तू मेरे कपड़ों का ध्यान रखना।

मोहनजी नग्न हो नाले में उतर गए। उधर से एक आदमी चढ़ावे का थाल लेकर नाले में उतरा और तभी नाथ का सेवक भी। वह भी नंगा ही था। तीन छाया आमने–सामने। मोहन जी ने फुर्ती से चढ़ावे का थाल लिया और वापिस मुड़ गए। चढ़ावा लाने वाला भी मुड़कर चला गया। नाथ के आदमी ने जब वहाँ सचमुच का भूत देखा तो वह मुड़कर बेतहाशा भाग खड़ा हुआ।

थाल दुकान पर आ गया। मोहन जी ने थाल पर से काला कपड़ा उतारा। सामान का बँटवारा हुआ। चाँदी का गोला और थाल मुझे दिया। दोनों वस्तुएँ आज भी मेरे पास

हैं। थाल घिस गया। मिठाई बाँटकर खा ली गई। शराब की बोतल डॉक्टर के हिस्से और सवा पाँच रुपये का गाँजा सबके लिए। उड़द सबेरे एक महिला को दिए गए।

नाथ को जब लगा कि उनका सेवक लौटकर नहीं आया, तब उसने सबेरे तलाश करवाया और सदमें में आ गया। उसी दिन झोली झंडे उठाकर नदारद हो गया। सेवक बुखार में तप रहा था। उसका इलाज हमने किया। बेचारी प्रसूता इलाज के अभाव में अधिक बीमार हो गई और अन्ततः उसका इलाज हमने किया।

इस घटना से इतना तो तय हो जाता है कि नाथों के चमत्कारों के प्रति लोक का विश्वास कितना दृढ़ था। उनकी परम्परा, तंत्र–मंत्र शक्ति और उनके 'भेस' के प्रति कितना विश्वास कायम था। भले ही हम इसे अंधविश्वास कहें, किन्तु लोक आस्था, लोक स्वीकृति और लोक विश्वास तब भी कायम था, आज भी कायम है। यह घटना सन् 1950 की है। आज भी नाथ पंथ और उनके तंत्र–मंत्र पर लोक विश्वास अटूट है।

ऐसी अनेक घटनाओं का मैं साक्षी और भोक्ता रहा हूँ। उन घटनाओं से मेरे मन में बार–बार नाथ पंथ को समझने और उसे जानने की जिज्ञासा बलवती होती गई।

आँतरी के एक नाथ मठाधीश ने यज्ञ में घी कम पड़ जाने पर नदी के पानी को घी की तरह उपयोग करवा दिया। इसी प्रकार होली हनुमान जी के नाथ बाबा ने मुझे एक सेर घी उधार दिया। वस्तुतः वह घी नहीं होकर उनके कमंडल का जल था। उससे हमने बाटियाँ चोपड़ी तब वह घी बन गया। अगले दिन जब मैं उन्हें घी लौटाने गया तब उन्होंने उसी पानी वाले कमंडल में घी डलवा दिया और वह पानी में बदल गया।

भानपुरा में इन्द्रगढ़ के दीर्घायु नाथ बाबा रामनाथजी ने शेर को गदहा बनाकर खूँटे से बाँध दिया और सबेरे सबके सामने उसे खोल दिया, तब वह पुनः शेर बन गया। सुनकर ये गप्प से अधिक नहीं लगते, किन्तु विचित्र किन्तु सत्य हैं।

इस प्रकार के चमत्कारों के कारण नाथों के प्रति एवं नाथ पंथ के प्रति लोक का विश्वास अडिग बना हुआ है। यह बात सच है कि इस भरोसे को कुछ नाथ लोग अपना कवच बनाकर ठगी करते रहते हैं। लोक उन्हें भी स्वीकार करता है।

भारतीय संस्कृति उस कमल के समान है जो सरोवर में अपने सुन्दर मनोहर सुवासित शतदलों के साथ अपनी रूप छवि से सुविकसित है। उसके शतदल हमारे अनेक धर्म–पंथ–सम्प्रदाय हैं जो एक ही नाल से जुड़े हैं। उनका पोषण उसी नाल से होता रहता है। वे भिन्न दिखते अवश्य है, किन्तु है तो अभिन्न ही।

नाथ पंथ के अभ्युदय का मूल कारण था भारत के लोक जीवन में व्याप्त आडम्बरों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना। गोरखनाथ ने यही संकल्प लिया था।

मैंने पिछले पृष्ठों में नाथ साधुओं के कुछ प्रसंग दिए है। वे केवल संस्मरण ही नहीं हैं, अपितु उनमें नाथ साधुओं के आचार–विचार और उन पर प्रत्येक स्थिति में लोक विश्वास और पंथ की लोक स्वीकृति के तत्त्व भी उपस्थित हैं। नाथ जोगियों ने मुझे समय–समय पर प्रभावित किया है। यह मेरा पूर्व जन्म का संस्कार भी हो सकता है। मेरी जिज्ञासा सदा बनी रही। आज भी बनी हुई है।

सन् 1957 में मेरा सम्पर्क एक और नाथ जोगी से हुआ। मनासा नगर भी विचित्र है। इसके चारों ओर इमली बाग थे। अब नहीं रहे। कहते हैं इमली पर भूतों का डेरा रहता है। कहावत भी है–**'भूत का डेरा इमली पर'**। मनासा के चारों ओर भूतों के मुकाम थे और भीतर देवताओं के। छप्पन देवी–देवता यहाँ मौजूद। सभी अवतारों के मंदिर यहाँ। सभी लोक देवताओं और लोक देवियों की सत्ता इस नगर में। आज जब इमली बाग नष्ट हो गए, तब बेचारे भूत भटक गए। बेघर बार हो गए। हो सकता है उनमें से कुछ नगर में शेष बचे इमलियों पर आ बैठे हों। अब नगर के चारों ओर हनुमान मंदिर स्थापित हैं। हनुमानजी और भूतों में तो पूरा पक्का बैर ! जो भूत भागकर अन्यत्र चले गए, वे अब नगर में नहीं आ सकते और जो भूत नगर में प्रवेश कर गए, वे अब बाहर भी नहीं जा सकते। नगर के भीतर वाले भूत कभी–कभी जागृत होकर उत्पात मचाने लगते हैं। नगर में भी हनुमान जी के कई मंदिर हैं। थोड़ा सा उत्पात मचा लेने के पश्चात् हनुमान उन्हें चतुर्दिक घेर लेते हैं। जिस प्रकार विक्रमादित्य का बेताल बार–बार वृक्ष पर चढ़कर लटक जाता था, उसी प्रकार ये भूत भी हनुमान के घोटों की मार खाकर फिर से इमलियों पर जा बैठते हैं। ईश्वर करे ये शेष बची इमलियाँ सरसब्ज रहें, जिससे भूत वहीं मुकामी रहे। नगर के मोहल्लों में उतर कर उत्पात नहीं मचाएँ।

मैंने हनुमान जी और भूतों की बात इसलिए उठाई है कि, नागरी प्रचारिणी सभा काशी से सं. 2014 वि. में एक ग्रंथ **'नाथ सिद्धों की बानियाँ'** प्रकाशित हुआ था। इस ग्रंथ का संपादन डॉ. हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने किया था। उस ग्रंथ में 25 नाथ सिद्धों की बानियाँ संकलित हैं। इन सिद्धों में हणुवंतजी का भी नाम है।

पंडित हजारी प्रसादजी की इस पुस्तक में वर्णित हणुवंत जी को नाथ सिद्धों में शामिल करने का अर्थ यही हुआ कि नाथों ने हणुवंत जी को नाथ पंथ का ही एक सिद्ध मान लिया था। उसकी पुष्टि में एक नाथ साधु ने मेरे सम्पर्क में आने पर की थी।

जिस नाथ साधु का उल्लेख मैंने करना चाहा था, 1957 में वे मनासा नगर के दक्षिण में स्थित जोगणियाँ रुण्डी पर आकर रुके थे। यहाँ पर वागरियों की माता कालिका, मीणों की माता जोगणियाँ तथा भीलों की माता नारसी की स्थापना है। यहीं पर हणुवंत (हनुमान) जी की भी एक छोटी सी मूर्ति थी, जो कालांतर में टूट गई और फिर हटा दी गई।

यहाँ की पूजा कभी भील और कभी मीणे करते थे। वागरियों ने भी अपनी माता की पूजा की। अन्ततः इस रुण्डी की माताओं की पूजा मनासा के नाथों के पास आ गई। आज भी नाथ ही यहाँ पूजा करते हैं। बलि होती रहती है। अब वह बलि मंदिर के समक्ष न होकर अन्यत्र होती है।

यहीं पर एक नाथ साधु ने डेरा डाला था। बहुत पहुँचा हुआ नाथ था। मैंने अनेक बार उनकी सेवा की। प्रसाद का लालच सेवा का कारण था।

वे तंत्र–मंत्र विद्या के परम सिद्धनाथ थे। उन्हें नाथजी पुकारा जाता था। कई लोग उनके दर्शन करने आते थे। सबका रोग–शोक वे दूर करते थे। बदले में कभी कुछ भी उन्होंने नहीं लिया। कुछ लोग प्रसाद चढ़ा जाते। वह प्रसाद श्रद्धालुओं में बँटता रहता था। नाथ जी प्रातः बड़े तालाब में स्नान करके आते और साधना में लीन हो जाते। दोपहर चढ़ने तक उनसे कोई नहीं मिल सकता था। फिर वे नगर में भिक्षाटन करने जाते तीन घरों से वे अलख लगाकर रोटी मांगते थे। जितना मिलता उसे वहीं खड़े होकर खा लेते। ओख से पानी पीते और वापिस जोगणियाँ रुण्डी पर लौट आते थे। एक बार एक साहुकार ने आग्रह किया नाथ जी आपके लिए यहाँ कुटिया बनवाना चाहता हूँ। कौन रहेगा कुटिया में? मेरा यहाँ कोई ठिकाना नहीं है। जिस दिन मन करेगा चला जाऊँगा। जब साहुकार ने बहुत आग्रह किया, तब नाथजी ने कहा बच्चों को लड्डु बंटवा दो। कन्याओं को भोजन करवा दो। गायों को चारा डाल दो।

वे जब भी किसी का मांत्रिक अथवा तांत्रिक उपचार करते, तब कहते 'हणुवंत नाथजी महाराज रक्षा राखजो'। तब मैंने एक दिन उनसे डरते–डरते पूछा हणुवंत (हनुमान) तो रामजी के भक्त थे। वे नाथ कैसे हो गए।

नाथ ने हँसते हुए कहा 'रामजी स्वयं नाथों के नाथ आदिनाथ महादेव के भक्त थे। हणुमान जी आदिनाथ रुद्र के अंश अवतार थे, इस कारण वे नाथ ही हुए। आदिनाथ ने अपना अंश रामजी की सहायता हेतु अवतरित किया था। उनके पास एक हाथ लिखी पोथी थी। उस पोथी से उन्होंने मुझे कुछ अंश लिखवाए थे। सब खो गए। कुछ बचे

हैं। इनसे नाथ पंथ पर और लोक का नाथों के प्रति विश्वास और उसका कारण स्पष्ट हो जाता है।

**लोकवाणी–** आदिनाथ महाराज की जैं। सद्‌गुरु मछंदरनाथ की जै, सद्‌गुरु गोरखनाथ महाराज की जै। नाथ नंदी महाराज की जै। राजजोगी भरथरी नाथ की जै। हणुमंतनाथ की जै। चवरासी सिद्धाँ की जै। हगरा नाथाँ की जै। भूल्याँ बिसरदाँ की खम्मा।

*कथा बखाणू सिद्ध जी, सतगुरु गोरख नाथ।*
*हगरा नाथाँ सिमरता, चरण धोकूँ माथ।*
*आडम्बर बढ़या जाणताँ, उपनिसदाँ को सार।।*
*सम्यक भाव जगा दियो, दियो सील संदेस।*
*करुणा में हिरदै धरो, हिंस करो न लेस।।*
*मूरत पूजा रो करयो, गौतम बुद्ध विरोध।*
*एक देव हिरदे बसे, जण को करलो सोध।।*
*समैकाल रे चक्र ती, बुद्ध गया निजधाम।*
*बुद्ध धरम री मानता, पहुँची गामो गाम।।*
*देस विदसाँ में वियो, करुणा को परचार।*
*परदेसाँ जा पउँच्यो, बुद्ध धरम को सार।।*
*जुग बरसा के बीतयाँ, बौद्ध वे गया सिद्ध।*
*महामुद्रा की साधना, तंत्र मंत्र परसिद्ध।।*
*वज्रयान की चौतरफ, ताती चली बयार।*
*पापाचारो बढ़ि गयो, बढ़ आयो विभचार।।*
*महामुद्रा की साधना, सेवे सिद्ध सुखार।*
*ओछा कुल की सुन्दरी, जुवची राखे लार।।*
*गुरु की आज्ञा लेवताँ, करे साधना सिद्ध।*
*जग में व्यापे साधना, पावे घण परसिधि।।*
*मदिरा सेवे सिद्ध जन, जुवती ने मदकाय।*
*सिद्धि साधताँ सिद्धजन, जुवती हाम बिठाय।।*
*भोग करे नित जुवती को, नाम सिद्धि को लेय।*
*भूला भटक्या लोग सब, सिद्धाँ धोक करय।।*
*तंत्र–मंत्र मारण करण, भाँत–भाँत का जोग।*

*बड़ा–बड़ा धनपत जुड़े, देवे सिद्धाँ धोग।।*
*जदै धरप में आ पड़े, विपदा की भरमार।*
*देवपुरख अवसाँ गहे, धरती पे औतार।।*
*गो धरती रगसा हिते, उपज्या गोरखनाथ।*
*नाथ मछंदर गुरु कर्‌यो, धोक्यो चरणा माथ।।*
*आदिनाथ का जाणजो, सिख मछंदरनाथ।*
*सिवजी का पड़सिस विया, सतगुरु गोरखनाथ।।*
*रागस मारण कारणै, ज्युँ अवतर्‌या हणुवंत।*
*सिवजी ने आज्ञा करी, रावण हे मदमंत।।*
*रावण म्हारो हे भगत, परगट सकूँ न मार।*
*जावो म्हारा अंसे झट, रामचन्द्र के लार।।*
*सत्त धरम रे राखणे, गोरख को औतार।*
*आज्ञा ले गुरुदेव की, कर्‌यो साँच परचार।।*
*नाथ पंथ थापन कर्‌यो, कह्‌यो धरम को सार।*
*सिद्धाँ ने सूधो कर्‌यो, मेट्‌यो पापाचार।।*
*सिद्धाँ को अवडम्बरो, लीयो गोरख जाण।*
*बरस–दो बरस संगकर, पूरी करी पिछाण।।*
*चारी दिस भरमण कर, करी उगाड़ी पोल।*
*तंतर–मंतर झूठला, साँचा सिव का बोल।।*
*मूरत देवत धोकताँ, मति करो जनम खुवार।*
*अन्तर हिरदा में बसे, जगती को करतार।।*

## गोरखबानी

*बसती न सुन्य, न बसती अगम अगोचर ऐसा।*
*गगन सिखर महि बालक बोले, ताका नाँव धरुँहु गे कैसा।।*
*अदेखि देखिया देखि, विचारिया अदसिटि राखिया चीया।*
*पाताल की गंगा ब्रहमंड चढ़इबा, तहाँ विमल–विमल जल पीया।।*
*इहाँ त आछै इहाँ ती अलोप, इहाँ ही रचिलै तीनि त्रिलोक।*
*आछे संगे रहे जुवा, ता कारिणी अनंत सिधा, जोगेसवर हुआ।।*
*वेद कतेब न खाणी बाणी, सब ढंकी तलि आणि।*
*गगनि सिखर महि, सबद प्रकासिया तहं घूझे अलख बिनाणी।।*

–गोरखबानी, डॉ. पीताम्बर दत्त, बड़थवाल

*जोग सिद्धि के साधताँ, दीखे ब्रहम प्रकास।*
*मिरमल मन चित्त होवताँ, वेवे तम को नास।।*
*नाथ पंथ निरधार्‌यो, ले सतगुरु की टेक।*
*धिरता–थिरता राखताँ, ब्रहम थापयो एक।।*
*सिव जगती को सरजणो, सोई करे संहार।*
*सिव सिद्धाँ को सिद्ध हे, दाताँ को दातार।।*
*सिव ही आदिदेव हे, सिव हे आदिनाथ।*
*सिव सुभ–सुभ राखैं सदा, सिव नाथाँ का नाथ।।*
*सिव ने आदि गुरु कह्‌यो, सिस मछंदरनाथ।*
*गोरख थाप्यो सतगुरु, सिद्ध मछंदरनाथ।।*
*गोरख ने तपसा तपी, होया सिद्ध सुनाम।*
*गोरख की गादी चली, थप्या मोकरा धाम।।*
*राजा भरथरी साविया, गोरख गुरु का सिख।*
*उज्जैनी को राज तज, पूरी करी परिक्ख।।*
*धन्न–धन्न गोरख गुरु, धन्न धरा शुभ धाम।*
*जठे जनमया सतगुरु, गोरख पावन गाम।।*
*पहलो तो नाथ मा देवजी ने जाणजो,*
*दूजा होया मछंदरनाथ।*
*मछंदर तप तपयो बड़ो, उपज्या गोरखनाथ।*
*पेलो गोरख नंदी वियो, दूजा गिरधर गोपाल।*
*तीजा जोगी भरथरी, चौथा गोरखनाथ।*
*गो तो कह्‌यो पिरथवी, गो कह्‌यो हे गाय।*
*दोई की रगसा कारणे, गोरख धरणी आय।*
*भूल्याँ ने गेलो वताड़यो, भूलयाँ को कर्‌यो सुधार।*
*भटक्याँ ने सूधी वाट दे, गोरख कर्‌यो उद्धार।।*
*मादे तो चाली वेल गोरखजी, नाम तो धराया धरया ठाठ।*
*आखरी तो परगटया भरथरी जी गोरख, भरथरी वराज्या गोरख पाट।*
*नाथाँ का तो नाथ होया मोकरा जी नाथाँ,*
*चवरासी तो मान्या सिद्धा नाथ।*
*पाणी तो होयो गंदो, गंदलो जी नाथाँ,*
*निरमला में जमगी काई गाथ।*

*पंथ तो होयो फाड़ाँ–फाड़ जी कोई,*
*वेवा तो लागो जी कोलाचर।*
*नाथ तो मछंदर सतगुरु वटर्‌या,*
*होया घण माया रे अधीन।*
*बंगाल तो पौंच्या गोरख नाथजी।*
*तोड़ तो दियो इन्दरजाल।*
*मोह तो भांग्यो सतगुरु देव को,*
*दे जागरण की ताल।*
*चेत मछंदर गोरख आयो, सुणो अलख को बोल।*
*नींद बेच ने क्युँ लियो उझक ऊझको मोल।।*
*धरा ती मिटायो धरा धाम ती,*
*फेलायो जो सिद्धाँ ने वामाचार।*
*सोई फैल गयो पंथ में अनघट पंचमकार।*
*कोल तोड़यो पंथ को, धार्‌यो कोलाचार।*
*भूले तो पड़या नाथ पाटवी जी कोई,*
*कूण तो करे ला जी सुधार।*
*गाँजो तो पीवे–पीवे भाँग जी, धतूरा को लागे जी वगार।*
*मांस अने मच्छी खावे सिद्धि कारणे जी नाथाँ,*
*खूब तो लगाड़े दारुधार।*
*तंतर अर मंतर–जंतर साधना जी नाथाँ,*
*मशाण तो जगावे आधी रात।*
*अघट अघोरी भोगे भोग जी नाथाँ,*
*बोले तो बोले अटपट वात।*
*भूल्या तो भटक्या आवे सरपटे जी नाथाँ,*
*लूट तो मचाड़े जोड़े जोग।*
*बाझड़ियाँ ने देव खोराँ पूत जी नाथाँ,*
*कूतरा ज्युँ भोगे राताँ भोग।*
*नाथाँ में तो नाथ आछा मोकरा जी नाथाँ,*
*लाखाँ में तो दीखे, छुट–पुट नाथ।*
*लोग तो पूजे पूरा मान ती जी नाथाँ,*
*नाम तो धरावे गोरखनाथ ।।*

### भावार्थ

आदिनाथ महाराज की जय। सद्‌गुरु मछंदरनाथ की जय। सद्‌गुरु गोरखनाथ की जय। नाथ नंदी जी महाराज की जय। राजयोगी भरथरी नाथ की जय। हणुवंत नाथ की जय। चवरासी सिद्धों की जय। समस्त नाथों की जय। भूल गये नाथों की जय।

मैं सिद्ध सद्‌गुरु गोरखनाथजी की कथा का बखान करना हूँ। सभी नाथों का स्मरण करता हुआ तथा सबके चरणों में प्रणाम करता हूँ।

जब धरती पर बहुत आडम्बर बढ़ गए, तब बुद्ध ने अवतार धारण किया। उन्होंने वेदों और उपनिषदों के सार को समझा, फिर मध्य मार्ग का निर्धारण किया।

भगवान बुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि निर्वाण प्राप्त करने के लिए कठोर तपस्या करना अथवा शरीर को कष्ट कर देना आवश्यक नहीं है। उनका मानना था कि सांसारिक विषयों में लिप्त रहकर भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जैसा महाराज जनक ने प्राप्त किया था। उनका कहना था हमारा आचरण शुद्ध होना आवश्यक है। वे न तो कठोर तपस्या के समर्थक थे और न अधिक भोग के। भोगों को भोगने से भोग की भावना ठीक उसी प्रकार तृप्त नहीं होती, जिस प्रकार अग्नि में घी डालने से अग्नि शांत नहीं होती, अपितु प्रज्ज्वलित होती है। यही बात वागड़ अंचल की कृष्ण भक्त कवयित्री ने बुद्ध के लगभग पच्चीस सौ वर्ष पश्चात् कही है। अन्य संतों ने भी इस मत का प्रतिपादन किया है।

*भोग भोग्याँ अत बढ़े, कद्याँ न धापे जीव।*
*गवरी कसतर बुझ सके, अगन घाल्याँ घीव।।*

— वागड़ की कृष्ण भक्त कवयित्री गवरीबाई, डॉ. पूरन सहगल, साखी —96 (प्रकाशधीन)

बुद्ध ने सम्यक ज्ञान के अनुसार मध्य मार्ग का अनुमोदन किया है। इस गाथा में बुद्ध के इसी विचार को सम्यक भाव कहा गया है। इसी सम्यक ज्ञान को 'अष्टांगिक मार्ग'' कहा गया है। इसके आठ अंग है। (1) सम्यक दृष्टि (2) सम्यक संकल्प (3) सम्यक वाणी (4) सम्यक कर्मान्त (5) सम्यक आजीव (6) सम्यक व्यायाम (7) सम्यक स्मृति (8) सम्यक समाधि।

बुद्ध ने शील, करुणा और अहिंसा का संदेश दिया। उन्होंने मूर्तिपूजा और

बहुदेववाद का भी विरोध किया था। उन्होंने संदेश दिया कि केवल एकचित्त होकर एक ब्रह्म का ध्यान करना ही उचित है।

समय और काल के चक्र के फलस्वरूप बुद्ध का निर्वाण हो गया। बुद्ध धर्म के विचार सिद्धांत पूरे भारत के लोक जीवन में पहुँचे और स्वीकृत हुए। देश व विदेशों में भी बुद्ध के करुणा भाव का प्रचार–प्रसार हो गया और बुद्ध के द्वारा प्रतिपादित बुद्ध धर्म का सार भारत के बाहर विदेशों में भी जा पहुँचा।

युग और बरस बीत जाने के पश्चात् बौद्धों में सिद्धों का वर्चस्व स्थापित हो गया। सिद्धों में महामुद्रा साधना पद्धति का निर्धारण हो गया। वज्रयान के साधक मंत्र–तंत्र साधना में जुट गए। बुद्ध के शील, दया, करुणा और अहिंसा जैसे शीतल स्वभाव के विरुद्ध चारों ओर वज्रयान की गर्म लू लपटें चलने लगीं।

पापाचार बढ़ गया। व्यभिचार होने लगा। महामुद्रा की साधना के बहाने सिद्ध भोग विलास में लिप्त होने लगे। साधक अपने गुरु की स्वीकृति से किसी सुन्दर स्त्री को अपनी साधना के लिए निर्धारित करते थे। उसे अपने समक्ष बैठाकर साधना करते थे। मदिरा स्वयं भी पीते थे और उस सुन्दरी को भी पिला देते थे। साधक और साधन दोनों मदमस्त हो उठते थे। वे नित्य प्रति उस युवती का भोग करते थे। इस प्रकार ये सिद्ध तंत्र–मंत्र, मरण–उच्चाटन आदि सिद्धियाँ प्राप्तकर लोक जीवन में अपना प्रभाव स्थापित कर लेते थे। बड़े–बड़े धनपति उन सिद्धों के वश में हो जाते थे। इस प्रकार लोक जीवन में स्वीकृत बुद्ध धर्म में ऐसा घोर अतिचारी आचरण का विकार आ गया था।

(देखें– नाथ पंथ और निर्गुण संत काव्य, पृ. 99– डॉ.कोमलसिंह सोलंकी)

जब भी धर्म पर विपदा आती है, तब कोई देवपुरुष अवश्य ही धरती पर अवतार लेता है। गो–धरती की रक्षा हेतु गोरख ने अवतार लिया। गोरख ने मछंदरनाथ को अपना गुरु स्वीकार किया। उनके चरणों में धोक लगाई। मछंदरनाथ, आदिनाथ (शिव) के शिष्य हैं। इस प्रकार गोरखनाथ आदिनाथ भगवान शिव के पड़शिष्य मान्य हुए।

जिस प्रकार राक्षसों का नाश करने के लिए हनुमान ने अवतार धारण किया था। भगवान शिव ने हनुमान जी से कहा था, हे हनुमान! रावण मेरा भक्त है। मैं प्रकट रूप से उसे नहीं मार सकता। वह बहुत अहंकारी और अतिचारी हो गया है। तुम मेरे अंश हो। तत्काल जाओ और राम (विष्णु) के साथ जुड़कर राक्षसों का विनाश करों।

उसी परम्परा में गोरख का अवतार हुआ। अपने गुरु की आज्ञा से गोरख ने सत्य का प्रचार करना प्रारम्भ किया। गोरख ने नाथ पंथ की स्थापना की और धर्म का स्वरूप सारे लोक में प्रकट किया।

उन्होंने वामाचारी महामुद्रा साधक बौद्ध सिद्धों का विरोध किया। लोक में व्याप्त पापाचार को समाप्त किया और सिद्धों का प्रभाव क्षीण कर दिया। उन्होंने एक–दो बरस तक उन सिद्धों का संग किया। उनके सारे छल–कपट और पापाचार के तौर–तरीकों को समझा फिर चारों दिशाओं में भ्रमण कर उनकी पोल खोलना शुरू कर दी।

गोरख ने संदेश दिया कि तंत्र–मंत्र सब झूठे हैं। केवल शिव का नाम स्मरण ही सत्य है। मूर्तियों और अनेक देवताओं को धोक लगाना व्यर्थ है। ऐसा करके अपना जन्म नष्ट मत करो। जगत का कर्तार तो अन्तर्घट में बसा है। उसी को आराधो। अपने हृदय घट में उसके ही दर्शन करो।

गोरखनाथ ने अपनी वाणी में संदेश देते हुए कहा है–'परम तत्त्व तक किसी की भी पहुँच नहीं है। वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। वह ऐसा है जिसे हम न तो बहुल कह सकते हैं न शून्य। न कह सकते हैं वह कुछ है और न कह सकते है वह कुछ नहीं है। वह भाव और अभाव, सत्य और असत्य से परे है। वह है और नहीं है से भी भिन्न है। अर्थात् वह है भी और नहीं भी।

इसी बात को एक सूफी शायर ने भी अपने कलाम में कहा है–

*है कहूँ तो है नहीं, नहीं कहूँ तो है।*
*है और ना के बीच में कुछ न कुछ तो है।*

गोरखजी ने 'शून्यं न बसती' कहकर दोहराया भी है। वह तो आकाश मंडल में बोलने वाला बालक है। आकाश मंडल में बोलने वाला इसलिए कहा है कि शून्य अथवा आकाश का ब्रह्मरंध्र में ही ब्रह्म का निवास माना जाता है। वहीं पहुँचने पर ब्रह्म का साक्षात्कार हो सकता है। वहीं आत्मा को ढूँढना चाहिए। बालक इसलिए कि जिस प्रकार बालक पाप–पुण्य से अछूता होता है, उसी प्रकार परमात्मा भी निर्मल है। पाप–पुण्य से मुक्त है। जरा–मरण से दूर, काल से अस्पृश्य, सतत् बाल स्वरूप ही योगियों का साध्य भी एवं आदर्श भी। इसी गोरख को 'गोरख गोपाले, बूढ़ा बालं' कहा गया है। गोरख का एक अर्थ गो अर्थात् धरती का रक्षक और गो यानी गाय से भी है। गाय में समस्त देवी–देवताओं का वास कहा गया है, अर्थात् वह भी पृथ्वी रूपा ही हुई। गो का एक अर्थ इंद्रियों से भी है, जो इंद्रियों का पालन कर सकता है। उनका सम्यक रक्षण कर सकता है। उनका चारण करता हुआ अपने वश में रख सकता है। उनका दोहन कर सकता है, वही गोपाल है। गोरख में ये सभी गुण थे। वे वृद्ध बाल थे। अर्थात् आदिपुरुष होकर बाल भी थे। वे प्राचीन और वर्तमान थे। वे अर्वाचीन और प्राचीन थे।

वे गोरख थे, वे मछंदर थे वे आदिनाथ थे। ईश्वर का नाम कैसे रखा जा सकता है। वह तो अनाम है। सनाम भी है।

गोरख आगे कहते है– न देखे हुए को देखने का प्रयत्न करना चाहिए। अदृश्य को दृश्य तथा अरूप को स्वरूप बनाने का यत्न करना चाहिए। उसे देखकर उस पर विचार करना चाहिए। मनन–चिंतन करना चाहिए। जो आँखों से देखा नहीं जा सकता, उसे अपने चित्त में खोजना चाहिए। वह वहीं दिखेगा। वहीं उसका वास है।

पाताल (मणिपुर चक्र) की गंगा (योगिनी शक्ति कुंडलिनी) को ब्रह्मांड (ब्रह्मांध्र, सहस्त्रर या सहस्त्र कमल) में प्रेरित करना चाहिए। वहीं पहुँचकर योगी साक्षात्कार स्वरूप निर्मल रस पान करता है।

आछै (अक्षय) परब्रह्म यहाँ अर्थात् सहस्त्र या ब्रह्मरंध्र (शून्य) में ही है। यहीं वह गुप्त (अलोप) है। तीनों लोकों की सृष्टि सृजन यही से हुआ है। ब्रह्म का ही व्यक्त स्वरूप यह ब्रह्मांड है। ब्रह्मरंध्र रूप केन्द्र ही से उसने अपना सर्वाधिक प्रसार किया है। ऐसा जो अक्षय परब्रहम सर्वथा हमारे साथ रहता है। उसी के कारण। उसी को प्राप्त करने हेतु अनन्त सिद्ध योग मार्ग में प्रवेश कर योगेश्वर हो जाते है।

अलोप, निषेध वाचक 'अ' का बहुधा लोक बोलियों में व्यर्थ ही आगम हो जाता है। उसका कोई अर्थ नहीं माना जाता।

परब्रह्म का ठीक–ठीक निर्वचन न वेद कर पाए न किताबी धर्मावलंबी विद्वान। न किसी भक्त या आचार्यों की वाणियाँ। वेदों ने तो ''नेति–नेति'' कहकर अपनी वाणी को विराम दे दिया। इन सबने उस अव्यक्त, अगम–अपार को व्यक्त करने के प्रयास में और भी ढँक दिया है। गोरख कहते हैं कि यदि तुम्हें ब्रह्म के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना अभीष्ट हो तो ब्रह्मांध्र (गहन शिखर) में समाधि द्वारा जो शब्द प्रकाश में आता है, उसमें विज्ञान स्वरूप अलक्ष्य परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करो।

इन चार साखियों में गोरख ने परमात्मा के विषय में अत्यंत गहनता के साथ अपने विचार प्रकट कर दिए हैं। इसमें मूर्तिपूजक एवं बहुदेववाद की वर्जना स्पष्ट रूप से की गई है। यहीं संदेश बुद्ध दर्शन में भी दिया गया है। यही बात प्रस्तुत गाथा भी कहती है कि जोग सिद्धि के साधते ही ब्रह्म का प्रकाश दिखलाई दे सकता है। मन के निर्मल होते ही मन चित्त की शुद्धि के पश्चात् ही अज्ञान रूपी अंधकार का नाश हो सकता है।

गोरखनाथ ने नाथ पंथ का सूत्रपात किया। सद्‌गुरु का भरोसा और विश्वास उसके हृदय में दृढ़ था। गोरख नाथ ने धैर्य और स्थिर (एकनिष्ठ) मन से एक ब्रह्म की स्थापना लोक में की। उन्होंने कहा– सृष्टि का सर्जक और संहारक शिव ही है। शिव सिद्धों के सिद्ध और महादानी हैं। दानियों का भी दातार है। शिव ही कल्याणकारी एवं शुभ करने वाला है। वह मंगलकारी है तथा नाथों का वह आदिनाथ है। वह सभी गुरुओं का आदिगुरु एवं आदिदेव है। वह सभी गुरुजनों का आदिगुरु एवं आदिदेव है। मछंदरनाथ शिव के शिष्य हैं। इस प्रकार गोरख आदिनाथ के पड़शिष्य हुए, अर्थात् शिष्य गोरखनाथ के दादा गुरु हुए।

गोरख ने तपस्या की और सिद्ध हो गए। उन्हें ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो गया। गोरख की गादी चली। उनके कई धाम स्थापित हुए। राजयोगी भरथरी जो उज्जैन के राजा थे। उन्होंने गोरख से दीक्षा ली। राज–पाट छोड़ योगी बन गए।

गोरख गुरु धन्य हुए। वे महान थे। वह धरती और वह गाँव जहाँ उन्होंने जन्म लिया, वह भी धन्य हो गया।

पहले नाथ तो महादेवजी को मानना। दूसरा मछंदरनाथ जी को मानिए। मछंदरनाथ की तपस्या स्वरूप गोरखनाथ का अवतार हुआ। गोरख से भी पहले यह पद नंदी को प्राप्त था। इस प्रकार पहले गोरख नंदी को मानना होगा। दूसरे गोरख (गोरक्षक) गिरधर गोपाल कृष्ण हुए। तीसरे गोरख भरथरी हुए और चौथे गोरख जो हुए वे गोरखनाथ कहलाए। गो का अर्थ पृथ्वी होता है। गो का अर्थ गाय भी होता है। दोनों को माता कहा है। दोनों की रक्षा के हितार्थ गोरख ने धरती पर अवतार लिया।

इन सबने भूले–भटके लोगों को सच्चा मार्ग दिखाया और उन्हें उद्धार की ओर प्रशस्त किया। महादेव से यह परम्परा चली। गोरख नाम उन्हीं ने दिया। आखिरी गोरख भरथरी हुए। वे गोरख के गादी धारी बने। (दोनों समकालीन थे तथा गुरु शिष्य भी थे। भरथरी को तीसरे गोरख का मान दिया गया है, जबकि वे चौथे हुए)।

नाथों के नाथ कई हुए, चौरासी सिद्धों को विशेष मान्यता प्राप्त हैं। जिस लक्ष्य से गोरखनाथ ने वज्रयानी सिद्धों का विरोध किया था। वे सभी बुराइयाँ नाथों में आने लगीं। वज्रयान महामुद्रा साधना के कारण भ्रष्ट हुआ था। नाथ पंथ कोलाचार के कारण भ्रष्ट हो गया। निर्मल जल गंदा हो गया। उसमें काई और गाद जमने लगी। स्वयं मछंदरनाथ भी कोलाचार के मायाजाल में फंसकर भ्रष्ट हो गए।

अपने गुरु को सचेत करने और इन्द्रजाल से मुक्त करवाने के लिए उनके शिष्य गोरखनाथ बंगाल पहुँचे और उन्हें चेतमान किया। इन्द्रजाल की माया को नष्ट कर

अपने गुरु का मोह भंग कर उन्हें पुनः उचित मार्ग पर लाए। गोरख ने अपने गुरु से कहा– 'हे सद्गुरु! आपने नींद बेचकर उझका (थोड़ी–थोड़ी देर में सोते से उचक पड़ना) क्यों मोल ले लिया।'

गोरख ने जिस वाम साधना को धरती से समाप्त कर लोक जीवन को सहज व शांत किया था। उसे सही मार्ग बताया था और नाथ पंथ को लोक में स्वीकृत करवाया था। उसी पंथ में वे सभी बुराइयाँ फैल गई।

पंचमकार का अनाचार नाथ पंथ में व्याप्त हो गया था। नाथों ने कौल (वचन) तोड़कर स्वयं को कोलाचार से जोड़ लिया था। बड़े–बड़े मठाधीश नाथ भटक गए। जब रक्षक ही भटक गए, तब समाज में सुधार कौन लाए?

ये कोलाचारी सिद्ध अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करने में वामाचारी हो उठे। शमशान जगाना, भूत–प्रेत–डाकनी साधना। मारक मत्रों को साधना, तंत्र–मंत्र–जंत्र आदि की साधना करने लगे। लोक में उन नाथ सिद्धों का भय व्याप्त हो गया। भयग्रस्त लोग इनके समक्ष जाकर इनकी चाही वस्तुओं की भेंट चढ़ाने लगे। अघोर साधना प्रारम्भ हो गई। अखाद्य का भक्षण ये अघोरी करने लगे। गले में मुंडमाला, मानव अंगों की माला, हाथ में खप्पर और मुंड लेकर ये तांत्रिक सिद्ध लोक को भयभीत कर भ्रष्ट करने लगे। बाँझ स्त्रियों को संतान देने के भ्रम से भोगाचार बढ़ने लगा।

पंचमकारी सिद्धि के लिए मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा और मैथुन को आवश्यक माना गया। लोक में बौद्ध सिद्धों के वज्रयानी साधना में तो केवल मुद्रा अर्थात् युवती सुन्दरी ही आवश्यक थी। बाद में मद्य भी शामिल हो गया। मैथुन अघोषित रूप से शामिल था। कौल साधकों ने उसमें मत्स्य और मांस को जोड़कर 'करेला और नीम चढ़ा' कहावत सिद्ध कर दी। साधकों की इस अमानवीय क्रियाओं ने मानवता को कलंकित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

जिस वक्रोली मुद्रा तथा चक्रपूजा की चर्चा मत्स्येन्द्रनाथ के मार्ग में मिलती है। वही आगे चलकर नाथ योगियों की साधना का लक्ष्य बन गई। सुलभ और सरल साधना के नाम पर वशवर्ती स्त्री की साधना और भोग के उपकरणों की लालसा ही शेष रह गई। सम्भवतः इसी साधना के वशीभूत होकर मत्स्येन्द्रनाथ भटक गए थे, जिन्हें उनके शिष्य गोरखनाथ पुनः सही मार्ग पर लाए।

'पंच पवित्रों' में प्रयुक्त विष्टा, धारामृत, शुक, रस और मज्जा ने ही आगे चलकर 'पचमकार' का रूप धारण कर लिया।

पिछले वर्णन में वाममार्ग का उल्लेख हुआ है। वस्तुतः यह वाममार्ग या वामाचार शाक्त मतावलंबियों की साधना पद्धति थी। लोक मानस ने इस साधना को निकृष्ट माना और उसकी भर्त्सना की। लोक ने इसे स्वीकृति नहीं दी।

शाक्तमत को यदि सार रूप में समझना चाहें तो इसकी साधना के आचारों का प्रभाव लोक जीवन में धर्म साधना पर अधिक विलक्षण हुआ ऐसा प्रतीत होता है । धर्म, अर्थ, काम–मोक्ष की चतुर्मुखी पुरुषार्थ आकांक्षा का महत्त्व लोक जीवन में महत्त्वपूर्ण ही नहीं अनिवार्य भी माना गया है। इन्हीं चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने के लिए जीवन भर प्रयास किए जाते हैं। वस्तुतः साधनामूलक विचारो की व्यवहारिक एवं स्थूल परिणिति का लोक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। विद्वानों ने शाक्तमत की अद्वैतवादी भूमि और उसकी तात्विक अनुभूति पर विचार करते हुए अपने–अपने मत प्रकट किए हैं।

शिव और शक्ति अथवा पुरुष और प्रकृति का मिलन उसका प्रयोजक और कर्मस्वरूप वही आदि रस का श्रृँगार रस है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन का शिव तथा शक्ति तत्त्व ही त्रिपुरा (शाक्त) सिद्धांत में कामेश्वर तथा कामेश्वरी हैं तथा गौड़ीय वैष्णव मत में श्रीकृष्ण और राधा है। दोनों अभिन्न तत्त्व हैं। सिद्धांत रूप जिस–जिस तत्त्ववाद का परिचय शाक्तमत में उपलब्ध है। अपने साधनापरक जीवन में वहीं तत्त्ववाद कितने स्थूल और भौतिक रूप में प्रकट हुआ है। यह उसके व्यवहारिक स्वरूप से ज्ञात हो जाता है। इसी सुखवाद और भौतिक भोगवाद की आचारहीन परम्पराओं की कभी भी भारतीय लोक–समाज ने स्वीकृति प्रदान नहीं की। सामाजिक आचारों की निर्मलता एवं शुद्धि को ध्यान में रखते हुए इन मतों को सदा नकारा गया और इन्हें निंदनीय कहा गया। शाक्त मतावलंबियों को लोक ने धिक्कारा और उन्हें विधर्मी या धर्महंता तक कहा।

शाक्तमत की ही एक साधना पद्धति है वामाचार या वाममार्ग, जिसका उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया गया है। लोक मानस ने इसे भी अस्वीकार किया और खूब निंदा की। इसे लोक ने अमानवीय एवं भ्रष्ट लक्षणों का आचरण तक कहा।

वाममार्गी साधना में सिद्धांत रूप से प्रायः क्षीणरूप से तांत्रिक सिद्धियों के साधकों की परम्परा एवं पद्धति के ही लक्षण दिखाई देते हैं।

कुछ विद्वानों ने वाममार्ग का विवेचन करते हुए कहा है कि 'जीवन के प्रति तंत्र की एक विशिष्ट दृष्टि है। तंत्र मानव की सम्पूर्णता एवं समग्रता का पक्षपाती है। मनुष्य स्वभावतः युगल रूप ही तो है। न तो पुरुष शक्ति या मुद्रा के बिना पूर्णता पा

सकता है और न ही नारी पुरुष के बिना। इन दोनों शक्तियों का सामंजस्य आध्यात्मिक विकास की पूर्णता के लिए तंत्रों में अभीष्ट है। तांत्रिक भाषा में इस युति का नाम 'युगनद्ध' है। तांत्रिक पूजा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित है। फलस्वरूप यदि वाममार्ग अपने तत्त्ववाद से हटकर व्यवहारवाद की कोटि में पहुँचा तो उसने दो सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। (1) वर्णभेद का समूल नाश (2) यौन भेद को मिटाकर उच्छृंखल यौन सम्बन्धों का विधान। इस सिद्धांत पर बौद्ध सिद्धों का प्रभाव ठीक वैसा ही पड़ा, जैसा नाथ सिद्धों पर पड़ा और वे पंचमकारी साधना में लिप्त हो गए तथा पंच पवित्र को साधना का आधार बना लिया।'

मत्स्येद्रनाथ का वाममार्गी होने के विषय में अनेक किंवदतिंयाँ प्रचलित हुई। उनके शिष्य गोरखनाथ उन्हें वाममार्ग से निकालकर पुनः सिद्ध मार्ग में लाए।

वाममार्ग के उपरोक्त वर्णन का आशय यह भी है कि कालांतर में इसका सीधा प्रभाव नाथ पंथ पर पड़ा। नाथ पंथ के साधक स्वतंत्र रूप से एवं प्रत्यक्ष रूप से लिंग और योनि की पूजा करने लगे। उन नाथ साधकों का मानना है कि वासना का दमन करना साधना मार्ग परिपंथी है। वे स्त्री को पुरुष का परिणाम मानते हैं और इसीलिए वे वामाचार को साधना के लिए अत्यंत आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण मानते हैं। चक्रपूजा जिसे मत्स्येन्द्रनाथ ने बार–बार कौलज्ञान निर्णय में विवृत किया है, अब भी वर्तमान है। सर्वत्र इस पर साधना को रहस्यमय ढंग से और गुप्त साधना मानकर साधा जाता है।

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों पर इस साधना का प्रभाव चिंतनीय माना गया और बार–बार इसकी निंदा की गई।

शाक्तमत के वामाचारी स्वरूप के ही अनुसार कापालिक साधना भी भारत में प्रचलित रही है। कापालिक साधक शिव के कापालिक रूप की आराधना करते हैं। कुछ लोग इसे बौद्ध साधकों की वज्रयानी साधना पद्धति का ही एक प्रकार मानते हैं। यह कह पाना कठिन है कि वज्रयान साधना पर कापालिक साधना पद्धति का प्रभाव है अथवा कापालिक साधना पद्धति पर वज्रयान साधना पद्धति का अथवा यह भी संभव है कि दोनों ही परस्पर एक दूसरे से प्रभावित हों। कापालिक लोग कापाली शिव का स्वरूप अत्यंत भयावह बनाते हैं। उनको 'किरात रुद्र' और क्रूर कहा गया है। बड़े–बड़े दाँत बाहर की ओर निकले हुए, जटा बिखरी हुई अस्त–व्यस्त। एकदम भीषण एवं डरावना रूप कापालिकों ने शिव का प्रकट किया। उन्हें सर्वथा वस्त्रविहीन दिखाया गया है। उनकी समस्त देह पर भभूत मली हुई। हाथ में मानव काल का कमण्डल, गले में

रुण्डमाला। उनका स्थान शमशान भूमि। कापालिकों के मतानुसार छह मुद्राओं को धारण करने से अपवर्ग की उपलब्धि होती है। कणिका, रुचक, कुंडल, शिखामणि, भस्म और यज्ञोपवीत। इसके साथ ही अनेक गुप्त क्रियाओं का भी उल्लेख किया गया है। मद्यपान, स्त्री विहार इस साधना पद्धति में प्रमुख साधन हैं।

जिस प्रकार वज्रयान में स्त्री को महामुद्रा का अनिवार्य माध्यम कहा गया है, उसी प्रकार अन्य ऐसे साधना मार्गों में भी स्त्री को भोग्या के रूप में ही माना गया है। वज्रयानी साधना में कापालिक शब्द की मूल व्युत्पत्ति इस प्रकार है– 'प्राणी वज्रधर है। जगत की स्त्रियाँ कपाल–वनिता हैं अर्थात् कापालिनी हैं और साधक 'हे रुद्र' भगवान की मूर्ति जो उससे अभिन्न है। स्त्रीजन साध्य होने के कारण ही वह साधना कापालिक कही गई है।'

गोरख द्वारा प्रवर्तित योग मार्ग से यह साधना निश्चित ही पृथक है और आगे चलकर नाथ पंथ में जितने सम्प्रदाय मिले हैं, सम्भवतः इस साधना के सूत्र भी अवश्य किसी न किसी माध्यम से सम्मिलित हुए होंगे।

गोरख के समकालीन सिद्धों में जालंधरपाद और उनके शिष्य कृष्णपाद वज्रयानी कापालिक साधक माने गए हैं। कालान्तर में जालंधर को भी शैव माना गया है। उन्हें चौरासी सिद्धों में स्थान मिला।

## नाथ पंथ की विकृतियों का लोक पर प्रभाव

मूल रूप से गोरखनाथ ने जिस कामोपासना अथवा कामोपयोग साधना का तीव्र विरोध किया था, वह वज्रयानी, कापालिक साधना ही थी। वही साधना पद्धति नाथपंथ में प्रवेश पा गई और उसी के होते नाथपंथ में पंचमकारी साधना और पंचपवित्र धारण करने की साधना का सूत्रपात हुआ। नाथपंथ की उस विकृति को यद्यपि भारतीय लोक जीवन में स्वीकृति प्राप्त नहीं हो पाई, तथापि उसका प्रभाव लोक जीवन पर पड़े बिना नहीं रहा। नाथ सिद्धों की पंचमकारी साधना ने गुप्त रूप से अपना प्रभाव लोक जीवन पर डालना आरम्भ कर दिया।

गोरख ने जिस साधना पद्धति का सूत्रपात किया था, वह प्रकारान्तर में भारतीय दर्शन पर ही आधारित थी। आगे चलकर नाथ पंथ मूल आदर्शों से भटक कर पुनः उस अघोर स्थिति में आ पहुँचा जहाँ से वह चला था। उसने वज्रयान, कापालिक साधना, वाममार्ग आदि सभी साधना पद्धातियों को पीछे छोड़ दिया। लोक जीवन जितना अन्य भक्ति मार्गों से प्रभावित हुआ, उतना नाथ–सिद्धों की साधना से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।

कहीं कठिन–कठोर तपस्या तो कहीं दक्षिणमार्गी उपासना पद्धति, कहीं मांत्रिक महत्त्व तो कहीं तांत्रिक प्रभाव। जब वाममार्ग तत्त्ववाद से विलग होकर व्यवहारिक आधार ग्रहण कर लेता है तब वह वर्णभेद को नकार कर उन्मुक्त यौन सम्बन्धों को अपनाने का आव्हान करता हुआ दिखाई देने लगता है। आगे चलकर यह उन्मुक्तता, उच्छृंखलता और उदण्डता विकृत रूप धारण कर लोकजीवन में अपना प्रभाव जमाने में सफल हो गई। भिन्न–भिन्न नाम धारण कर गुह्य स्वरूप में जन साधारण में वाममार्गी साधना मात्र दमितवासना की पूर्ति का माध्यम बनती गई। यह साधना कालान्तर में इतनी विकृत हो गई कि साधक प्रत्यक्ष रूप से लिंग और योनि की पूजा करने लगे। कापालिकों और वज्रयानियों तथा नाथ सिद्धों के विकृत प्रभाव ने लोक जीवन में अनेक पद्धतियों एवं पंथों को जन्म दे दिया। शैव–शाक्त और बौद्ध साधनाओं में यह विकार भरपूर और स्वच्छंद रूप से विकासमान होता रहा।

वज्रयान में जिस साधना को महामुद्रा कहा गया है। इस साधना पद्धति में साधक किसी सुन्दरी को महामुद्रा हेतु चुनता था और अपने गुरु के निकट जाकर उनसे आदेश प्राप्त करने के पश्चात् उस सुन्दरी के साथ सहवास करता था। उसके पश्चात् साधक की प्रत्येक साधना उसी सुन्दरी के सहवास में रहकर ही होती थी। इसी को महामुद्रा कहा–समझा जाता है। इस 'महामुद्रा स्त्री' का चुनाव भी समाज कुलोत्पन्न विशेष एवं में से होता था। इस प्रकार उस समय की सुन्दर कन्याओं पर ये वज्रयानी साधक निगाहें जमाये रखते थे। लोक जीवन पर इस साधना पद्धति का बुरा असर पड़ा और वज्रयान साधना विकृत होकर लोक जीवन में सुख भोगवाद हेतु गुप्त रूप से मान्य होती चली गई। जिनका सार रूप से उल्लेख पिछलों पृष्ठों में किया गया है।

ऐसी ही साधना पद्धति नाथ सम्प्रदाय में भी विकसित हुई थी, जिसे कौलमार्ग के नाम से जाना जाता है। शाक्तमत का प्रभाव इस साधना पद्धति पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। मत्स्येन्द्रनाथ इस मत के प्रवर्तक माने जाते हैं। बाद में इन्हीं के शिष्य गोरखनाथ (गोरक्षनाथ) ने इस योगसाधना का विरोध किया और अपने गुरु को कौलमार्ग की 'पंचमकारी' साधना से विमुख किया। इस साधना में 'मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन' का विशेष महत्त्व माना गया। इसी को पंचद्रव्य भी कहा गया। इसी का एक और स्वरूप 'पंच पवित्र' नाम से भी जाना गया। इसमें साधक 'विष्टा, धारामृत, शुक्र, रस और मज्जा' का उपयोग करता था। इस प्रकार के साधनयोगों से धीरे–धीरे लोक जीवन प्रभावित होने लगा। वशवर्ती स्त्री भोग के भाँति–भाँति पंथों को जन्म दे दिया, ये पंथ लोक जीवन में आज भी किसी न रूप में प्रचलित पाये जाते हैं। यद्यपि इस प्रकार के पंथों में दीक्षित साधकों को इसे गुप्त रखने के निर्देश और शपथ के

पश्चात् ही दीक्षा दी जाती है, किन्तु इसकी जानकारी समाज में आती है और मुक्तभोग को इससे बल मिलता है।

कई वाममार्गी पंथों में से दो का नामोल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है– (1) कुण्डा पंथ (2) कांचली पंथ। इन दोनों पंथों का मूलाधार वाममार्गी साधकों के द्वारा अपनाये गये साधन एवं पद्धतियाँ ही मुख्यरूपेण हैं। जहाँ तक मेरा निजी अध्ययन है ये दोनों पंथ एक समय में निम्न कहे जाने वाले अथवा पिछड़े कहे जाने वाले समाजों में ही प्रचलित रहे हैं। अपवाद रूप से सवर्ण माने जाने वाले समाज के लोग भी इन पंथों में दीक्षित पाये गये हैं।

**कुण्डा पंथ**

यह वाममार्गी सिद्धियों एवं साधकों तथा साधनों की पूर्ति हेतु लालसा वृति के फलस्वरूप उत्पन्न एक विचित्र पंथ है। इसमें दीक्षित होने के लिए जांत–पाँत का कोई बंधन नहीं है। 'भादवा बीज' की रात में जब लोग एक निर्दिष्ट स्थान पर एकत्र होते हैं । वह स्थान बहुत गुप्त रखा जाता है। केवल उस पंथ के दीक्षित सदस्य ही वहाँ जा सकते हैं। सब लोग (साधक) मिलकर मांस पकाते हैं और मांस पकाकर एक कुंडे में भर देते हैं।

इनके गुरु अधिकतर दसनामी गुंसाई और कई बार नाथ भी होते हैं। यही इन्हें दीक्षा देते हैं। समारोह इन्हीं के निर्देश में चलता है। वही गुरु इन्हें मंत्र देता है। मंत्र निम्नानुसार हैं–

*गिरियाँ, पुरियाँ, भारतियाँ, वन परवत एरणियाँ।*
*आरणी, चारणी, नारायणी, ऊं नमो ओमकारियाँ।।*

कुण्डे के विषय में भी वह बखान करता हैं–

*संत की खूंटी धर्म का चारु।*
*लंदन फेरी आये आप।*
*कुंडो घड़िया घेर घुमेर।*
*कुंडो घड़िया नेतल वीर।*
*कुंडो गाड़े नी गचाले, कुण्डो पाड़े नी चाले।*
*कुण्डो सम्मुख संताँ के समरपे।*
*कुण्डा की राखेगा आस।*

*पावेगा अमरपुर में वास।*
*कुण्डा ती राखेगा भांत।*
*तोड़ेगा गर्दन, काढ़ेगा आंत।*
*दे बाला सुन्दरी के दाँत।*
*कुण्डो तोड़ेगा जात अर पाँत।*
*धर्म कर्म कुण्डे में समाया।*
*गुरु गोरखनाथ गादी बैठ फरमाया।*

गुरु के कुण्डा–बखान के पश्चात् समस्त कुण्डा पंथी, उस कुंडे में से माँस और पास में रखी रोटियाँ लेकर खाना शुरू कर देते हैं। उससे पूर्व वे मदिरापान भी करते हैं। कभी–कभी मांस के अलावा खीर भी पकाई जाती है। इसे भी एक पृथक कुंडे में भर दिया जाता है और उस कुण्डे में से भी खीर ले–लेकर खाई जाती है। खीर में माँस भी डाला जा सकता है। जब सब लोग खाना खा चुकते हैं, तब सभी लोग माँस वाले कुण्डे में अपने–अपने हाथ धोते हैं। इसे चुरु (चुल्लु) करना कहते हैं। यदि खीर का कुण्डा होता है तब उसे भी धोकर मांस के कुण्डे में उसका धोवन उड़ेल देते हैं। फिर उस धोवन को सबसे पहले गुरु 'धोबा' भरकर पीता है। बाद में समस्त कुण्डा पंथी सदस्य उस धोवन को बारी–बारी से प्रसाद स्वरूप पीते हैं। कहीं ऐसा भी सुनने को मिलता है कि पंथी लोग एक दूसरे को 'कोल' खिलाते हैं। इसे कोल (ग्रास) देना कहा जाता है। भोज्य एवं पेय पदार्थ के सांकेतिक नाम होते हैं। रोटी–चाँदका। माँस–सिद्धि। शराब–तीर्थ। पानी–अलेल। खीर–रुक्मणी। घी–पोखर।

इस प्रकार कुण्डा पंथी एक दूसरे को अपने हाथ में भोजन का कौर (कोल) खिलाकर तथा परस्पर उच्छिष्ट धोवन पीकर जाति–भेद व 'छोट–बड़' भेद को मिटाने व परस्पर भाई चारा दृढ़ करने का सत्कर्म किया गया, ऐसा मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि इस साधना से उन्हें अमरपुर मिलेगा। यह परम्परा आज भी चालू है, किन्तु अत्यंत गोपनीय तरीके से।

**शंका ढाल–** शंका ढाल भी कुंडा पंथ का ही एक उपक्रम है। समस्त कुण्डा पंथी जब भोजन कर चुकते हैं, तब सभी गोलाकार स्थिति में बैठ जाते हैं। वर्ष भर में जितने साधकों का स्वर्गवास हो चुका होता है उसे याद करते हैं और उसके लिए अमरपुरी वास की कामनाएँ करते हैं। उसी को 'शंकाढाल' कहते हैं। शंकाढाल का कार्यक्रम कभी–कभी भोजन के पूर्व भी होता है। जिस स्वर्गीय साधक की शंकाढाल की जाती है, उसकी स्मृति करके गुरु उसका एक पुतला बनाता है। पुतला घास का बनाया

जाता है। कपड़े का भी बनाया जाता है। सभी साधक क्रम–क्रम से उस पर दूध–पानी डालकर पुतले को नहलाते हैं। यह उसका पवित्रीकरण माना जाता है। पवित्रीकरण के पश्चात् गुरु महाराज उस पुतले को गाड़ देने का आदेश देते हैं। चार पंथी साधक पुतले को लेकर जंगल में गाड़ने जाते हैं और गाड़कर जब लौट आते हैं, तब उनसे गुरु महाराज पूछते हैं –

– कहाँ गये थे ?

–चारों एक साथ उत्तर दते हैं। साधक को सिद्ध करने।

–गुरु महाराज– कितने गये थे ?

–चारों साधक–पाँच।

–गुरु महाराज– लौटकर कितने आये ?

–चारों साधक– चार।

–गुरु महाराज– एक कहाँ गया ?

–चारों साधक–सिद्ध होकर अमरपुरी चला गया।

गुरु महाराज चारों साधकों को बैठने का संकेत करते हैं। चारों अपने–अपने स्थानों पर बैठ जाते हैं। साधकों के पुतला गाड़ने (सिद्ध करने) और लौट आने के बीच गुरु महाराज अथवा उनके आदेश से दो साधक छत की कड़ी में लच्छे का एक धागा बांधते हैं। वह धागा धरती की ओर लटका रहता है। उसी धागे में सात फूंबे (रुई के टुकड़े) एक के ऊपर एक बांधे जाते है। उस सतलड़े रुई के हार को दीपक व अगरबत्ती से पूजकर उसी दीपक से नीचे से जला देते हैं। यदि सातों फूंबे एक के बाद एक जल जायें तो समझ लिया जाता है, प्राणी (स्वर्गीय साधक) 'सिद्ध' हो गया और अमरपुरी चला गया। अगर बीच में आग बुझ जाये, तब जितने फूंबे शेष बचते है। यह माना जाता है कि, स्वर्गीय साधक सात आसमान पार करके अमरपुरी जाने से उतने आसमान नीचे रुक गया है। तब सभी साधक उसकी मुक्ति के लिए भजन–कीर्तन करते हैं। यदि सातों आसमान पारकर अमरपुरी पहुँच जाने का संकेत मिलता है तो खुशी मनाते हैं। मदिरा पान करते हैं। भजन–कीर्तन रात भर चलता है। सूर्योदय के पश्चात् सभी अपने–अपने घर लौट जाते हैं।

### काँचली पंथ

काँचली पंथ भी गुप्त रूप से अस्तित्व में रहा है। अब इस पंथ के अनुयायी बहुत कम रह गये हैं। इस परम्परा प्रेरक भी वाममार्गी साधना पद्धति ही रही है। इस

पंथ के साधक भी गुप्त रूप से इसमें दीक्षित होते हैं। गुरु के निर्देश में इसकी साधना की जाती है। इसका आयोजन भी भादवा बीज की रात्रि में अत्यंत गुप्त स्थान पर किया जाता है। यद्यपि अब इसका चलन कम ही रह गया है। अभी भी यह अत्यंत गुप्त रूप से तथा अत्यंत सावधानीपूर्वक गुप्त स्थान पर मनाया जाता है।

प्रारम्भ में इस पंथ में वन्ध्या स्त्रियों/निःसंतान पुरुषों को इस विश्वास में दीक्षित किया जाता था, जिससे वंध्या स्त्री की गोद (कोख) फलवती हो सके। इसे अत्यंत पवित्र कर्म मानकर किया जाता था। इसी को धर्मदान करना कहा जाता था। यह क्रिया महाभारतकालीन नियोग का ही विकृत रूप कही जा सकती है। कालान्तर में यह एक जश्न के रूप में मनाया जाने लगा।

दीक्षित जोड़े एक गुप्त स्थान पर एकत्र होते थे। बीच में एक कलश रख दिया जाता था। समस्त दीक्षित स्त्रियाँ अपनी–अपनी बारी से कलश के निकट पहुँचती थीं। तब गुरु महाराज निम्न मंत्र का उच्चारण करता था–

*एके हाड़े, एके लोहू, एके मल, एके मूत्रा।*
*एक बूंद का जगत पसारा।*
*कूँण बाम्हन, कूण गमारा।*

फिर गुरु महाराज उस स्त्री को आदेश देता था–'अपनी काँचली कलश में भंडार दे।' आदेश के पालन में वह स्त्री अपनी काँचली (चोली) उतारकर उस कलश में भंडार (डाल) देती थी और पलटकर अपने स्थान पर बैठ जाती थी। यह काँचली भंडारने का काम जब समाप्त हो जाता, तब गुरु महाराज कलश के निकट आकर ईश्वर का स्मरण कर कलश को प्रणाम करके उसमें भंडारी गई चोलियों को अच्छी तरह मिलाता था। ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर हो जातीं, तब निस्पृह भाव से वह एक–एक करके कलश में से चोलियों को निकालकर सबको दिखाता। जिसकी वह चोली होती, वह स्त्री गुरु महाराज के पास आ जाती। दूसरी पंक्ति में बैठे पुरुषों में से वह प्रथम पुरुष का संकेत से अपने पास बुलाकर अपने निकट खड़ी स्त्री का हाथ उस पुरुष के हाथ में थमाकर आशीर्वाद के साथ उन्हें वहाँ से एकान्त में भेज देता था। इसी प्रकार यह सबके जोड़े तय कर देता था। गुरु महाराज का आशीर्वाद लेकर नवयुगल उसी परिसर में जहाँ एकांत मिलता, वहाँ चले जाते। प्रकाश बंद कर दिया जाता था। कभी–कभी चोली निकालने का काम क्रम–क्रम से पुरुष स्वयं भी करते थे। दोनों परम्पराएँ प्रचलित रही हैं। काँचली वाली स्त्री उस पुरुष के साथ संभोगरत रहती थी। इसी को धर्मदान करना कहा जाता था। यही नियोग था।

संभोग के पश्चात् स्त्री अपनी योनि से प्रवाहित वीर्य को हथेली में संग्रह करके एक निर्धारित पात्र में डालती थी। समस्त स्त्रियों द्वारा इस कार्य को सम्पन्न कर लेने के उपरान्त मद्धम प्रकाश किया जाता। गुरु महाराज द्वारा उस निर्धारित पात्र में देसी घी में बनाया गया हलवा मिलाकर प्रसाद रूप में बाँटा जाता था। इसे 'वाणी फेरना' या बाँटना कहा जाता था। इसमें कोई भी घृणा नहीं कर सकता था। माथे चढ़ाकर उसे ग्रहण किया जाता था। और स्वयं को पवित्र हुआ मानकर तथा मनोवांछित फल (संतान) प्राप्त हो गया मानकर स्वयं को कृतार्थ माना जाता था। जैसा कि ऊपर कहा गया है । इस काँचली या चोली पंथ में भी सभी जातियों के स्त्री–पुरुष दीक्षित हो सकते थे। कहा तो यह भी जाता है कि उस सहवास के पश्चात् निश्चित रूप से वन्ध्या स्त्रियों की कोख फलती थी। साधक इस साधना को धर्म मानकर स्वीकारते थे–

*एकै धर्मा, एखै देवत, एकै देही, एकै जात।*

तथा

*एक नाम का देवता, दस नाम का साध*
*बीस नाम का भूत,*
*ऊँच–नीच जाणे नहीं, पीवे जगत को भूत।*

सहवास के मध्य परस्पर बात करना अथवा एक दूसरे को पहचानने का कोई प्रयास करना वर्जित था। इसके बावजूद भी यह विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उनमें परस्पर पहचान नहीं हो पाती होगी। इसके भी अपवाद होते रहे और कई बार सामान्य जीवन में वह 'पहचान' अपना विकृत प्रभाव दिखाती थी।

कलश भंडारन में भी कई जगह यह भी ज्ञात हुआ है कि उस कलश में जिसमें काँचलिया (कंचुकियाँ) भंडारी जाती थीं। पूर्व में ही मदिरा भर दी जाती थी और काँचरियाँ डालने (भंडारने) के बाद वाली प्रक्रिया के साथ एक धोबा अथवा चुल्लु भर मदिरा भी पवित्र होने के लिए पान की जाती थी। दोनों ही अमृत पान करते थे। सम्भवतः ऐसी व्यवस्था सहवास को और आनंदमय और बेझिझक व उन्मुक्त बनाने के उद्देश्य से की जाने लगी हो। इसे भी एक विकृति ही मानना होगा। काँचरी या कांचली पंथ का उद्देश्य न तो उन्मुक्त सहवास ही लक्षित था और न ही सम्भोग का आनंदोत्सव। इसकी मूलभावना केवल वन्ध्याओं की कोख सुफल करना ही था। वीर्यदान अथवा धर्मदान के अनेक उदाहरण महाभारत काल में स्पष्ट रूप से मिलते हैं। स्वयं पांडव इसी प्रकार के धर्मदान जिसे तब नियोग कहा गया, के ही प्रतिफल थे। पांडव ही क्यों, स्वयं भगवान वेदव्यास द्वारा वीर्यदान अथवा तत्कालीन नियोग प्रथा से पांडू, धृतराष्ट्र और

विदुर का जन्म हुआ। तब वंश चलाने के लिए नियोग को धार्मिक मान्यता प्राप्त थी। ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि नियोग की वह प्रथा उच्च वर्ग अथवा श्रेष्ठी वर्ग की ही तरह सामान्य वर्ग में भी अवश्य प्रचलित रही होगी। उसी नियोग का ही एक पारंपरिक किन्तु विकृत रूप 'काँचली पंथ' कहा जा सकता है। जो कालांतर में वाममार्गियों द्वारा एक नया रूप और मान्यता लेकर एक 'पंथ' के रूप में विकसित हुआ और जन सामान्य में प्रचलित हो गया। आज भी 'कुण्डा–पंथ' और 'कांचली पंथ' न्यूनाधिक रुप में कई जगह प्रचलन में है। इनके पालन में थोड़े–बहुत परिवर्तन अवश्य हुए हैं। इन्हें जान पाना, समझ पाना और देख पाना तीनों बहुत कठिन हैं। सब कुछ गुप्त रूप से आयोजित होता है।

कार्यक्रम की समाप्ति भी बहुत भावपूर्ण एवं मर्यादित रूप से होती है। 'वाणी' फेर दिये जाने के पश्चात् चूरमें का प्रसाद बाँटा जाता है। इसे 'कोली' कहा जाता है । फिर पंचमेवा बाँटा जाता है। इसे 'भाव' कहा जाता है। इसके बाद विदा की बेला आती है। आयोजन में सम्मलित सभीजन भाव–विभोर होकर एक दूसरे को विदा करते हैं। सबको यह विश्वास होता है कि उन्होंने अपना अभीष्ट पा लिया है। परस्पर 'कड़ावे' बोलकर बहुत ही आत्मीय ढंग से विदा दी जाती है। प्रथम कहेगा– 'हुक्म !' दूसरा उत्तर में कड़ावा कहेगा– 'हनुमान को!!' 'आज्ञा'– ईश्वर जी महाराज की।' 'दुवो'– 'चारी जुग में हुवो।' 'चौकी'– 'हिंगलाज माता की !' 'परमाण'– 'संत चढ़ै निरबाण !' ' थेगो'– 'अलख की घर देखो!' इस प्रकार कड़ावों के माध्यम से प्रश्नोत्तर के बाद परस्पर विदा दी जाती है। ये कड़ावे व विदा बहुधा उन्हीं के मध्य होती है, जिनका रति सहवास परस्पर हुआ है। किन्तु ऐसा दृढ़ या निश्चित विधान नहीं है।

ऐसी भी प्रमाणित जानकारी है कि यदि किसी दिन स्वयं गुरु महाराज (गुरमाराज) किसी पंथी गृहस्थ के घर पधार जायें। तब वह 'पंथी–गृहस्थ' स्वयं को 'धन्न भाग' मानता है। 'धन्न भाग' कहकर वह सपरिवार 'गुरमाराज' का स्वागत करता है व उन्हें अपना 'पामणा' (अतिथि) बनाकर उस 'पुरे गुर' की सेवा करता है। घर की स्त्री उस 'गुरमाराज' को सहवास हेतु समर्पित की जाती है। रात्रि भर के सहवास के पश्चात् वह स्त्री 'गुरमाराज' का वीर्य संग्रह करती है तथा उसे मिश्री या हलवे में मिलाकर 'वाणी' फेरी जाती है। बहुधा 'गुरमाराज' निपूती स्त्री के घर ही पामणे होते हैं। एक रात रुककर उसे 'धन्न' करके व सपूती का वरदान देकर दूसरे सबेरे प्रस्थान कर जाते हैं। आस्तिक गृहस्थ अपना अभीष्ट प्राप्त कर सचमुच धन्य हो उठता है। वह 'गुरमाराज' को भावपूर्ण–अर्थपूर्ण विदाई देता है। यह परम्परा अत्यंत गुप्त रखी जाती रही है, जो अब प्रायः समाप्त हो चुकी है।

पाश्चात्य देशों के कई क्लबों में इस प्रकार के उन्मुक्त सहवास के आयोजन सामान्य बात हो गई है। इस पाश्चात्य क्लब धर्म का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर पड़े बिना नहीं रहा। यह कहना कठिन है कि पाश्चात्य सभ्यता ने यह परम्परा भारत से ग्रहण की अथवा वहाँ की परम्परा में भी इस प्रकार की कोई मान्यता रही है। एक अनुशासित एवं धार्मिक भावनाओं से प्रेरित इस काँचली पंथ का प्रभाव पाश्चात्य सभ्यता में प्रचलित होकर क्लबों में 'पत्नी बदल' के रूप में फैल गया। भारत में भी यह क्लब संस्कृति, नवधनाढ्य पीढ़ी में स्वीकृत होने लगी है। सम्भवतः यह एक चक्र बना हो। पूर्वात्य से पाश्चात्य और पाश्चात्य से फिर पूर्वात्य। इस विषय पर किसी शोधार्थी को विस्तृत शोध करना चाहिए।

इस कुण्डा पंथ और चोली पंथ का अस्तित्त्व भारत के और भी कई भागों में किसी न किसी रूप में अवश्य रहा होगा। मालवा और राजस्थान में तो यह प्रचलित रहा है। आज भी यह अपना अस्तित्व किसी न किसी स्तर तक बनाये हुए हैं। पूरी आस्था और विश्वास के साथ अत्यंत गुप्त रूप से। नाथ पंथ का लोक पर जो विकृत प्रभाव पड़ा, वह अत्यंत दुर्मत था। ऐसे ही अनेक संदर्भ लोक में व्याप्त हैं, जिनके मूल में नाथ पंथी मुक्तभोग की छाया का प्रभाव परिलक्षित होता है। कितने आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार की गुह्य प्रथाएँ केवल अशिक्षित एवं निम्न समाजों में ही पाई गई हैं। इसका कारण है उनका अज्ञान, तर्कहीनता और अंधानुकरण।

## नाथ स्थलों में आस्था और वीकृति के तत्त्व

संदेश या उपदेश दिया या कहा जाता है, वह लोक स्वीकृत कैसे हो सकता है। वह महत्त्वपूर्ण होकर भी व्यर्थ हो जाता है। लोक तक वह नहीं पहुँच पाता। ऐसा विचार केवल कुछ विद्वानों तक पहुँचकर स्थिर हो जाता हैं। उसका लोक विस्तार नहीं हो पाता।

लोक भाषा में माता के दूध जैसी मिठास होती है। उसमें कुलवंश की पारंपरिक मर्यादा होती है। इसी प्रकार लोकभाषा और लोक साहित्य का सामंजस्य, संस्कृति का पारंपरिक रूप से सृजन, संरक्षण और संधारण करता है। हमारे नैतिक मूल्यों का सम्मुच्चय संस्कृति कहलाती है। रीति–रिवाज, प्रथा–परम्परा–संस्कृति यह एक विकास क्रम है। इस विकास क्रम की यात्रा बहुत कठिन और सूझ–बूझ वाली होनी चाहिए। सहजता का लोभ उचित नहीं होना चाहिए।

इस कृति में जो गाथा है, वह भाषा की दृष्टि से सहज गम्य है। लोक सम्मत

है। लोक स्वीकृत भी है। इसी को लोक साहित्य भी कह सकेंगे। छोटी सी गाथा में बौद्ध धर्म और नाथ पंथ का सार–सम्हार, विचार और आधार प्रसार तथा सत्कार–स्वीकार निहित है। यह है लोक भाषा और लोक साहित्य की क्षमता। यदि यह गाथा संस्कृति में होती, तब इसको लोक स्वीकृति कभी भी नहीं मिलती। वह महानगरीय आधुनिक की भाँति पराई लगने लगती, जबकि यह गाथा ग्रामिका है। लोक स्वीकृत है। इसमें अपनी भाषा का अपनापन है। इस कारण लोक सम्मत व लोक स्वीकृत है। गोरख ने इस बात का ध्यान रखा और अपने विचार लोकभाषा में ही व्यक्त किए। यही ध्यान बौद्धों ने रखा उन्होंने लोक भाषा पाली में अपने विचार व्यक्त किये और जैनाचार्यों ने प्राकृत लोक भाषा को अपनाया।

मध्यकाल के योगियों और फिर संतों ने भी लोक भाषाओं को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इसका लाभ भी उन्होंने प्राप्त किया। वे सब लोक स्वीकृत हो गए।

गोरखनाथ ने जिस विचार का सूत्रपात किया, उसे पंथ कहा गया। उसका सीधा सम्बन्ध सृष्टि के आदिदेव महादेव से जोड़कर उसे महिमा मंडित भी किया गया। पंथ में जिन विचारों को अन्तर्निहित किया गया, वे लोक कल्याणी भी थे। सामान्य जन तब के बौद्ध धर्म में प्रवेश कर चुकी बुराइयों से ऊब चुका था। उसकी अराजकता, भ्रष्टाचरण एवं आडम्बर से समाज भयभीत हो उठा था। जिस बौद्ध धर्म का सूत्रपात गौतम बुद्ध ने किया था। जो आदर्श उन्होंने स्थापित किए थे, वे सब समाप्त हो चुके थे। लोक जीवन को एक विकल्प की आकांक्षा थी। ऐसा विकल्प जो समाज को पुनः सहजता एवं सुगमता प्रदान कर सके। वज्रयान जैसे भ्रष्ट आचरण से मुक्ति दिला सके। ऐसी स्थिति में गोरख एक विकल्प लेकर आए। उन्होंने मर्यादित, संस्कारित, भारतीय जीवन मूल्यों के अनुरूप एक पंथ का सूत्रपात किया।

डूबते हुए को जिस प्रकार तिनका भी एक सहारा लगता है। वह कल्पना करता है, शायद मैं इसके सहारे तैर जाऊँ। इसका आत्मबल दृढ़ हो उठता है और वह संघर्ष करता हुआ किनारे की ओर बढ़ने लगता है। वैसा ही नाथ पंथ के साथ भी लोक ने निर्धारित किया। नाथ पंथ में वे खूबियाँ थी भी। उसने अपने आदर्श विचारों से समाज में सहजता उत्पन्न करने का भरसक प्रयत्न भी किया। उसकी चारित्रिक निर्मलता के कारण वह लोक स्वीकृत भी हो गया। किन्तु वह अपनी उस आदर्शवादिता को लम्बे समय तक स्थाई नहीं रख पाया। गोरखनाथ के बाद कुछ काल बाद ही वह विकृतियों का शिकार होता चला गया। बौद्ध धर्म की भाँति उसके भी कई फिरके होते गए, जिसे

वर्णित गाथा ने ''फाड़'' कहा है। फाड़ का अर्थ होता है हिस्सा, भाग, विभाजन। बौद्ध धर्म कई भागों में विभाजित हो गया। वही स्थिति गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ पंथ में भी हुई, वह भी कई 'फाड़ों' में बटने लगा। ये विभाजन लोक कल्याण के लिए नहीं थे, अपितु तत्कालीन नाथों के वर्चस्व की लड़ाई के कारण स्वरूप थे। इस विभाजन ने पंथ के सर्वजनीय अस्तित्त्व को दुर्बल बना दिया। पंथ खण्ड–खण्ड होता गया। उसकी मर्यादाएँ और आदर्श टूटते–बिखरते चले गए। वह तो एक सुदृढ़ पंथ कहलाने की स्थिति में भी नहीं रह गया। प्रत्येक फिरके के मठाधीश नाथ परस्पर बैर–विरोध पर उतरने लगे। वाक्‌युद्ध से लेकर शस्त्रयुद्ध तक की स्थिति आती रही। गोरख जिस पंथ को लोक स्वीकृत करवाकर धर्म बनाना चाहते थे वह तो पंथ भी नहीं रह गया। पंथ का सीधा अर्थ होता है मार्ग। वह मार्ग जो पंथी को, राहगीर को उसके अभीष्ट लक्ष्य–गंतव्य तक पहुँचा सके। पंथ तो अनेक गलियों में मुड़ने लगा। चौराहे बनते रहे। राही/पंथी भटकने लगे। स्वयं भटके हुए रहबर पथिकों को गंतव्य तक पहुँचाने के बजाए बीहड़ों में ले जाने, पहुँचाने लगे। पंथ, धर्म बनते–बनते अधर्म के मार्ग पर चल पड़ा।

धर्म की कोई भी सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती। हम अपने आचरण में जो धारणा कर लें, वही धर्म हुआ। वह आचरण जो हमें लोक कल्याण और आत्मकल्याण की ओर उन्मुख करे, वह धर्म है। सात्विकता, सदाशयता, समासिकता, सत्य, शुचिता, दया, करुणा, अहिंसा, शीलता, परहित भावना आदि ये सभी धर्म के तत्त्व कहे जा सकते हैं।

क्या ये सभी तत्त्व नाथ पंथ में नहीं थे? यदि थे तब वह पंथ से धर्म क्यों नहीं बन पाया? बिखराव उसका एकमात्र कारण नहीं था। वह तो सभी धर्मों में हुआ है। हिन्दू धर्म में भी (सनातन) बौद्ध, जैन आदि धर्मों में बिखराव हुआ। मतमतांतर हुए हैं। फिर नाथ पंथ क्यों सिमट कर रह गया?

इसका सबसे श्रेष्ठ उदाहरण सिख धर्म माना जा सकता है। उसकी स्थापना भी पंथ के ही रूप में हुई थी। 'आज्ञा भई करतार की, तभी चलायो पंथ' कहा गया है। जब लगने लगा गुरुगादी के लिए संघर्ष होने की स्थिति/संभावना बन सकती है, तब गुरुगादी प्रथा या व्यवस्था तत्काल स्थगित कर दी गई और गुरुग्रंथ को ही आधार मान लिया गया। 'गुरु ग्रंथ जी मान्यो सकल गुराँ की देह।' ग्रंथजी को ही सभी गुरुओं की देह मान लिया। ग्रंथजी का मान इसी प्रकार माना गया, जैसा किसी सजीव गुरु या देह का। यह स्वीकार कर लिया गया कि जिस पाट पर गुरु ग्रंथ साहिब विराजित हैं,

वहाँ यह भावना स्थापित की जाय कि स्वयं सद्गुरु नानकदेवजी एवं सभी गुरु विद्यमान हैं। विवाद समाप्त हो गया। पंथ अपने मूल आदर्शों और सिद्धांतों के सहित सर्व स्वीकृत हो गया। उन आदर्शों को पूरे भाव से अपने आचरण में धारण कर लिया गया। इस कारण वह लोक स्वीकृत हो गया। धर्म बन गया। पूरे पंजाब में केवल सिख ही नहीं, अन्य सनातनी हिन्दू भी ग्रंथजी की और नानकदेवजी सहित सभी गुरुओं को पूज्य मानते हैं। यह है साझा लोक संस्कृति का उत्कृष्ट उदाहरण और लोक स्वीकृति।

नाथपंथ में यह नहीं हो सका। नाथ गुरु परस्पर लड़ते रहे। विवाद करते रहे। बँटवारे करते रहे। लोक ने जिस आस्था से उसे स्वीकृति प्रदान की थी। उसी प्रकार लोक मानस नाथ पंथ के प्रति उदासीनता प्रकट करता हुआ उसे उपस्थित करने लगा।

गोरखनाथ का पंथ कई फिरकों में बंटकर नाथ पंथ न होकर नाथों का पंथ बनता चला गया। सिमटता चला गया। उसकी लोक स्वीकृति खंडित हो गई। वह पंथ से जाति बन गया। इसका सारा दोष नाथपंथ के परवर्ती गादीधारी मठाधीशों और नाथों को है। लोक तो अत्यंत निरपेक्ष रहता है। जिस प्रकार बुद्ध धर्म भारत में उपजा, भगवान गौतम बुद्ध ने उसका प्रवर्तन भी तत्कालीन आडम्बरों और अनाचारों को समाप्त करने के लिए किया था। वह एक प्रकार से क्रिया की प्रतिक्रिया थी। उसी प्रतिक्रिया में जैन धर्म को भगवान महावीर ने संजीवित किया। भले ही वे जैन धर्म के आदि प्रवर्तक नहीं माने जाएँ, किन्तु जैन धर्म को उनके ही नाम से जाना–पहचाना और माना जाता है। महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी का समय एक ही था। दोनों के आदर्शों और संदेशों–उपदेशों को लोक ने स्वीकृति प्रदान की थी। फिर क्या कारण रहा कि बौद्ध धर्म भारत के बाहर कई देशों में आज भी स्थापित है, जबकि भारत से, अपनी जन्म भूमि से वह विस्थापित हो गया। इसका मूल और सर्वमान्य कारण है पंथ के परवर्ती गादीधारी नाथों के आचरण की निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता, आचरण भ्रष्टता। जो आदर्श सद्गुरु गोरखनाथ ने पंथ की स्थापना के समय निर्धारित किए थे। पंथ उनसे भटक गया। इसके समानान्तर जैन धर्म ने अपनी आचरण दृढ़ता बनाए रखी? भले ही जैन धर्म में भी अनेक फिरके हुए, किन्तु प्रत्येक विभाजन में धर्म के मूल सिद्धांतों को खंडित नहीं होने दिया गया। धर्म धारक मुनिजनों ने धर्म–प्रचार करने में धर्म के मूल आदर्शों का जहाँ पूरी सतर्कता से प्रचार और प्रसार किया, वहीं उन्होंने स्वयं भी उसका पूरी दृढ़ता से पालन किया। संयम, सदाचरण, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, दया आदि जो धर्म के मूल सिद्धाँत हैं, उनको जीवित और जीवंत बनाए रखा। इस धर्म के मुनि सदा समाज से जुड़े रहे और तीसरी आँख की तरह उन्होंने समाज में धर्म सिद्धांतों के परिपालन पर दृष्टि बनाकर रखी।

ऐसा न बौद्ध धर्म में हो पाया और न नाथ पंथ में। इसी कारण नाथ पंथ भी बौद्ध धर्म की भाँति मठों, आसनों और द्वारों तक सीमित हो गया। भारत के बाहर तो नाथ पंथ का कोई अस्तित्त्व ही नहीं है।

उनके बड़े–बड़े मठ और आसन देश में सर्वत्र है। उन मठों पर खूब सारी भूमि तत्कालीन राजाओं और जागीरदारों ने दान–भेंट में दे रखी हैं। नाथ पंथ में आज भी कई विद्वान मौजूद हैं। इससे इतना तो प्रमाणित हो ही जाता है कि तत्कालीन राजाओं और महाराओं पर नाथ सिद्धों का बहुत प्रभाव रहा होगा।

**कुछ पावन प्रसंग–** मैंने इस अंचल के कई नाथ आसनों एवं मठों का भ्रम किया है। मुख्य रूप से आंतरी, संजीत, बाँगरेड़, पड़दाँ, अठाना (आसन दरिया नाथ), संधारा, कँवला (भानपुरा) इन्द्रगढ़, भानपुरा, होरी हनुमान (मन्दसौर) संधारा, दूधाखेड़ी, कँवला, चौरासीगढ़, धर्मराजेश्वर आदि (मन्दसौर जिलान्तर्गत)। इन सब स्थानों के विषय में एक विशेष बात यह भी दिखी कि वहाँ हनुमान की मूर्तियाँ स्थापित हैं। जिसे मैंने पिछले पृष्ठों में उल्लेखित भी किया है। नाथजन उन्हें हणुमंत कहते हैं और अपने विशेष नाथों में से एक बतलाते हैं। एक नाथ ने बताया कि नाथ शिव आराधक हैं। हनुमानजी शिव के अंश हैं, इस कारण वे भी नाथ ही माने जाते हैं। आदिनाथ के अंश रूप हनुमान की पूजा नाथ स्थानों पर पूरी श्रद्धा और विश्वास से की जाती है।

इन्द्रगढ़, भानपुरा और होरी हनुमान, भावगढ़ (मन्दसौर) में तो पूरा अंचल यहाँ के सिद्ध–नाथों को अपनी आस्था से सत्कारता रहा है। इन्द्रगढ़ में रात–रात भर भजन कीर्तन होते रहे हैं। पूरी व्यवस्था नाथ जी महाराज करते हैं। मैंने भी एक बार बहुत पहले बाबा रामनाथजी महाराज के सान्निध्य में ऐसे कीर्तन का आनंद लिया है। एक बार तो उन्होंने एक शेर को गधा बनाकर अपने आश्रम में बांध लिया था। भजन–कीर्तन के बाद सबेरे उसे फिर से शेर (चीता) बनाया और ताकीद कर दी कि रेवा नदी के उस पार तुम्हारी सत्ता और रेवा के इस पार नाथजी हणुवंत की सत्ता। आज के बाद यदि इधर आए तो हमेशा के लिए गधा बना दूँगा। वह शेर फिर कभी रेवा (स्थानीय नदी) के इस पार नहीं आया। आश्रम के सामने नदी के परले पार वह प्रातःकाल पानी पीने आता और नाथजी को धोक देकर चला जाता। उसकी दहाड़ सुनकर नाथजी बाहर आकर उसे आशीर्वाद देकर विदा करते थे।

इसी प्रकार आँतरी की एक घटना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आँतरी में नाथों की मढ़ी एक चर्चित एवं प्राचीन मठ है। यह मठ किसी समय अत्यंत प्रसिद्ध था। गांधी सागर बाँध के जल विस्तार के कारण मठ का अस्तित्व खतरे में पड़ गया। लोग बताते हैं कि

मठ में एक बहुत बड़े सिद्ध महाराज रहते थे। उनका यश दूर–दूर तक विस्तारित था। आँतरी के महंत रघुवीरदासजी रामावत एवं उनके पिता श्री महंत किशोरदास जी रामावत ने बतलाया था कि एक समय कोई एक नाथ बनारस से पधारे। उनकी इच्छा आँतरी आकर उन सिद्धा नाथ जी से भेंट करने की थी। वे जब आँतरी के निकट पहुँचे तब वर्षाकाल था। बीच में चम्बल की सहायक रेतम नदी उफान पर थी। बनारस वाले सिद्ध नाथजी एक शिला पर बैठ गए और नदी पार करने का उपाय खोजने लगे। वहाँ उन्हें कोई नाव या नाविक भी नहीं दिखाई दिया। तब उन्होंने अपने सिद्धि के बल पर उस चट्टान से कहा– 'चलो और तैरकर आँतरी पहुँचा दो।' आदेश पाते ही शिला सरक कर नदी में प्रविष्ट हो गई और रेतम नदी के जल पर तैरने लगी। जब वह तैरकर आँतरी गाँव के निकट पहुँची, तब मठमेड़ी के सामने जाकर रुक गई। ठीक उसी समय आँतरी के नाथजी ने गोखड़े से सिर निकालकर नदी का जल प्रवाह देखना चाहा। सामने एक पाषाण शिला पर अपरिचित एक दिव्य नाथ को बैठा देखकर वे आश्चर्य में पड़ गए। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि यह कोई सिद्ध पुरुष है, जो शिला को नाव की तरह तैराकर यहाँ तक पहुँचा है। उसने अपनी तर्जनी अंगुली को चक्राकार घुमाकर उस शिला को चक्राकर घूमने का आदेश दे दिया। बनारस वाले सिद्ध ने जान लिया कि यह करिश्मा आँतरी वाले सिद्धनाथ का है। उसने कहा– अरे 'वृषभ (बैल)! प्रहार करने से पूर्व शत्रु–मित्र की परख तो कर ली होती। ऐसा कहते ही आँतरी वाले नाथजी के सिर पर बड़े–बड़े सींग उग आए। गोखड़ा बहुत संकरा था। अब नाथजी का सिर बाहर का बाहर रह गया। उन्होंने हार कर कहा– 'अरे अतिथि नाथजी! विद्या समेटो'। बनारस वाले नाथ ने विद्या समेट ली। आँतरी वाले नाथ यथास्थिति हो गए। बनारस वाले नाथ ने घोष किया– 'आदेश ! आँतरी वाले नाथजी ने प्रतिउत्तर दिया। सिद्धों– महासिद्धों को, सद्‌गुरु मछंदरनाथ सद्‌गुरु गोरखनाथ को।

(नाथों में आदेश घोष ठीक वैसा ही है, जैसा अन्य आचार समाजों में राम–राम या अन्य भेंट के घोष)

आँतरीवाले नाथ ने पूछा– 'आगमन!

बनारस वाले नाथ ने कहा– शिवधाम बनारस।

आँतरी वाले सिद्ध बोले– उद्देश्य!

बनारस वाले सिद्ध ने कहा –दर्शन!!

आँतरी वाले सिद्ध ने प्रति उत्तर में कहा– दर्शन प्रतिदर्शन हो गए। एक देवालय में दो भगवान नहीं रह सकते। एक वन में दो सिंह नहीं रह सकते– फिर एक नगर

में दो सिद्ध कैसे रह सकेंगे। आप आगे बढ़कर संजीत में मुकामी हो जाओ। मैं स्वयं आपके दर्शन करने वहाँ आपके आसन पर आऊँगा, तब भेंट होगी और आपको ससम्मान आँतरी गढ़ी में अतिथि बनाऊँगा। तभी ज्ञान चर्चा होगी, बनारस वाले नाथजी आगे बढ़ गए और संजीत में अपना आसन बनाया। वहाँ वे कुछ वर्ष रहे। जब तक रहे लोक जीवन की खूब सेवा ली। उनके रहते कभी अकाल नहीं पड़ा। महामारी नहीं फैली। लूट–डाका नहीं पड़ा। एक बार एक सेठ के घर डाका पड़ गया। नाथजी की नींद खुल गई। उन्होंने अपना चिमटा घुमाकर फेंका जो गाँव में बहुत दूर तक उड़ता हुआ चला और डाकुओं की खूब पिटाई कर दी। डाकू लूट का माल छोड़कर जान बचा कर भाग गए। यह करिश्मा सबने देखा। सबेरे सारा गाँव महाराज नाथ जी के आसन पर पहुँचा, उनके पैरों में धोक लगाई। उनका चिमटा उन्हें लौटाया। ऐसे कई चमत्कार आज भी वहाँ के पुराने लोगों को याद हैं। उनके शिष्यों के परिवार आज भी आँतरी में निवासरत है। उनके पिता भरथरी गाथा और अन्य भजन गाने और सारंगी बजाने में ख्यात थे।

आँतरी वाले नाथजी में और बनारस वाले नाथजी में अनेक बार भेंट हुई। बनारस वाले नाथ जी जब भंडारा करते, तब आंतरी वाले नाथ जी को निमंत्रण अवश्य होता था और जब बनारस वाल नाथजी भंडारा करते थे, तब आँतरी वाले नाथजी अवश्य ही संजीत पहुँचते थे। उनके आसन पर स्वयं जावरा नवाब दीदार करने व सिजदा करने जाते थे।

आँतरी में तो अभी कुछ वर्ष पूर्व तक भी भंडारा होता रहा। मुख्य नाथजी के गद्दी वारिस भंडारा करते रहे। मुख्य सिद्धनाथजी महाराज ने एक बार भंडारा किया। भंडारे में लाप्सी (हलवे की तरह दलिए से बना व्यंजन) खास होती थी। पूड़ी और सब्जी तथा खाटिया (कढ़ी–बेसन और छाछ से बनाई जाती है) बनता था। सारा भोजन देशी घी में बनता था। रात में भोजन बन रहा था, अगले दिन भोजन प्रसादी थी। आधी रात को हलवाई ने सूचना दी कि 'महाराज जी घी समाप्त हो गया है। लगभग दो पीपे घी की और आवश्यकता होगी। महाराज शांत बने रहे, उन्होंने कहा 'जाओ दो पीपे नदी माता के जल से भरकर ले आओ। हलवाई ने दो पीपे नदी के जल से भरवाकर महाराज के सामने रखवा दिए। नाथजी महाराज ने दोनों पीपों में धूनी से लेकर चुटकी–चुटकी भभूत डाली और मोरपंखी से उपचारित कर आदेश दिया कि जाओ कढ़ाइयों में डालकर भोजन तैयार करो। हलवाई स्तब्ध! क्या करुँ? नाथजी का रोब रुतबा ऐसा कि प्रतिप्रश्न करने का साहस किसी में नहीं था।

हलवाई ने डरते–डरते कढ़ाई में थोड़ा सा पानी उड़ेला और उसकी अनुभवी

पारखी दृष्टि ने जान लिया कि अरे! यह तो असली घी है। घी की सुगंध चारों ओर फैल गई। हलवाई ने वहीं से नाथ जी को धोक लगाई और घी का उपयोग कर लिया। उधर संजीत वाले नाथ जी को आभास हुआ कि आंतरी भंडारे में घी खुट गया। उन्होंने एक पटिये पर दो पीपे घी संजीत से आँतरी के लिए तैरा दिया। आँतरी वाले नाथ जी तब तक घी लिवाने के लिए अपने सेवक मनासा के लिए रवाना कर चुके थे। उन्हें संजीत से घी आने का भी आभास हो गया। उन्होंने तत्काल दो सेवक नदी तट पर भेज दिये और संजीत से आया घी नदी से उठवा लिया। जब अगले दिन मनासा से घी के दो पीपे आ गए, तब उन्होंने हलवाई को बुलवाकर कहा– 'रात में गंगा मैया से दो पीपे घी उधार लाए थे, जाओ ये पीपे ले जाकर कर्ज उतार दो।

इन्होंने भी बाद में जीवित समाधि ले ली। जब वे समाधि में प्रविष्ट हुए, तब मंदिरों के घड़ियाल घंटियाँ स्वयं ही बजने लगे थे। वे बहुत दूर तक समाधि के भीतर चलते–चले गए और फिर अन्तर्ध्यान हो गए। वर्षों बाद उन्हें हरिद्वार में गंगा तट पर समाधि रूप में देखा गया।

हलवाई जब पीपे लेकर नदी तट पर पहुँचा तब तक तो पीपों में घी था। जब उड़ेला, तब वह पानी बन गया। यह बात उसने सबको बताई।

ऐसे सिद्ध थे नाथजी। ऐसे सिद्ध नाथ और भी थे। होरी हनुमान में तो ऐसा चमत्कार मैंने स्वयं देखा। तब जाकर आंतरी के नाथजी का पानी से घी और घी से पानी बनाने का चमत्कार मुझे विश्वस्त लगा। मैंने पिछले पृष्ठों में एक जगह होरी हनुमान का उल्लेख किया है। वहाँ एक सिद्धनाथ का भी मैंने उल्लेख किया है। भावगढ़ अंचल में यह सिद्ध स्थल आज भी आस्था का केन्द्र बना हुआ है। मैं उस अंचल में 1963 से 1970 तक अध्यापक रहा। श्रावण मास में होरी हनुमान पर प्रतिदिन कोई न कोई गोठ होती रहती थी। दाल–बाटी का भोजन और वन भोज। 1968 में मैंने एम.ए. उत्तीर्ण किया। साथी सिक्षकों की इच्छा थी मैं सबको पार्टी दूँ, किन्तु हमारे प्रधानाचार्य का निर्णय था कि हम सब मिलकर सहगल को पार्टी दें। अन्ततः प्रधानाचार्य का ही निर्णय मान्य हुआ। रीछालाल मुँह गाँव में मुझसे पहले किसी ने भी एम.ए. नहीं किया था। स्टॉफ में भी कोई एम.ए. उत्तीर्ण नहीं था। हम लोग होरी हनुमान जी पर गोठ के लिए पहुँचे। सारा सामान सायकलों पर लादा, बर्तन सब वहाँ मिल जाते हैं।

हम सात जने वहाँ पहुँचे, लग्गा लगा दिया। बाटी बनाने में रतनलाल शर्मा बहुत प्रवीण। बाटियाँ सिक गईं। उन्हें गर्म राख में दबा दिया गया। दाल को तड़का लगा

दिया गया। अब घी की बारी थी। लेकिन घी मिला नहीं। लाना ही भूल गए। अब क्या हो? गाँव में घी मिल जाएगा। कौन जाए? रतनलालजी ने कहा– मठ में घी रहता है। वे उधार दे देंगे। कल घी के बदले घी भेज देंगे। यही चलन है। फिर प्रश्न हुआ नाथजी से घी मांगने कौन जाए। जो जाए पहले डाँट खाए। पहला प्रहार सहन कर ले, वही घी ला सकता है। मेरा नाम तय रहा। आप सहन कर लोगे। मेरे पास कोई विकल्प नहीं था। बर्तन लेकर धूनी पर अभी पहुँचा भी नहीं था कि, नाथ जी चिल्लाए। घी भूल आए। अब मांगने से डर रहे हैं। कैसे शिक्षक लोग हैं भुलक्कड़। बच्चों को क्या शिक्षा देंगे। उनकी वाचा गर्म होती जा रही थी। मैं हिम्मत बटोरकर आगे बढ़ा। जाते ही तत्काल चरण वंदन किया। आशीर्वाद तो मिलना ही था। बैठो! आदेश था। बैठ गया। घी भूल आए? जी! कितना चाहिए। एक सेर के लगभग! लगभग क्या होता है। कमंडल में भर देता हूँ। उतना कल भेज देना या खुद दे जाना? मैंने सिर हिलाकर हामी भर ली। उन्होंने अपने पानी वाले कमंडल से मेरे कमंडल में पानी भर दिया। हँसकर बोले–ले जाओ। अंदाज से भरा है। काम चल जाएगा। कल भिजवा देना। मैं क्या कहता? पानी का कमंडल लेकर चल पड़ा।

सुन्न–मुन्न निराश होकर मुकाम पर पहुँचा। मेरा चेहरा देखकर सब जान गए कि घी नहीं मिला। रतनलाल जी ने कमंडल का ढक्कन खोला तो घी भरा था। खुशबू फैल गई। मैं तो आश्चर्य में था। सबको किस्सा सुनाया। सभी आश्चर्य में हुए। कोई कुछ बोला नहीं। घी का स्वाद और खुशबू ने बाटियों को ऐसा रसीला कर दिया कि उनका स्वाद आज भी भूला नहीं। अगले दिन याद रखकर घी वापिस भिजवाना था। मैं खुद ही लेकर गया। घी उन्होंने अपने उसी पानी वाले कमंडल में डलवा दिया। न वे कुछ बोले न मैं कुछ बोला। पानी से घी और फिर घी से पानी बनने की लीला मैं आज भी सोचकर चकित हो उठता हूँ। आने लगा, तब नाथ जी ने कहा– रुक जाओ। भोजन करके जाना। वही दाल–बाटी का भोजन था, किन्तु वैसा स्वाद नहीं था।

आंतरीवाला घी के पीपों वाली घटना सुनकर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। अविश्वास तो बिल्कुल भी नहीं।

ऐसे अनेक पुरा प्रसंग नाथ सिद्धों के सुनने को मिल जाते हैं। लोग बहुत आस्था से इन प्रसंगों को सुनाते हैं और धन्य भी होते हैं। नाथ सिद्धों के प्रति आस्था और विश्वास की यह पुरा कथाएँ भले ही आज अविश्वसनीय लगें अथवा कोरी कथाएँ लगें, फिर भी इनमें नाथों के प्रति जो लोक विश्वास, आस्था और लोक स्वीकृति का स्वर है, उसे तो नमन करना ही पड़ता है। उज्जैन अंचल तो सिद्ध नाथों का केन्द्र ही है। यहाँ

आज भी कई सिद्ध नाथों का होना कहा जाता है। शिव धाम में ऐसा होना आश्चर्यजनक भी नहीं है। दूर निमाड़ अंचल भी सिद्ध नाथों का वर्चस्व क्षेत्र है। ओंकारेश्वर–महेश्वर जैसे शिव तीर्थ नाथों के आकर्षण केन्द्र रहे हैं। पंचपहाड़, सुकैत की राजस्थानी सीमा से लगाकर दशपुर अंचल का समग्र क्षेत्र सिद्ध नाथों का प्रभावी क्षेत्र रहा है।

महिदपुर–तराना में मेरे कई रिश्तेदार हैं। कई बार वहाँ आना–जाना होता है। तराना से यही कोई तीस किलोमीटर पर एक सिद्ध धाम है– करेड़ी माता। यह धाम वैसा ही है जैसा दशपुर अंचल में भादवामाता, आँतरीमाता, मेवाड़ में आवरी माता, फुवारी माता, दूधाखेड़ी माता, मोड़ीमाता, सांगा माता, अन्नपूर्णा माता जैसे लोकदेवी धाम। करेड़ी माता अर्थात् करेड़ी गाँव की माता। यहाँ लगभग सभी देवी–देवताओं की स्थापना की गई है। इन देवी–देवताओं की स्थापना के पीछे एक लोक कथा प्रचलित है। यह लोक कथा इस अंचल में नाथों के प्रति आस्था की बहुत ही प्रमाणिक कथा है। इसी प्रकार यह कथा इस अंचल में यहाँ के समुदाय की वचनबद्धता, निर्मल सहृदयता, अतिथि सत्कार एवं चारित्रिक दृढ़ता की आचार संहिता भी है। मैंने यह कथा उस अंचल के लोक कवि नारायणजी 'धतूरा' से तराना में सुनकर 24 जनवरी 1968 में लिखी थी।

## लोकमाता करेड़ी

लोक जीवन आस्था और विश्वासों का समन्वय करके चलता है। लोक माताएँ और लोक देवता लोक जीवन को गतिमान बनाकर रखते चले आ रहे हैं। पूरे मालवाँ में तथा पूरे देश में ऐसे अनेक देवरे, थानक, मंदिर हैं, जो अपने–अपने अंचल में आस्था के केन्द्र हैं। लोक जीवन के समस्त दुःख–सुख उन्हीं के सहारे चलते हैं।

ऐसा ही एक लोक तीर्थ है करेड़ी माता। माता की अन्तर्कथा भी बड़ी अद्‌भुत है। करणीनाथ जोगी को गोरखनाथ का अवतार माना जाता है। वे योग साधना करने के लिए अनेक स्थानों पर गए, किन्तु कोई भी स्थान उनके मन को नहीं रुचा। भ्रमण करते–करते वे लखंदर नदी के निकट वर्तमान करेड़ी माता के वन क्षेत्र में पहुँचे। यहीं पर एक कमल तालाब था। उसमें असंख्य रक्त कमल खिले हुए थे। उन्हें यह स्थान पसंद आ गया। उस वन की रक्षिका एक भील कन्या थी। वह वन उसके पिता की जागीर था। भील कन्या का नाम था–'कनकौती', वह भिलाला गोत्र की थी। भिलाला आदिवासी अन्य भीलों में श्रेष्ठ माने जाते हैं। वे ठाकुर कहलाते हैं। कनकौती शस्त्र सज्जित हो कमल सरोवर की रक्षा कर रही थी। यहाँ गाएँ व अन्य वन पशु पानी पीने आते थे। सबके पृथक घटक थे। कोई भी पशु किसी दूसरे पशु को सताता नहीं था। तालाब की मछलियों का शिकार करना भी वर्जित था।

कनकौती को देशनोक की करणी माता का इष्ट था। उसने माता की अखण्ड तपस्या तपी थी। वह सिद्ध हो चुकी थी। समूचा वनांचल अहिंसक क्षेत्र था। लोक में कनकौती को उनके जीवन काल में ही करणी माता कहा जाने लगा था।

करणी नाथ ने योग बल से स्थान का निरीक्षण किया, उन्हें वह स्थान अत्यंत पवित्र लगा। योग साधना के लिए यही स्थान उपयुक्त है। उन्होंने अपने शिष्यों सहित सरोवर के तट पर मुकाम किया। वे सरोवर में स्नान करने के लिए जैसे ही किनारे पर पहुँचे, वैसे ही कनकौती ने उन्हें विनम्रतापूर्वक रोककर निवेदन किया– 'नाथ महाराज, मेरा प्रणाम स्वीकार करें। मेरा निवेदन है कि आप थोड़े विलम्ब के पश्चात् स्नान करें तो कृपा होगी। मैं इस सरोवर की रक्षिका हूँ। सभी पशु जल पी चुके, केवल दो बाघ शेष हैं। उन्हें सबसे अंत में जल पीने की अनुमति है। तब तक आप थोड़ा विश्राम कर लें। करणीनाथ कनकौती की विनम्रता और अनुशासित व्यवस्था देखकर प्रभावित हुए। इसी बीच दोनों बाघ वहाँ आ पहुँचे। दोनों ने चुपचाप सरोवर में से जल पिया और लौट गए। कनकौती ने करणीनाथ से निवेदन किया और कहा–मेरा नाम कनकौती है। कुछ लोग मुझे करणी भी कहते हैं। यह वनांचल मेरे पिता की जागीर है। मैं इस सरोवर की रक्षिका हूँ। सभी पशु यहाँ आकर पानी पीते हैं। लखंदरी नदी में भी कुछ पशु पानी पीते हैं। सबकी बारी बंधी है। कोई भी पशु यहाँ हिंसा नहीं करता। इस कमल ताल में कोई मछली का शिकार भी नहीं कर सकता। यह समूचा स्थान शांत और सुख देने वाला है। आप देखे यहाँ कितनी हरियाली है। आप यहाँ जब तक चाहें मुकाम करें। आपकी उचित सेवा में कमी नहीं आएगी।

करणीनाथ ने कहा– हमने अपने योग बल से इस क्षेत्र का अनुमान लगा लिया है। यह सिद्ध क्षेत्र है। तुमने यहाँ अखण्ड तपस्या की है। तुम्हारी तपस्या ने इसे पवित्र कर दिया है। हम यहाँ शिव आराधना करना चाहते हैं। तुम हमें अपनी स्वीकृति दे दो। हमारे ध्यान में कोई बाधा नहीं पहुँचाए। फिर वह कोई भी क्यों न हो। ऐसा आश्वासन भी दे दो।

कनकौती ने कहा– नाथ महाराज, आप तो सिद्ध गुरु गोरखनाथ के अवतार माने जाते हैं। आपकी साधना में भला कौन बाधा पहुँचा सकता है ? आप निश्चिंत होकर साधना करें। मेरे रहते आपकी साधना में कोई विघ्न पैदा नहीं होगा।

करणीनाथ ने सरोवर के मध्य एक विशाल रक्त कमल उत्पन्न किया। उसके आसपास नौ श्वेत कमल अपने शिष्यों के लिए उत्पन्न किए। सबने कमलों पर आसन जमाया और समाधि में लीन हो गए।

इसी मध्य ऋषि दुरवासा वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने संध्या का समय जान, सरोवर में स्नान करना चाहा। उनके साथ उनके शिष्य भी थे।

कनकौती उनके क्रोधी स्वभाव से परिचित थी, फिर भी उसने दुर्वासा जी को विनयपूर्वक सरोवर में स्नान करने से मना करते हुए कहा– महाराज, आप नदी में स्नान करें। सरोवर में करणीनाथ अपने शिष्यों सहित शिव साधना कर रहे हैं। आपके तथा आपके शिष्यों के सरोवर प्रवेश से उनकी समाधि भंग हो सकती है।

दुर्वासा का क्रोध भड़क उठा। उनकी आँखों से ज्वाला फूट पड़ी। वे कमंडल से जल लेकर कनकौती को श्राप दें, उससे पहले उसने आदेश दे दिया– 'आप जहाँ है, वहीं मूर्तिवत स्थिर हो जाए।' दुर्वासा जी वहीं स्थिर हो गए। शिष्यों में भय व्याप्त हो गया। पहली बार किसी ने दुर्वासा जी को चुनौती दी थी। उनके श्राप प्रहार को निरस्त किया था।

उन्होंने सबसे पहले शेष से प्रार्थना की। शेष युगल वहाँ आए। वे कुछ कहें या करें, कनकौती ने हाथ जोड़कर निवेदन किया– 'भगवान शेष यहीं बिराजकर स्थिर हो जाएँ। शिष्यों ने बगलामुखी का आव्हान किया। बगलामुखी माता आईं। कनकौती ने हाथ जोड़कर निवेदन किया– माता यहीं बिराजकर स्थिर हो जाएँ। शिष्यों ने गणपति का आव्हान किया। कनकौती ने प्रणाम कर निवेदन किया। सिद्धि विनायक यहीं आसन ग्रहण करें। सिद्धि विनायक वहीं स्थिर हो गए।

शिष्यों ने बीजासन माता का आव्हान किया। कनकौती ने प्रणाम कर निवेदन किया– माता आपका स्वागत है। आप अपनी इस पुत्री का मान रखें और यहीं बिराजें।

शिष्यों ने मच्छंदर नाथ और गोरखनाथ का आव्हान किया– दोनों वहाँ पधारे। कनकौती ने निवेदन कि– हे सिद्ध योगियों! आपका स्वागत है। अपनी इस पुत्री की लाज रखें। करणीनाथ की साधना पूर्ण होने तक यहीं बिराजे। वे दोनों भी वहीं समाधि में लीन हो गए।

उन्होंने कनकावती का आव्हान किया। माता प्रकट हुई। उन्होंने कहा– पुत्री– हठ त्याग दो। तुमने तो सभी देवों को इस स्थान पर स्थापित और प्रतिष्ठित कर दिया है। इन्हें मुक्त कर दो। तुम तो मेरी वरद पुत्री हो। मेरा कहा मानो।

कनकौती ने माता को साष्टांग प्रणाम किया। हाथ जोड़कर बोली– माता, जब तक योगी करणीनाथ की साधना सफल नहीं होती, तब तक मैं इन सबको कैसे मुक्त

कर सकती हूँ। मैं वचनबद्ध हूँ माता। तभी भगवान शिव सरोवर के मध्य प्रकट हुए। उन्होंने करणीनाथ को चेतमान किया और उन्हें मनवांछित वरदान प्रदान किया। करणीनाथ ने सबको प्रणाम किया। वे शिष्यों सहित सरोवर से बाहर आए। उन्होंने कनकौती से प्रार्थना की– हे देवी! तुम धन्य हो। तुमने तत्परतापूर्वक मेरी साधना की सुरक्षा की अब माता कनकावती और मेरी प्रार्थना मानकर इन सब देवों को मुक्त कर दो। कनकौती ने जल छिड़ककर सब देवों एवं दुर्वासा जी को चेतमान किया। सबने उसे वरदान दिया कि यह स्थान मनोकामना सिद्धि का पवित्र तीर्थ रहेगा। तुम यहाँ की अधिष्ठात्री देवी मान्य होओगी। तुमने करणी लोक माता को साधा है। करणीनाथ ने यहाँ शिव साधना की है, इस कारण यह वनांचल करणी नाम से जाना जाएगा। तुम लोक माता कनकावती की वरद पुत्री हो, इस कारण यह स्थान माता कनकावती के नाम से भी जाना जाएगा। यही तुम्हारा नाम भी है। कनकौती अर्थात् कनकावती।

कनकौती ने विनम्र होकर निवेदन किया। सब देव–देवियाँ और ऋषि दुर्वासा जी मेरी उदंडता के लिए मुझे क्षमा करें। मैं योगी करणी नाथ जी की समाधि की सुरक्षा के लिए वचनबद्ध थी। मेरा यह निवेदन है कि भगवान शिव एवं उनके अवतार दुर्वासा, योगीराज मच्छंदर नाथजी, गोरखनाथजी, करणीनाथजी तथा समस्त देव एवं माताएँ जो यहाँ उपस्थित हैं। वे सदा यहाँ बिराजित रहें और अपनी कृपा इस अंचल पर बनाए रखें। सबने तथास्तु कहकर कनकौती का मान रखा।

यह लोक तीर्थ तराना, जिला से मुख्यालय लगभग तीस किलोमीटर दूरी पर लखंदर नदी के तट क्षेत्र में स्थित है। कनकौती भील कन्या थी। उसके स्वर्गारोहण के पश्चात् भिलाला समाज ही माता की पूजा–अर्चना करता रहा। अब यह पूजा–अर्चना नाथ समाज करता है। लोक में यह तीर्थ करेड़ी माता के नाम से सर्वपूज्य है। करेड़ी गाँव का भी नाम है। इसलिए यह पावन तीर्थ करेड़ी की माता भी माना जाता है।

(सौजन्य– प्रसिद्ध कवि नारायण धतूरा जी की एक भेंट में उनसे सुनकर 24 जनवरी 1968, स्थान– तराना)

## सिद्धनाथ अभंग नाथ का डेरा शंखोद्धार

यह तो सर्वमान्य सत्य है कि नरकासुर देवी पृथ्वी और विष्णु अवतार वराह का पुत्र था। जब भगवान वराह ने देवी पृथ्वी को अपने दंत श्रृंगों पर धारण किया। तब देवी पृथ्वी कामातुर हुई और उनके आर्त निवेदन पर वराह का उनसे संसर्ग हुआ। फलस्वरूप नरकासुर का जन्म हुआ।

जिस समय देवी पृथ्वी और भगवान का संसर्ग हुआ, तब भगवान विष्णु वराह के

विचित्र स्वरूप में थे। वे क्रोधातुर तथा युद्धातुर थे। स्वयं देवी पृथ्वी भी भयभीत तथा विचिलत थी। उनके मन में समस्त असहाय देवताओं के प्रति घृणा एवं आत्मकुंठा का भाव था। युद्धजन्य, क्रोध, वीरत्व, वीभत्स, घृणा, कुंठा, निर्दयता एवं भय का परिणाम था नरकासुर। देवी भूमि के  अपहरणकर्ता नरकासुर का भय निरन्तर बना रहा। इस भय का एवं नरकासुर की आकृति–आचरण का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर भी पड़ा। पैदा होते ही शिशु ने भयंकर गर्जना की। आकृति देखकर देवी पृथ्वी ने शिशु का नाम भी नरकासुर ही रख दिया।

उसी मध्य एक अन्य कन्या जो वराही कुल की ही थी। वह भी भगवान वराह पर आसक्त हुई। तब तक भगवान शांत हो चुके थे। उस सौम्य एवं सजातीय संसर्ग के फलस्वरूप उस आदिवासी कन्या से जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम दंतध्वज रखा गया। वराही आदिवासी कन्या ने अपने पुत्र का पालन–पालन उसी वन में रहकर किया। उसे शिव भक्ति का ज्ञान देकर शिव भक्त बना दिया। वराही ने उसे अनेक शस्त्रास्त्रों का अभ्यास करवाया। दंतध्वज ने शिवाराधना कर भगवान शिव से अपने अमोघास्त्र प्राप्त किये। वह वराह पिता एवं वराही माता का पुत्र होने के कारण वराह दंतध्वज नाम से ख्यात हुआ। उसका ध्वज प्रतीक वराह ही था। वराह एक भील आदिवासी समुदाय है। उनका कुलदेवता वराह है। भील समुदाय के आस्था देवों में केसर कुँवर, हनुमान, शिव और वराह माने जाते हैं। कहा जाता है–

*भीलजणा का देवत चार, केसर कुँवर, वराह देवता,*
*हणुमत, चौथो डमरुधार।*

नरकासुर का आतंक एवं अत्याचार इतना बढ़ गया कि सब तरफ त्राहि–त्राहि मच गई। देवगण भगवान विष्णु के पास प्रार्थना करने पहुँचे। भगवान ने देवताओं से कहा– यद्यपि वह मेरे अवतार काल में पृथ्वी के ससंर्ग से उत्पन्न हुआ था, तथापि उस पर देवी पृथ्वी के अपहर्ता नरकासुर का प्रभाव बना रहा। देवी पृथ्वी नरकासुर के भय से कभी भी मुक्त नहीं हो पाई थी। वह भूमि पुत्र है आप भूमि (देवी पृथ्वी) से ही कहें कि वह अपने पुत्र भौमासुर को समझाएँ।

देवता भूमि देवी के पास गए और उनसे निवेदन किया कि वे अपने पुत्र भौमासुर को समझाएँ कि वह अपने अत्याचार बंद करे। वह भगवान विष्णु (वराह) और आपका पुत्र है। उसमें तो देवगुण होना चाहिए। असुरगुण त्यागकर देवगुण धारण करे।

देवी पृथ्वी ने कहा– मैंने उसे अच्छी प्रकार से समझाने का भरसक प्रयत्न किया

है। मेरे समझाने का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मैं अपने ही पुत्र की मृत्यु का विधान भी कैसे करुँ? वह महाबली है। वरदानी भी है। उसका प्रतिकार कोई नहीं कर सकता। आप भगवान शिव से उसके अत्याचारों की मुक्ति के लिए प्रार्थना करें। देवगण भगवान शिव के पास पहुँचे। भगवान शिव ने कहा– वह महाबली है। ब्रह्माजी ने उसे वरदान दिया है। वे ही उससे मुक्ति का निदान सुझाएँ। देवगण ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्माजी ने कहा– 'लोहे से लोहा कट सकता है।' ऐसा कहकर ब्रह्माजी मौन होकर समाधिस्थ हो गए। देवगण ब्रह्माजी का गूढ़ार्थ नहीं समझ पाए। उन्होंने सरस्वती माता से प्रार्थना की। वे गूढ़ार्थ समझाएँ। माता सरस्वती ने कहा– इसका अर्थ नारद जी ही समझा सकते हैं। देवगणों ने नारदजी से निवेदन किया। नारदजी गम्भीर हो गए। उन्होंने कहा– जिस प्रकार भौमासुर (नरकासुर) भूमिदेवी और विष्णुजी के अवतार वराह के संसर्ग से उत्पन्न हुआ। उसी प्रकार दंतध्वज भी भगवान विष्णु एवं आदिवासी कन्या वराही से उत्पन्न हुआ। भौमासुर भय और क्रोध तथा आवेश का परिणाम है तथा दंतध्वज सौम्यता तथा सुसंसर्ग का परिणाम है। दोनों वराह पुत्र हैं। दोनों महाबली भी हैं। दोनों वरदानी भी हैं। भौमासुर को ब्रह्माजी का वरदान है तथा दंतध्वज को भगवान शिव का वरदान है। दोनों दिव्यास्त्रों से सम्पन्न हैं।

यदि दोनों का युद्ध हो तो दंतध्वज, भौमासुर का वध कर देगा। इसीलिए ब्रह्माजी ने कहा था। 'लोहे से लोहा कट सकता है।' दंतध्वज किसी भी स्थिति में भौमासुर पर आक्रमण नहीं करेगा। इसलिए ऐसा उपाय करना होगा कि भौमासुर, दंतासुर को ललकारे और उस पर आक्रमण करे।

देवताओं ने इन्द्रानी शचि को दंतध्वज के महल में छुपा दिया और भौमासुर तक यह सूचना भी पहुँचा दी।

भौमासुर ने दंतध्वज के महल को घेर लिया और उसे ललकार कर कहा– 'दंतध्वज, यदि अपने प्राणों की खैर चाहते हो तो इन्द्रानी शचि को मेरे हवाले कर दो।'

दंतध्वज ने कहा– भौमासुर माता शचि मेरी सुरक्षा में है। मैं उसे तुम्हें नहीं सौंप सकता।

दोनों में तीन दिन तक युद्ध चला। दंतध्वज ने कई बार भौमासुर का मस्तक काट दिया, किन्तु वह फिर से जुड़ जाता था। दंतध्वज ने सुदर्शन का आव्हान किया। सुदर्शन प्रकट हुआ। दंतध्वज ने सुदर्शन से कहा– 'आप मेरे पिता के अस्त्र हैं। आपको केवल वे ही धारण कर सकते हैं। मैं आपको धारण करके भगवान का अपमान नहीं कर

सकूँगा। ऐसा सोचकर उसने भगवान विष्णु का स्मरण किया। भगवान प्रकट हुए। भगवान वराह ने कहा– दंतध्वज, तू धन्य है। तूने अपने पिता के मान की मर्यादा रखी। भौमासुर मेरा पुत्र हैं। मैं उसका वध कैसे करुँ? दंतध्वज ने कहा– 'हे पिता! आपका कथन सत्य है, किन्तु जगत में अत्याचार करने वाला पुत्र हो अथवा पिता, पत्नी हो या पति, सारे रिश्ते–नाते भूलकर उसे दंडित किया जाना ही उचित है। ऐसा ऋषि कहते हैं।

दंतध्वज की बात सुनकर भगवान ने कृष्ण रूप धारण किया और सुदर्शन धारण कर भौमासुर का वध कर दिया।

भौमासुर का वध होते ही पृथ्वी प्रकट हुई और क्रोध में आकर उसने दंतध्वज को शाप दिया कि तुम धरती पर शूकर रूप में जन्म लोगे और तुम्हारी संतानें घृणित रूप में अपना जीवन बिताएँगी। तुमने अपने भाई का ही वध करने का जघन्य अपराध किया है।

भगवान वराह (विष्णु) ने कहा– 'देवी पृथ्वी! इसका वध तो हमने किया है। दंतध्वज तो निर्दोष है। स्वयं भौमासुर ने ही दंतध्वज को ललकारा था और उसे युद्ध के लिए विवश किया था। भौमासुर अत्याचारी था। अत्याचारी का वध करना अपराध नहीं होता।' पृथ्वी ने कहा– भगवन्, शाप तो वापिस नहीं हो सकता। इसी के वंशज वन में आपका स्वरूप धारण कर निर्द्वन्द विचरण करेंगे तथा कुछ अंश ग्राम शूकर बनकर घृणित जीवन बिताएंगे। भील समाज का यह कुल देवता माना जाएगा। इसकी उसी रूप में पूजा होगी।

भौमासुर (नरकासुर) का वध वर्तमान मैसूर अंचल में हुआ था। सुदर्शन ने उसका मस्तक तो काट दिया था, किन्तु प्राण नहीं हर पाया था। तब पृथ्वी के कहने पर दंतध्वज ने उसका शीश व धड़ शिवास्त्र पर रखकर चर्मवती के तट भेजकर जल समाधि दी थी। इसी तट पर बाद में कृष्ण भगवान ने शंख को जल समाधि दी थी। यह स्थान बाद में शंखोद्धार के नाम से ख्यात हुआ। आदिवासियों का यह पावन तीर्थ गंगा के समान पवित्र माना गया। यहाँ वैशाख मास में एक माह तक विशाल मेला लगता था। पूरे अंचल के आदिवासी यहाँ एकत्र होकर खूब नृत्य गान करते थे। यहीं पर आदिवासियों की कुलदेवी सोकड़ी माता (कृषि माता) का भी मंदिर था। अब यह शिवतीर्थ गांधीसागर बाँध के जल विस्तार में डूब गया।

यह विस्तृत दशपुर जनपद अंचल एक समय आदिवासी सत्ता क्षेत्र रहा है। इनके

अनेक शिव तीर्थ यहाँ मौजूद है। जहाँ कुछ वर्षों पूर्व तक आदिवासी जनों का अधिकार तथा पूजा प्रबंध था। केदारेश्वर (रामपुरा) सुखानंद (जावद), केतकेश्वर (मनासा) प्रमुख हैं।

पूरा अरावली पठार और दक्षिणी विस्तारित तलहटी में भील सत्ता रही है। भील सत्ता से पूर्व भी और पश्चात् भी यहाँ नाथों का वर्चस्व बना रहा। शंखोद्वार धाम का परिचय देना इसलिए भी अभीष्ट था कि इसका सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व बताया जा सके।

पूर्व काल में शंखोद्धार आँतरी, चचोर, संजीत, देवरान, बरलाई, रामपुरा तथा समूचा अंचल नाथों के प्रभाव में था। नाथों के अतिरिक्त गोस्वामी (गुंसाई) सिद्ध तांत्रिकों का भी वर्चस्व स्थापित रहा । सभी को राज्य से संरक्षण प्राप्त था। जागीरें प्रदान की गई थीं। अनेक नाथों के पास आज भी राज्य द्वारा प्रदत्त जागीरें हैं। इसी प्रकार इन्हें जो गांव दान किए गए थे वहाँ की यजमानी भी इन्हें आज तक प्राप्त है। इनके यजमान इन्हें पर्व–त्योहार पर भोज्य सामग्री और अन्य उपहार भेंट करते हैं। फसलों पर भी इन्हें निर्धारित भाग दान किया जाता है। अन्नपूर्णा माता का प्रसिद्ध मठ देवदान गाँव में स्थित है। इसकी स्थापना नाथों ने की तथा पश्चात् गोस्वामी यहाँ मठाधीश हुए। देवी अहिल्या मठ के लिये जागीर निकाली।

शंखोद्धार में एक नाथ स्थल था– 'अभंगनाथ का डेरा'। अभंगनाथ उसके मुख्य नाथ गुरु थे। उनके पास गांवों में भूमि थी। गाएँ थी। घोड़े थे। कुछ नाथ सेवक शिष्य भी थे। बहुत ठाठ था।

अभंगनाथजी उस समय के प्रसिद्ध तांत्रिक सिद्ध पुरुष थे। लोक कल्याणी दिव्य पुरुष के रूप में उनका पूरे अंचल में सम्मान था। उनके समय में यहाँ चन्द्रावत राजपूतों की सत्ता थी। सन् 1407 ई. में चन्द्रावतों ने माण्डव के सुल्तान के सैन्य सहयोग से आमद के देवा मोरी को परास्त कर यहाँ अपनी सत्ता स्थापित की। आमद पर अधिकार के पश्चात सेवाजी ने रामपुरा के भील राजा रामा भील पर आक्रमण कर ईस्वी 1409 में रामपुरा पर अधिकार कर अपना राज्य विस्तार कर दिया। चन्द्रावतों ने अंचल के नाथों को बहुत सम्मान दिया और जागीरें बांटी।

शंखोद्धार के अभंगनाथ जी प्रतिदिन सवा मन आटे की बाटियाँ बनवाकर प्रसादी करते थे। आधी रात से ही बाटी बनाने का काम प्रारंभ हो जाता था।

नाथजी एक पराणी दिन चढ़ने तक स्नान, ध्यान करते थे। तब तक दाल–बाटी

तैयार हो जाती थी। बाटियाँ खूब बड़ी होती थीं। स्वयं नाथजी प्रसाद बांटते थे। सब लोग अपने बर्तन लेकर आते और प्रसाद लेकर घर लौटते थे। एक बाटी और एक डोंगा दाल। लकड़ी की कड़छी जिसे चाटू कहा जाता था। सबको प्रसाद मिलता था। मध्यान्ह तक प्रसाद बाँटा जाता, फिर डेरे के लोग और व्यवस्था करने वाले सहायक भोजन करते थे। सबके पश्चात् नाथजी भोजन करते थे।

प्रसादी बाँटने से पहले एक बाटी दाल चम्बल माता को, फिर भगवान शिव को, फिर सूरज भगवान को, फिर मछंदरनाथ को, उसके बाद गुरु गोरखनाथ जी को भोग लगाया जाता था। भोग के बाद नौ कन्याएँ जीमती और फिर पाँच बाटी का चूरमा पक्षियों को डाला जाता। यह परम्परा निरंतर चलती रही। प्रसाद कभी कम नहीं पड़ता था। प्रसाद की व्यवस्था डेरे के भण्डार के अलावा आसपास के गृहस्थियों के दान से चलती थी।

डेरे में गायों का दूध खूब होता था। दही बिलोई जाती। घी बनाया जाता। वह घी डेरे में सुरक्षित रहता था। जिस परिवार में प्रसव होता, उस परिवार में एक सेर घी डेरे से पहुँचाया जाता। छाछ के लिए सब लोग बर्तन लेकर आते थे। छाछ बांटी जाती। जब भी कोई किसान गाय या भैंस खरीदकर लाता था। उसे पहले डेरे में लाकर नाथजी से झड़वाता था। दही जमाने के लिए जामण (दही) डेरे से ही ले जाते थे। उसे बरकत माना जाता था।

पशुओं की बीमारी हो या मनुष्यों की नाथजी का डोरा—भभूत ही उपयोगी था। नाथजी तूफान को थाम लेते थे। ओले पड़ने की शंका में सारे ओले वे चम्बल मैया में बरसा देते।

ऐसे थे वे अभंगनाथजी। वे केवल तांत्रिक सिद्ध ही नहीं थे। डेरे में युवकों को शस्त्र प्रशिक्षण भी दिया जाता था। अपनी रक्षा स्वयं करो। यह उनकी शिक्षा थी। वे स्वयं अच्छे योद्धा थे।

सन् 1696 ईस्वी में राव गोपालसिंह के ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह बागी हो गया और मुगल सम्राट औरंगजेब के दरबार में जाकर अपनी गुहार लगाई। इस्लाम स्वीकार करने की शर्त पर औरंगजेब ने उसे सैन्य सहायता देकर रामपुरा भेजा। रतनसिंह ने रामपुरा पर अधिकार कर लिया। गोपालसिंह भागकर शंखोद्धार पहुँचे। रतनसिंह ने अपना नाम इस्लामखान और रामपुरा का नाम इस्लामाबाद रख लिया।

गोपालसिंह को अभंगनाथजी ने अपने डेरे में छुपा दिया। वे कई दिन वहाँ छुपे

रहे। उन्हें मेवाड़ भेजना आवश्यक था। चारों ओर उनकी खोज हो रही थी। किसी भेदिए ने उनका पता रतनसिंह (इस्लामखाँ) को दे दिया। उसने पच्चास सैनिकों की टुकड़ी शंखोद्धार भेजकर डेरे को घेर लिया। अभंगनाथ अपने घोड़े पर सवार होकर डेरे कोट के बाहर आए और सैनिकों को ललकार कर कहा— गोपालसिंह हमारा राजा हैं। वे डेरे की शरण में है। उन्हें ले जाना हो तो पहले हमारा सिर काटो। मेरा सिर सलामत रहते गोपालसिंह भी सलामत हैं। युद्ध हुआ। अकेले अभंगनाथ ने उन सब सैनिकों को हताहत कर दिया और लाशें चम्बल में बहा दीं।

उन्होंने कहा शिष्यों से राव गोपालसिंह यहाँ अब सुरक्षित नहीं है। इन्हें तत्काल यहाँ से लीमड़ी रवाना करना होगा। नाथजी ने राव गोपालसिंह को तत्काल वहाँ से रवाना करवा दिया। दिन होते—होते स्वयं रतनसिंह डेरे पर आ धमका, उसके साथ कुछ सैनिक भी थे। उसने डेरे के बाहर घोड़ा रोक कर ललकार लगाई। नाथजी आप दाता (पिता) को मेरे हवाले कर दो। वर्ना हम डेरे में घुसकर उन्हें बंदी बना लेंगे।

नाथजी बाहर आए और कहा—रतनसिंह हम पहले भी कह चुके हैं। राव गोपालसिंह हमारे डेरे में नहीं हैं। तुम्हारे सैनिकों ने हम पर आक्रमण किया, वे सब मारे गए। उनकी लाशें हमने चम्बल में बह दी हैं। यदि आप भी डेरे में प्रवेश करोगे तो हमसे युद्ध करना होगा। हमें भयभीत मत करो और न ही हमें शस्त्र उठाने के लिए विवश करो। हम सच कह रहे हैं कि राव गोपालसिंह हमारे डेरे में नहीं है। इसके बावजूद भी तुम विधर्मी होकर हमारे डेरे में प्रवेश करने का प्रयास मत करना। वर्ना हमारे शस्त्र आप पर उठ जाने को विवश हो जाएँगे। तुम चाहो तो किसी ब्राह्मण या राजपूत को हमारे डेरे में हेरा (खोज) लेने भेज सकते हो। जहाँ तक तुम्हारी सेना का भय है। यह पूरा अंचल शस्त्र सज्जित है। सब मेरे शिष्य हैं। बगावत झेल नहीं पाओगे। लौट जाने में ही तुम्हारी भलाई है।

रतनसिंह लौट गया। तभी चारणी भवानी (दुधतलाई के चारण पूरणदानसिंह की पुत्री) वह अपनी नारी सेना लेकर आ पहुँची। वह राव रतन की प्रेमिका होकर उनके विधर्मी हो जाने पर बागी हो गई थी। नाथ ने उसे कहा— यहाँ रुको मत भवानी। तुरंत जाओ। राव गोपालसिंह लोमड़ पहुँच गए होंगे। भेदिए उनके पीछे लगे हैं। वहाँ भी पहुँच सकते हैं। उनकी सहायता करो और उन्हें सुरक्षित मेवाड़ पहुँचाओ।

कालान्तर में शंखोद्धार का यह डेरा रतनसिंह के प्रति बागियों (भवानी चारणी) का केन्द्र बना रहा।

नाथों को हम केवल तंत्र विद्या तथा सिद्धियाँ प्राप्त करने वाले नाथों के रूप में ही जानते हैं। उनका यह रूप लोक के लिए भिन्न नहीं रहा। अभंगनाथजी के पश्चात् वह डेरा धीरे–धीरे सिमट गया। जागीरों पर जिन किसानों का अधिकार केवल जोतने भर का था। वह स्थाई हो गया। नाथ वहाँ से पलायन कर गए। उनके परिवार उस अंचल में अभी भी हैं।

गांधीसागर बाँध के जल विस्तार के कारण कई गाँव जलमग्न हो गए। अभंगनाथजी का डेरा भी जलमग्न हो गया। शेष रह गई कथा स्मृतियाँ। लोक में अब भी नाथजी के प्रति आस्था है। वार, त्योहार पर वहाँ के परिवार उन्हें धूप–ध्यान देकर वंदन करते हैं।

ऐसा ही एक आसन है– जावद, जिला नीमच (म.प्र.) 'आसन दरियानाथ'। यह स्थल सुखानंदतीर्थ के निकट है। अठाना से निकट सुखानंद के मध्य है। सुखानंद दर्शन करने वाले तीर्थ यात्री यहाँ भी नाथों की समाधियों को धोक लगाकर जाते हैं। आस्था और विश्वास का यह नाथ स्थल स्वयं में अनेक चमत्कारिक, ऐतिहासिक, संस्कारिक एवं पावन प्रसंगों का जीवित एवं जीवंत स्थल है। यह स्थल नाथ पंथ के लोक स्वीकृति का अद्‌भुत स्वरूप है।

## नाथ पंथ का सिद्ध तीर्थ आसन दरियानाथ

अरावली पठार की तलहटी में स्थित नाथ पंथ का सिद्ध तीर्थ 'आसन दरियानाथ' अठाना से उत्तर में एवं सुखानंद मार्ग पर स्थित अति प्राचीन 'आसन' है। इसके चतुर्दिक प्रकृति की वृक्षावलियों की हरीतिमा और उत्तरी भाग में प्रवाहित सुखानंद झरने से निकलने वाले नाले का कलकल प्रवाह इसे प्राकृतिक सुषमा प्रदान करता है।

मैं आज से लगभग पाँच वर्ष पूर्व इस आसन की कीर्ति सुनकर यहाँ दर्शन करने आया था। तब आसन की खण्डहरनुमा स्थिति देखकर मन में एक जिज्ञासा थी कि कुछ ऐसा करिश्मा हो और यह मठ (आसन) अपने पूर्व वैभव को प्राप्त कर ले। इसके पश्चात् मैं कई बार सुखानंद के दर्शन करने गया। ऐसी स्थिति अनेक बार निर्मित हुई, जब मुझे अठाना और सुखानंद मित्रों –सहयोगियों के साथ जाना पड़ा, फिर भी मैं आसन तक नहीं गया। मेरे भीतर एक संकल्प तैनात था। जब तक आसन में जीर्णोद्धार का काम शुरु नहीं होता। मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। मैंने अपने मित्रों से स्पष्ट कहा कि जब तक माता हिंगलाज जो आसन की अधिष्ठात्री शक्ति है तथा स्वयं महाराज दरियानाथजी मुझे आश्वस्त नहीं कर देते, तब तक मैं आसन पर नहीं जाऊँगा। यहाँ का जीर्णोद्धार होना

चाहिए। मालवा मेवाड़ सीमा पर स्थित यह नाथ पंथ का सिद्ध तीर्थ पुनःजागृत होना चाहिए।

भानपुरा के अवान्तर शंकराचार्य मठ का जीर्णोद्धार शंकराचार्य दिव्यानंदजी महाराज ने जिस प्रकार करवाया है, और उसे दिव्यता प्रदान की है, वैसी दिव्यता मैं आसन की देखना चाहता था। समय तो चलायमान है। चलता रहा। इसी बीच ख्यात और विकसित आदिवासी संस्कृति को छविमान करते 'जनजातीय संग्रहालय' के सक्रिय संयोजक श्री अशोक मिश्र जो चौमासा के संपादक भी हैं। उन्होंने लगभग एक वर्ष पहले मुझे एक दायित्व दिया था। 'नाथ पंथ की लोक स्वीकृति' मैं तो अपनी किशोर वय से नाथों के सम्पर्क में बना रहा। उनके लोक कल्याणी और अकल्याणी दोनों स्वरूप मैंने जाने और देखे हैं। विषय मेरे मन का था। तत्काल हाँ कर दी। बाद में कुछ काम अन्य विषयों के आते रहे। विषय मेरी डायरी में बना रहा। अप्रैल 2015 में मिश्रजी ने फिर याद दिलाया। तब सब काम छोड़कर मैंने इस विषय पर काम करना शुरू किया।

नाथ पंथ के चतुर्दिक धामों पर प्रकाश डालते हुए भी मैंने आसन पर जाने का मन नहीं बनाया। 30 अप्रैल 2015 की रात को प्रभात होते लगभग चार बजे स्वप्न हुआ मानों किसी मंदिर के समक्ष एक दिव्य पुरुष लम्बी श्वेत जटा कंधों पर तथा श्वेत दाढ़ी हृदयस्थल से भी नीचे नाभि का स्पर्श करती हुई। मनमोहक मुस्कान। आँखों में स्नेहिल दुलार का भाव। बाएँ हाथ में रुद्राक्ष माला। दायाँ हाथ वरद मुद्रा में। कंठ में रुद्राक्ष माला, भाल पर रक्त तिलक। समक्ष जागृत धूनी। मुझे मंगल भभूत देने का प्रयास करते मानों मुझे अपने निकट बुला रहे हों।

मैं अठाना पहुँचा और वहाँ से आसन पहुँचा। महाराज दिख गए। मैंने जोर कर घोष किया 'आदेश!' नाथ लालनाथजी ने उसी जोश के साथ प्रतिउत्तर दिया– 'आदेश आद पुरुषों का' मिलन हुआ। लालनाथजी ने बहुत आत्मीयता से स्वागत करते हुए कहा– मैंने तीन–चार दिनों से आपको फोन करने का प्रयास किया, लग ही नहीं रहा था।

आप आ गए। बहुत अच्छा किया। मैंने निर्णय किया है कि आसन का जीर्णोद्धार करुँगा। इसीलिए सब तोड़ फोड़ हो रही है। इंजीनियर से नक्शा बनवाया है। जितना भी धन लगेगा लगाऊँगा, लेकिन आसन का रूप जैसा आपने चाहा था, वैसा बल्कि और भी अधिक अच्छा करुँगा।

उन्होंने घुमा–घुमाकर सारी योजना समझाई। यहाँ गौशाला बनेगी। यहाँ गौओं

के लिए चारा भरा जायेगा। नाले के पास वृक्षावली की ठंडी छाया में गायें विश्राम करेंगी। यहाँ पानी पिएँगी, नाले को गहरा करवाकर पक्का घाट बनवाऊँगा। पानी का कुंड बनेगा। बारहमास पानी भरा रहेगा। चलते–चलते हम समाधियों तक जा पहुँचे। नाले की तरफ पश्चिम दिशा वाली भव्य समाधि सिद्धनाथ दरियानाथ जी की है। फिर बुद्धनाथजी एवं आखिर में चम्पा घोड़ी की।

दरियानाथजी मेवाड़ से यहाँ आए थे। यहाँ कोई बस्ती नहीं थी। दरियानाथजी के गुरु चतरानाथजी थे। उनके नाम पर यहाँ उन्होंने नौ झोपड़े बनाए और उसका नाम चतरा धाम रखा। फिर वहाँ और भी कुछ लोगों को बसाया। चतराधाम धीरे–धीरे चकती धाम हो गया। कालान्तर में केवल चकती ही कहलाने लगा। दरियानाथजी मेवाड़ महाराणा के आराध्य गुरु थे। महाराणा के शस्त्रागार की पूजा महाराणा सांगा बल्कि उनसे भी पूर्व बप्पारावल के समय से नाथ सिद्ध ही करते चले आ रहे हैं। बाद में महाराणा हमीरसिंह ने अपने नाथ गुरु महाराज दरियानाथजी से बहुत आग्रह किया कि वे मेवाड़ में जहाँ चाहें अपना आसन कायम कर लें। जितनी जमीन चाहिए घेर लें, उन्हें उसका पट्टा ताम्रपत्र भेंट कर दिया जाएगा। नाथजी ने कहा कि मुझे यही भूमि चाहिए। तब महाराणा हमीर ने सं. वि. सं. 1331 में यह चक्ती की भूमि 224 रुपये नगदी में खरीदकर नाथजी दरियानाथजी महाराज की दानपत्र (ताम्रपत्र) लिखवाकर भेंट की। वर्तमान में आसन के पास लगभग 250 बीघा जमीन है। कुछ जमीन अवैध रूप से कुछ रसूकदार लोगों ने जबरन कब्जे कर रखी है। जिसका केस चला रखा है।

वर्तमान गाद्दीधारी, लालनाथ जी बहुत पराक्रमी और दबंग नाथ हैं। आसन के इस अवसान काल में ऐसे ही दबंगनाथ की यहाँ आवश्यकता थी। इनसे पहले यहाँ की गादी पर सुन्दरनाथजी बिराजते थे। वर्तमान गादीधारी लालनाथजी 21 वें नाथ हैं। ये यहाँ सपरिवार रहते हैं। गादी पर बैठने से पहले इनका विवाह व परिवार अस्तित्व में आ चुका था। गोरखपुर केन्द्र जो भारत में नाथ पंथ का प्रमुख केन्द्र है, वहाँ के गादीधारी प्रमुख महाराज अवैधनाथजी ने इन्हें सपरिवार आसन की गादी पर बैठने की अनुमति व स्वीकृति प्रदान की थी। वर्तमान महाराज आदित्यनाथजी भी इस आसन की व्यवस्था से संतुष्ट हैं।

लालनाथजी को गादी पर बैठाने का निर्णय उनके गुरु महाराज सुन्दरनाथजी का था। जिसमें ठा. केसरसिंहजी चुण्डावत, श्री मदनलालजी दुबे जैसे कई व्यक्तियों ने भी सहयोग किया। उनका मानना था कि इस मठ की बिगड़ी व्यवस्था को लालनाथ ही ठीक कर सकते हैं। वर्नां आसन की जमीनों पर रसूखदारी लोग कब्जे कर लेंगे और

धीरे–धीरे आसन खण्डहर बनकर रह जाएगा। लालनाथजी उनके विश्वास पर खरे भी उतरे।

यह आसन स्वयं में स्वतंत्र राजस्व घोषित है तथा राजस्व में चकती का भी उल्लेख है। आसन दरियानाथ राजस्व में दर्ज है। यह सिद्ध स्थल दरियानाथजी व बुद्धनाथजी के कारण ख्यात रहा है। दरियानाथजी चम्पा घोड़ी पर बैठकर जब मेवाड़ जाते थे। तब कहते हैं घोड़ी ढाई कदम में मेवाड़ पहुँचती थी। एक कदम में चकती की सीमा दूसरे कदम में मेवाड़ में प्रवेश व आधे कदम में मेवाड़ के अस्तबल में पहुँचती थी। यह लीला सिद्ध गुरु महाराज दरियानाथजी की थी। घोड़ी युद्ध विद्या में भी प्रवीण थी।

रामपुरा के चन्द्रावतों का संबंध आसन दरियानाथ से बराबर बना रहा। एक राज्यच्युत राजपुरुष ने कुछ समय आसन दरियानाथ के निकट वन में डेरा डाला था। एक दिन में वर्तमान मोटा मगरा के नीचे तलाई के पास बड़ की लकड़ियाँ काटने गए। वहीं पर दरियानाथजी समाधिस्थ थे। उनकी माधि टूट गई। पहले तो वे क्रोधित हुए फिर शरणागतों को देखकर शांत हो बोले कि– 'अरे! गीले बड़ को मत काटो।' राजा ने कहा– महाराज हम तो सूखा भाग काट रहे हैं। महाराज बोले– वह भाग भी अभी सूखा नहीं है। वैशाख में हरा हो जाएगा। चन्द्रावत बोले– महाराज बिल्कुल सूखा है। तब महाराज ने बड़ पर अपनी कृपा दृष्टि डाली। बड़ पूरा का पूरा हरा कच्च हो गया। लहलहा उठा। राजा ने क्षमा माँग ली और लौट गए।

महाराज दरियानाथ ने कहा– यहाँ के सभी पेड़ मेरी रक्षा में है। इन्हें कोई नहीं काट सकता। नीचे गिरी लकड़ियाँ बीन लो। कभी भी वृक्ष मत काटना।

महाराज के इस आदेश के पश्चात् जंगल सुरक्षित हो गया। वहाँ के पशु भी सुरक्षित हो गए। लोगों ने महाराज के इस आदेश का पालन अत्यंत आस्था और विश्वास के साथ किया। सभी नाथ वृक्ष–वन रक्षक हुए हैं।

उन्हीं दिनों उस राज्यच्युत राजपुरुष व मुसलमानों में युद्ध हो गया। चन्द्रावतों के मुकाम पर अचानक हमला हुआ। नाथ दरियानाथजी ने तत्काल अपने शिष्य बुद्धनाथजी को आदेश दिया कि चन्द्रावत हमारे शरणागत हैं। उनकी रक्षा करो। बुद्धनाथजी चम्पा घोड़ी पर सवार होकर युद्ध में जा डटे। उन्होंने मुगलों की फौज को बुरी तरह पराजित कर दिया, किन्तु उस युद्ध में बुद्धनाथ जी भी वीरगति को प्राप्त हो गए। वे बिना सिर के आसन पर आ पहुँचे। उनका सिर युद्ध स्थल पर गिर गया था। दरियनाथजी ने वर्तमान मेंडकी (मुंडी) गाँव से उनका सिर अपने योगबल से मंगवाया

और जहाँ जीवागढ़ हैं, वहाँ अपने शिष्य बुद्धनाथजी को फिर से जीवित किया। फिर उसी घोड़ी पर बैठा कर उन्हें दुबारा आसन रवाना किया। दरियानाथजी योगबल से वहाँ आए थे और योगबल से वापिस आसन गादी पर जा बिराजे।

महाराज दरियानाथजी ने अपने लिए समाधि खुदवाई। बुद्धनाथजी ने कहा– महाराज पहले समाधि मैं लूँगा। मेरा समय तो युद्ध में वीरगति प्राप्त होते ही पूर्ण हो गया था। मेरा यह जीवन तो आप की योगशक्ति की लीला है। मुझे भैरवनाथ और हिंगलाज के दर्शन करवा दीजिए। यह मेरी अंतिम इच्छा है। तब महाराज ने माता हिंगलाज का आव्हान किया। माता ने बुद्धनाथ जी को साक्षात् दर्शन दिए। फिर बनारस के भैरव का आव्हान किया। भैरव ने दर्शन दिए। जब दोनों वापिस जाने लगे, तब दरियानाथजी ने कहा– आप अपना स्वरूप शक्ति यहाँ स्थापित कर जाओ। तब उन्होंने तथास्तु कहा। वर्तमान हिंगलाज माता का मंदिर आसन की अधिष्ठात्री माता हिंगलाज का वही शक्तिस्वरूप है। इसी प्रकार भैरव का जो स्थल है, वह भी बनारस के भैरव का स्वरूप है। ये दोनों यहाँ के शक्ति स्वरूप हैं। इनकी आराधना करने वाला अपनी मनोकामना प्राप्त करता है और आपदाओं से मुक्त हो जाता है।

वर्तमान लालनाथजी को मैंने परामर्श दिया था कि वे हिंगलाज माता की आराधना करें। तबसे वे माता हिंगलाज की आराधना में लगे हैं। शारदीय नवरात्रि में यहाँ तंत्र साधना का हवन होता है। जलवा होता हैं। इसे जमला भी कहते हैं।

भजन नाथों के लिए बहुत महत्त्व की साधना है। विशेषकर 'जलवा' जो मुख्य रूप से पूर्वजों के प्रशंसा गीत होते हैं तथा रातीजगा के रूप में गाए जाते हैं। उनका बड़ा महत्त्व है।

जब समाधि का समय आया, तब बुद्धनाथ समाधि लेने के लिए तत्पर हुए। तभी चम्पा ने कहा– पहले समाधि मैं लूँगी। मेरा अवतारकाल पूरा हो गया। तब दरियानाथ जी ने पहले उसे समाधि दिलवाई, फिर बुद्धनाथजी ने समाधि ली और बाद में स्वयं दरियानाथजी ने समाधि ली।

पहली समाधि पूर्व में चम्पा घोड़ी की है। दूसरी मध्य वाली समाधि बुद्धनाथजी की तथा तीसरी समाधि महाराज दरियानाथजी की है। तीनों समाधियों पर बाद में गादीधारी प्रकाशनाथजी ने महाराणा संग्रामसिंहजी के समय उनके वित्तीय सहयोग से पक्की छत्रियाँ बनवाईं। ये समाधियाँ आज भी अपनी यश पताका फहरा रही हैं और लोक में आस्था का केन्द्र हैं। दरियानाथजी की समाधि में शिवलिंग स्थापित है। यहाँ बैठकर

की जाने वाली आराधना अवश्य सिद्ध हो जाती है। वर्तमान में लालनाथजी इन समाधियों के सामने सभा स्थल बनवाने जा रहे हैं। नाले को गहरा करके वहाँ पक्काघाट बनाकर तथा आसपास सुन्दर वृक्षावली लगाकर सुन्दर बनाने की योजना बना चुके हैं। निर्माण कार्य शुरु हो चुका है।

महाराज दरियानाथजी की समाधि में कबूतरों का एक जोड़ा सदा बना रहता है। इससे अधिक कबूतर कभी नहीं हुए। लोक धारणा है कि ये महाराज बुद्धनाथ और चम्पा के रूप हैं, जो सदा अपने गुरु की शरण में बने रहते हैं।

इस वनप्रान्त में अन्य वृक्षों के अतिरिक्त विशेष रूप से रायणा (खिरनी) फल के वृक्ष, सीताफल के वृक्ष एवं गुलतुर्रा के पौधे पाए जाते हैं। आसन दरियानाथ की सीमा में बाहर ये वृक्ष नहीं हैं। निकट लगे हुए सुखानंद वन परिसर में भी नहीं है। यही वृक्ष चित्तौड़गढ़ और रामपुरा गढ़ (कोट में भी पाए जाते हैं) यही तीनों भूमि स्थलों की समानता है। इसी कारण दरियानाथजी ने इस भूमि को चाहा था। खिरनी रामजी को पसंद थी, सीताफल सीता जी को व गुलतुर्रा (ताज पुष्प ) रक्तफूल से लक्ष्मणजी आराधना कर सूर्य की पूजा करते थे। आसन दरियानाथजी की प्रतिष्ठा बनारस में तथा गोरखपुर में भी बराबर बनी हुई है। लालनाथजी ने बताया– गोरखपुर के लादूवास में आसन दरियानाथ के गादीधारी का आसन बराबरी में लगता है।

लालनाथजी ने यह भी बताया कि मेरठ में कुछ मुसलमान समाज के लोग भी गोरखनाथ को मानते हैं। उन्हें खप्पर आसन दरियानाथ की सहमति से दिया गया था। उनका खप्पर चेन वाला (जंजीर वाला) होता है तथा वे काले कपड़े पहनते हैं। हिन्दू नाथों का खप्पर बिना जंजीर का होता है। वे भगवा (गेरुआ) भेष धारण करते हैं। कान दोनों फुड़वाते हैं। मुसलमान नाथ स्वयं को पीर कहते हैं।

अघोर पंथ नाथों का ही शिव पंथ है। अघोर अर्थात् शिव। अघोरी तांत्रिक होते हैं। तंत्र विद्या में वे सिद्ध होते हैं। अघोर पंथ की मुख्य गादी बनारस में है। अनेक विसंगतियों के बावजूद भी अघोर पंथ के प्रति लोक आस्था बनी हुई है।

जहाँ बुद्धनाथजी ने मुगलों से युद्ध किया था, वह स्थान आसन से पश्चिम में था। वहाँ जो मुगल शहीद हुए थे, उन्हें वहीं दफनाया गया था। वह कब्रगाह आसन से पश्चिम में नाले के पार लगभग 200 फीट दूरी पर स्थित है। वहाँ एक फकीर रहने लगे थे। वे यहीं नाले के पाल पर रहते थे। उन्हें पाल वाले बाबा कहते थे। उनकी दरगाह भी कब्रस्तान में बनी है।

कब्रस्तान की उपस्थिति उस युद्ध की प्रमाणिकता सिद्ध करती है। सिद्धनाथ में शरणागत की रक्षा के लिए अपने प्राण तक निछावर करने की तत्परता का शंखोद्धार जैसा यह उदाहरण नाथों को लोक आस्था का केन्द्र बनाती है। ये नाथ केवल सिद्धियाँ ही प्राप्त करने में नहीं लगे रहते थे, बल्कि लोक कल्याण में भी सदा तत्पर रहते थे। प्रत्येक पंथ सम्प्रदाय में कुछ विकृतियाँ समय के कारण आ सकती हैं, किन्तु उसकी अच्छाइयाँ भी ध्यान में रहना चाहिए। लोक में चर्चित एक गोरख सब्दी ख्यात है–

*एक पाप को राक्षसों, सौ पुण्य खा जाय।*
*गोरख एकल पापड़ो, पूरी नाव डुबाए।।*

एक पाप सौ पुण्यों को खा जाता है। पाप तो राक्षस है। जिस प्रकार एक पापी पूरी नाव डुबा देता है। ऐसा ही नाथ पंथ के साथ भी हुआ। तांत्रिक सिद्धों ने अपनी विकृत साधनाओं के कारण एवं उनका दुरुपयोग करने के कारण नाथ पंथ के प्रति लोक आस्था को खंडित किया, किन्तु आज भी इसके बावजूद लोक स्वीकृति का भाव नाथ पंथ के प्रति कायम है।

आसन दरियानाथ के दक्षिण की तरफ तथा जावद से उत्तर दिशा में पाँच किलोमीटर दूरी पर अठाना का महल स्थित है। यह महल इस अंचल में सबसे सुन्दर महल माना जाता है। इसका वर्णन पृथक से किया जा रहा है। इस महल के निर्माण का संबंध आसन दरियानाथ से भी आता है।

मुगल सम्राट जहाँगीर ने मेघसिंह (कालीमेघ) के ज्येष्ठ पुत्र नरसिंहदास को ससम्मान अपना सेनापति नियुक्त किया और उसे मालपुर और डिग्गी की जागीर परगने भी वापिस दिए। ये परगने पहले मेघसिंह को दिए गए थे। जब यह घटना मेवाड़ महाराणा जगतसिंह को पता चली, तब उन्होंने नरसिंहदास को सं. 1628 वि. में गुँठलाई की जागीर देते हुए उन्हें सम्मान सहित अपने मेवाड़ में रहने का आग्रह किया। इसी वर्ष नरसिंहदास ने गुंठलाई में अपना महल बनाने की योजना बनाई। आसन दरियानाथ के तत्कालीन गादीधारी ने उन्हें राय दी कि गुंठलाई की भूमि आपको शुभ नहीं है। आप यहाँ से तीन मील दूरी पर तलहटी में महल बनवाओ। वहाँ सब शुभ होगा। आपका महल बनकर पूरा होगा, तब तक आप शिविर लगाकर आसन के निकट निवास करो, आपके परिवार की रक्षा सुरक्षा और सारी सुविधा आसन करेगा। नाथजी ने गम्भीरी की दिशा बदलकर महल के नक्शे में ईशानकोण की ओर से बहाव करवा दिया। ईशान कोण जल कोण है, नदी का बहाव उधर से शुभ होगा।

विक्रम संवत् 1828 में नरसिंहदास ने आसन के नाथ जी से भूमि पूजन करवाया। 1834 वि. में महल तैयार हुआ। इसमें 1848 तक इसके गुम्बद और शीश महल में कुछ परिवर्तन होता रहा। 1848 वि. सं. तक भी इस महल में बहुत से परिवर्तन–परिवर्द्धन होते रहे। बादल महल का निर्माण 1898 वि. में विजयसिंह जी के काल में हुआ। नरसिंहदास ने आसन पर सदा श्रद्धा बनाए रखी और वहाँ एक कुण्ड बनवाया तथा आसन पर चढ़ावा भी दिया।

अठाना के चुण्डावत रावतों ने सदा आसन दरियानाथ पर अपनी आस्था बनाकर रखी। हिंगलाजमाता की सदैव पूजा की व दोनों नवरात्रियों पर वहाँ हवन–पूजा निरन्तर रखी। स्वयं रावतजी पाँव पैदल हिंगलाजमाता के दर्शन कर नवरात्रि हवन में उपस्थित होते थे। बाद की पीढ़ियों ने इसकी उपेक्षा की, फलस्वरूप महल का अवसान प्रारम्भ हो गया। आज यह महल बंद पड़ा है और लोक में चर्चा है कि यह बिकने को तैयार खड़ा किसी अच्छे कद्रदान की प्रतीक्षा कर रहा है। यह इस अंचल का सबसे सुन्दर महल है।

पिछले पृष्ठों में मनासा जोगण्या टेकरी पर बिराजे सिद्धनाथजी महाराज की पोथियों में से प्राप्त जिस गाथा का उल्लेख मैंने किया है। वस्तुतः वह गाथा नाथ पंथ की दशा और दिशा दोनों का सटीक चित्रण प्रस्तुत करती हुई अन्त में कह जाती है–

*नाथाँ में तो नाथ आछा मोकरा जी कोई,*
*लाखाँ में तो दीखे, छुटपुट नाथ।*
*लोग तो पूजे पूरा मान ती जी नाथाँ,*
*नाम तो धरावे गोरखनाथ।*

भले लाखों में छुटपुट ही निरमल चरित्र वाले नाथ हों, किन्तु पूत–सपूत यदि एक भी शेष बचा रह जाए तो वह कुल–वंश का उद्धार अवश्य कर देता है। हजारों (साठ हजार) पुत्रों की अवगति को एक सपूत भागीरथ ने सद्गति प्रदान कर दी थी। वस्तुतः अपयश की कड़वी बेल शीघ्र फैल जाती है और यश की बेल बहुत धीरे–धीरे फैलती है।

नाथ पंथ के साथ भी यही हुआ। जो सच्चे और संयम–नियमधारी नाथ थे, वे तो समाज में तब भी सम्मान पाते रहे, किन्तु जो असंयमी थी, वे स्वयं भी अपयश के भागी बने और नाथ पंथ का भी उन्होंने अपयश दिलवाया।

उपरोक्त गाथा की ही भाँति उन्हीं नाथजी महाराज की पोथी में कुछ पद और भी

थे, जिन्हें गोरखवाणी कहा गया है। यह निश्चित करना कठिन है कि वे पद गोरखोवाच हैं अथवा किसी अन्य नाथ कवि द्वारा रचित। हो सकता है– कहत कबीर की भाँति ये पद भी किसी नाथजी ने संभव है। जोगणियाँ रुण्डी वाले नाथजी ने ही रचे हों। जो भी हो पद हैं बहुत ही महत्त्वपूर्ण। गाथा कहती हैं–

*जो भटक्या सो अटकया, जो अटकया सो गर्थ।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, सिद्धा सदै समर्थ।।1।।*
*जो समर्थ सो नाथ हे, ढोंगी कहूँ अनाथ।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, गोरख सिद्धाँ साथ।।2।।*
*पंच मकारी जो करें, तिन को कहूँ मकार।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, जासी नरकाँ द्वार।।3।।*
*दारु पी अवघट करे, करे देह को भोग।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, लग्यो भोग को रोग।।4।।*
*श्वान भंडूरा ज्युँ फिरे, गूखण्डी पे जाय।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, मानव जनम गँवाय।।5।।*
*सुगरा ने तो सरग हे, नुगरा नरक सिधाय।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, अंतकाल पछताय।।।6।।*
*रोगी तो रोगी रहे, कूण करे उपचार।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, सतगुरु की दरकार।।7।।*
*चेला–चेली मूंडताँ, हिरदै तेज कटार।*
*गोरखवाणी यूं कहे, पड़सी जम की भार।।8।।*
*सिद्धाँ ने माथो नमूँ, सिद्धाँ जोडूँ हाथ।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, साँची संगत साथ।।9।।*
*अलक लखे सो सिद्ध हे, भोग भखे सो गिद्ध।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, दोई जग परसिद्ध।।10।।*
*जात–पाँत मति जाणजो, सबै अलख का पूत।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, एक पाँत एक सूत।।11।।*
*गोरख–गोरख सब कहें, नहिं गोरख को ज्ञान।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, सत को राखो भान।।12।।*
*दारु को मदको चढ़े, परभाताँ ढल जाय।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, मद उतरयाँ पछताय।।13।।*
*परम ब्रह्म तो एक हे, कतराइ राखो नाम।*

*गोरखवाणी यूँ कहे, सब को एक मुकाम।।14।।*
*जठे–जठे मठ थापिया, नाथाँ कर्या मुकाम।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, हगराई तीरथ धाम।।15।।*
*अलख लखे सोई नाथ हे, सो ई सिद्ध सुजान।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, हिरदै उगयो भान।।16।।*
*जो बाहर सोइ भीतराँ, रचया लीला धाम।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, सुरताँ करो मुकाम।।17।।*
*नाद बजे घट भीतराँ, बरसे अमरत धार।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, भीतर जायाँ सार।।18।।*
*रस को लोभी मधुकरो, पुहुप–पुहुप रस पीय।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, क्युँ भटकावे जीव।।19।।*
*अलख–अलख की हाँककर, दर–दर मांगे भीख।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, गोरख कद दी सीख।।20।।*
*दया धरम हिरदै नहीं, लग्यो भोग को रोग।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, कसतर सधसी जोग।।21।।*
*आज्ञा आदिनाथ की, सतगुरु को आदेश।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, गोरख धरयो भेस।।22।।*
*मान राख ले भैरव को, सोइ सिद्ध नाथ।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, बाकी सबै अनाथ।।23।।*
*गोरख–गोरख नाम धर, करता फिरे प्रलाप।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, वण का माई न बाप।।24।।*
*मंद पीवे अभखो भखे, करे नाक को भोग।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, क्यों धार्यो रे जोग।।25।।*
*नाथ कहूँ स्वामी कहूँ, कहूँ पंथ परधान।*
*गोरखवाणी यूँ कहे, राखे अरथ रो मान।।26।।*

यह गाथा जोगणियाँ माता के नाथ महाराज की आस्था से जुड़ी थी। जितनी यहाँ लिखी है गाथा इससे बहुत बड़ी थी। मेरे पास केवल इतना ही अंश संग्रहीत है। यदि और है, भी तो वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः काल–कवलिता हो गई है। नाथजी इसका नियमित वाचन करते थे। यदि इस गाथा का आशय समझने का प्रयत्न करें, तब लगता है यह गाथा नाथ पंथियों के लिए आचार संहिता की भाँति महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। नाथों के वर्तमान और अतीत को स्पष्ट करती यह गाथा नाथ पंथ के

अनुयाइयों के लिए दिशा–निर्देश का काम भी करती है। मैं यह नहीं जानता यह कहीं छपी भी है या फिर उन नाथ जी के बस्ते में आवेष्ठित नष्टप्राय हो गई है। ऐसा ही बहुत सारा साहित्य नष्ट हुआ है। आसन दरियानाथ (जावद–अठाना) का बहुत सारा साहित्य एक अग्निकांड में नष्ट हो गया। हजारों पाँडुलिपियाँ और प्रकाशित साहित्य अभी भी नाथों के मठों, आसनों और डेरों पर समय की धूल–धूप और उपेक्षा का शिकार हो रहा है। ऊदी उन्हें खा रही है। ऊदी का भोजन बनता वह साहित्य यदि अभी शोधार्थियों के शोध का विषय बन सके, तब हम अपनी बहुत बड़ी पारम्परिक अमानत की सुरक्षा कर सकेंगे और ज्ञान के अनेक मानक हमें मिल सकेंगे। नाथपंथ के उत्थान और पतन पर व्यर्थ की चर्चाओं से निजात मिल सकेगी। यह पंथ आज भी जीवित व जीवंत हैं तथा भारतीय लोक संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग हैं।

केवल कुछ प्रसंगों या कारणों को आधार बनाकर हम इस महत्त्वपूर्ण एवं गौरवशाली पंथ को नकार नहीं सकते। उत्थान–पतन प्रत्येक पंथ–सम्प्रदाय में हुए हैं। उन्हें समय रहते फिर से सहेजा सम्हाला गया है। मैं जिस अंचल में बैठकर यह लेखन कर रहा हूँ, इसे दशपुर जनपद कहते हैं। यह जनपद नाथ पंथ का प्रभावी क्षेत्र रहा है। यहाँ जितने भी शिवधाम हैं। उनकी स्थापना किसी ने भी की हो, यह शोध का विषय हो सकता है किन्तु यह सत्य है कि इन शिवधामों पर नाथ जोगियों का वर्चस्व सदैव बना रहा है। आज भी बना हुआ है।

इस अंचल में आज भी नाथ परिवारों की संख्या पर्याप्त है। कुछ गाँवों में तो नाथ सिद्धों का वर्चस्व आज भी लोक मानस पर अंकित है। यहाँ नाथों के कई छोटे–बड़े स्थल रहे हैं। वे आज उस रूप में दिखाई नहीं देते। अठाना–सुखानंद मार्ग पर आसन दरियानाथ का स्थल तो आज भी पूरे वर्चस्व के साथ कायम है।

उपरोक्त लिखित गद्यांश को जब हम पढ़ते है, तब हम पूरे विश्वास से कह सकते हैं कि यह गाथा अत्यंत अनुशासित तेवरों के साथ रची गई। इसे गोरख रचित कहना उचित नहीं लगता, किन्तु गोरख पंथ के किसी विद्वान नाथ द्वारा इसकी रचना पंथ के अनुयाइयों और सिद्धों को दिशा और दशा का आभास दिलाने के लिए की गई है। इसमें रचियता की चिंता स्पष्ट है।

**भावार्थ**

जो अटक गया मानो वह भटक गया। और जो संसार की माया में फँस गया। मोह के बंधन में बंध गया। जिसने पंथ की राह छोड़कर असंयम और अनाचार की पगडंडी पकड़ ली, उसका नाश होना निश्चित है।

जो समर्थ है। पंथ के आदर्शों का पालन कर रहा है, वही सच्चा नाथ कहला सकता है। शेष सभी ढोंगी हैं। गोरखनाथजी उन्हीं समर्थ सिद्धों के साथ सदा बने रहते हैं।

जो लोग पंचमकारी जैसा भ्रष्टाचरण करते हैं। मैं उन्हें पंथ भ्रष्ट एवं मकार मानता हूँ। ऐसे लोग निश्चित रूप से नर्क के द्वार पर जाएँगे। जो लोग नाथ होते हुए मदिरापान करते हैं और अनाचार में लिप्त हो जाते हैं। भ्रष्टाचरण करते रहते हैं। वे भोग नामक महारोग के रोगी है। वैसे लोग श्वान और ग्राम शूकर की भाँति मल के ढेर पर जाकर अखाद्य का उपयोग करते हैं तथा इन्हीं निकृष्ट जीवों की भाँति आचरण करते हैं। वे मनुष्य जन्म नष्ट कर रहे हैं। मानव जन्म पूर्व जन्मों के पुण्य का उपहार हैं। वे इसे नष्ट करके अगला जन्म भी भ्रष्ट कर रहे हैं।

जो सुगरें हैं। गुरु के बताए मार्ग पर चलते हुए गुरु के प्रति आस्थावान हैं, वे तो स्वर्ग में जाएंगे और जो नुगरे हैं। गुरु के प्रति अविश्वासी हैं। गुरु के उपकार और अस्तित्व को नकारते हैं। वे तो नर्क में ही जाएँगे। अन्त में उन्हें पछताना पड़ता है।

जो भोग का रोगी है। वह तो सदा रोगी ही रहेगा। भोग, भोगने से अतृप्ति आती है। यह अतृप्ति रोग है। इसका उपचार कोई नहीं कर सकता। सद्‌गुरु ही ऐसे असाध्य रोग का उपचार कर सकते हैं। उन्हीं की शरण में जाना होगा।

जो भ्रष्ट और मकार, छली–कपटी तथा स्वार्थी लोग भेष धारण कर चेले और चेलियाँ बनाकर उन्हें उपकृत करने का छल करते हैं। उनके भीतर स्वार्थ की कटार होती है। ऐसे कपटी गुरु कहे जाने वाले ढोंगियों को अवश्य यम की प्रताणना भोगना पड़ेगी।

सिद्धजनों को शीश नमाता हूँ। उनके सामने करबद्ध प्रणाम करता हूँ। ऐसे सिद्धों की संगत करना सौभाग्य है।

जो अलख, अगोचर को देखने, उनके दर्शन करने में निरंतर साधनारत हैं, मैं उन्हें वंदन करता हूँ। वही सच्चे सिद्ध हैं। शेष जो भोगों में लिप्त हैं, वे तो नाथ वेश में गिद्ध के समान हैं। इन दोनों प्रकार के नाथों–सिद्धों को लोक अच्छी तरह पहचान लेता है। दोनों लोक प्रसिद्ध हो जाते हैं। एक अच्छे कामों के लिए दूसरा बुरे कामों के लिए।

गाथा कहती हैं– जाति–पाँति का विचार व्यर्थ है। न कोई उच्च है और न कोई नीच। सभी उस अलख परम पिता परमेश्वर की संतानें हैं। सभी एक समान है। कोई छोटा–बड़ा नहीं है। एक स्तर और एक ही श्रेणी के हैं।

सब स्वयं को गोरख को अपना आराध्य मानते हैं। स्वयं को उनका अनुयायी भी मानते हैं। किन्तु गोरख के निर्देशों और आदेशों का ज्ञान उन्हें नहीं है। वे यदि सत्यमार्ग पर चलें, पंथ के सुमार्ग का अनुसरण करें, तभी वे गोरख के अनुयायी माने जा सकते हैं।

मदिरापान कर मदमस्त हो जाते हैं। रात भर मदिरा के मद में अनाचारों में लिप्त हो जाते हैं। प्रातः जब मद उतर जाता है, तब पछताते हैं। ऐसा पछताना व्यर्थ है। पश्चाताप तब सफल और उचित होता है, जब प्रायश्चित में बदल जाए।

गाथा कहती है– परमब्रह्म तो एक ही। उसे किसी भी नाम से पुकारो। कितने ही नाम रख दो। नाम चाहे अनेक हों, किन्तु आस्थाओं का मुकाम केन्द्र एक ही परम ब्रह्म है। जहाँ–जहाँ भी नाथों ने मुकाम बनाए हैं। वे सब तीर्थ धाम ही माने जाने चाहिए।

जो अलख को पहचानता है। जिसने अलख के दर्शन कर लिए हैं। वही सच्चा सिद्ध है। वह सुजान और ज्ञानी है। ऐसे सिद्ध सुजान के हृदय में सूर्य का प्रकाश फैलता है। ज्ञान का सूर्य उदित हो जाता है।

जो बाहर है वही भीतर भी है। जो ब्रह्माण्डे सोई पिंडे। जो ब्रह्माण्ड में है वही पिंड में भी है। ऐसी रचना उस लीलाधारी ने की है। वह बाहर–भीतर दोनों धामों में स्थित है। इसलिए सुरति के ज्ञान से जहाँ उचित लगे, वहाँ अपना ध्यान लगाओ। वह ब्रह्म वह अलख–अगोचर भले ही अगम है, किन्तु उसे ढूँढना तो असम्भव नहीं है।

घट के भीतर नाद बज रहा है। वही अमृत की धारा भी प्रवाहित हो रही है। इसलिए भीतर जाने में ही सार है। बाहर भटकने से भीतर स्थिरता में ठहराव उचित है। यहीं उस अलख निरंजन के दर्शन भी होंगे।

जिस प्रकार रस का लोभी भँवरा पुष्प–पुष्प पर जाकर रसपान करता फिरता है। फिर भी उसे तृप्ति नहीं मिलती। उसी प्रकार भोगी व्यक्ति भी भोगों को भोगने में भटकता हुआ सदा अतृप्त बना रहता है। गोरखवाणी कहती है– अरे जीव! तू क्यों भटक रहा है?

जोगी लोग अलख–अलख की आवाज लगाकर दर–दर जाकर भिक्षाटन करते फिरते हैं। अरे जोगियों! ऐसी शिक्षा गोरखनाथजी ने कहाँ और कब दी थी?

हृदय में दया–धर्म तो है नहीं, ऊपर से भांग का रोग भी लग गया है। गाथा कहती है ऐसी विपरीत स्थिति में जोग कैसे सिद्ध कर पाएगा।

आदिनाथ की आज्ञा और सद्गुरु गोरखनाथ जी के आदेश से गोरखनाथ ने भेष धारण किया। जो भेष का मान–सम्मान रख ले, वही सच्चा सिद्ध और नाथ कहलाने का अधिकारी है। बाकी सब तो नाथ है। उनका कोई स्वामी या मार्गदर्शक नहीं है।

गोरख नाम धर के स्वयं को गोरख के समान बताने वाले या स्वयं को गोरख कहने वाले जगत में अनर्गल बातें करते–फिरते हैं। ऐसे लोगों का कोई माँ–बाप, स्वामी या रहबर नहीं होता। वे अनाथ ही माने जाएँगे।

जो लोग (नाथ) मदिरा पान करते हैं। अभक्ष्य भोजन खाते हैं। अवैध रूप से स्त्री का भोग करते हैं। ऐसे लोगों को गोरखवाणी का कथन है कि नाथ सिद्ध वेश धारण करने की क्या आवश्यकता है। यदि इस प्रकार भ्रष्टाचरण करना अभीष्ट था तो वेश क्यों धारण किया ?

गोरखवाणी कहती है– मैं नाथ कहूँ, स्वामी कहूँ या पंथ का मुखिया कहूँ। ये सब 'नाथ' के पर्याय हैं। यदि इतना उच्च पद धारण किया है तो इसके अर्थ का मान भी रखो। तभी आप नाथ कहलाने के अधिकारी माने जाओगे।

उपरोक्त गाथा निश्चित रूप से लोक गाथा है। लोक ही इतिहास और संस्कृति का, धर्म और धारण का कुशल प्रवक्ता कहा गया है। इस गाथा ने जिस प्रकार नाथ पंथ और उसकी लोक स्वीकृति पर अपना बेबाक वक्तव्य दिया है, वह उल्लेखनीय है।

लोक कथन के साथ–साथ मैं यहाँ डॉ. बड़थवाल पीताम्बरदत्त जी द्वारा संकलित गोरखवाणी को भी संकलित कर रहा हूँ, जिससे हम यह जान सकें कि जो लोक गाथा ने कहा है, वही गोरखनाथजी भी कह चुके हैं। लोक का कथन गोरख के मूल कथन से अभिन्न है। पंथ का मूल आधार तो गोरखवाणी अर्थात् गोरख द्वारा निर्धारित आदर्श ही हैं। उन्हीं के आधार पर पंथ का पल्लवन हुआ। उसमें यदि कहीं दुराव आया तो उसके उत्तरदायी पंथ के पश्चातवर्ती उत्तराधिकारी माने जाने चाहिए।

यह गोरखवाणी 'सिस्टपुराण' मैंने गोरखवाणी से न लेकर नाथों की पोथियों से लिया, इसका मिलान मैंने गोरखवाणी ग्रंथ से किया है। इसमें तनिक विस्तार है किन्तु वह भी प्रमाणिक है।

## गोरखवाणी (सिस्ट पुराण)

ऊं उपरान्त लेख नाहीं। दोय पाखै सिस्टि नाहीं। आप पाखे परचा नाहिं। काया उपरान्ति क्षेत्र नाहिं। सील उपर्रान्त व्रत नाहिं। चक्षु उपरान्ति दृष्टि नाहिं। श्रवण ऊपरांति सुरति नाहिं। संतोष उपरान्ति सुख नाहिं। संजय उपरांति सुचि नाहिं। अमर

उपरांति सिद्धि नाहिं। अभय उपरांति करामति नाहिं। माता उपरांत जन्म नाहिं। गर्भ उपरांत नरक नाहिं। पलंत उपरांति हानि नाहिं। चित्त चंचल उपरांति रोग नाहिं। ब्रिध उपरांति मृत्यु नांहि। काल उपरांति बैरि नाहिं। नासिका उपरांति रूप नाहिं। दया उपरांति धर्म नाहिं। ध्यान उपरांति ग्रंथ नाहिं। चंदन उपरांति काष्ट नाहिं। बिंद उपरांति उत्पति नाहिं। समुद्र उपरांति गम्भीर नाहिं। पाताल उपरांति अर्थ नाहिं। सूरज उपरांति तप्त नाहिं। काया उपरांति रत्न नाहिं। संच उपरांति शास्त्र  नाहिं। अजय उपरांति जाप नाहिं। अघोर उपरांति मंत्र नाहिं। नारायण उपरांति इष्ट नाहिं। गुरु पाखे ज्ञान नाहिं। आत्मा उपरांति देवता नाहिं। सिव उपरांति देव नाहिं। सबत उपरांति बाण नाहिं। फकीर उपरांति पदवी नाहिं। मनसा उपरांति माया नाहिं। निश्चल उपरांति जोग नाहिं। अज्ञान उपरांति तिमिर नाहिं। ध्यान उपरांति प्रकाश नाहिं। चरचा उपरांति रस नाहिं। भेरव उपरांति पूंजी नाहिं। माया उपरांति जड़ नाहिं। साधु उपरांति देवता नाहिं। असाधु उपरांति भूत नाहिं। माया उपरान्त जड़ नाहिं। जीव उपरांति चेतन्य नाहिं। हिरदा उपरांति धाम नाहिं। पवन उपरांति चंचल नाहिं। मन उपरांति कर्ता नाहिं। चन्द्रमा उपरांति शीतल नाहिं। बुद्धि उपरांति व्याकरण नाहिं। स्वासी उपरांति वेद नाहिं। पराधीन उपरांति बंदि नाहिं। स्वासा उपरांति मुक्ति नाहिं। चाह उपरांति पाह नाहिं। अचाह उपरांति पुण्य नाहिं। कर्म उपरांति मैल नाहिं। दोष उपरांति कुबुद्धि नाहिं। निर्दोष उपरांति सुबुद्धि नाहिं। सिस्टि उपरांति पोसख नाहिं। गुरु उपरांति दाता नहीं। निगुरा उपरांति चण्डला नहीं। सुगरा उपरांति ब्राह्मण नाहिं।

पिछले पृष्ठों में जो वाणी दी गई है, वस्तुतः वह लोक वाणी है। उसे गोरखनाथ के द्वारा स्थापित आदर्शों, संचेतनाओं और पंथ के लिए निर्धारित नियमों को आधार बनाकर रचा गया, ऐसा मेरा मानना है। नीचे जो वाणी दी गई है, वह गोरख द्वारा सृजित वाणी है। पिछले एक संदर्भ में मनासा में जोगणियाँ रुंडी पर बिराजित लोकवाणी के चार पद (साखियाँ) दी गई हैं। उसे भी मूल गोरखवाणी ही मानना होगा। इसका उल्लेख डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थवाल के द्वारा संपादित 'गोरखबाणी' पृष्ठ 1 सबदी में भी किया गया है।

यहाँ प्रस्तुत गोरखनाथजी द्वारा सृजित 'सिस्ट पुराण' को संकलित किया जा रहा है। सिस्ट पुराण अर्थात् शिष्ट पुराण। शिष्टता का अर्थ यहाँ सदाचरण से है। इसमें जो सूत्र गुरु गोरखनाथ जी ने दिए है, वे उनके दर्शन और पंथ के आदर्शों को विश्लेषित करते हैं।

एक तो केवल ब्रह्म ही है। उनके ऊपर विस्तार या टिप्पणी करना व्यर्थ है। एक ओंकार ही पूर्ण है। दूसरी सृष्टि जगत है। इस प्रकार प्रथम ब्रह्म का अस्तित्व है, द्वितीय

जगत का। स्वयं को जानने से ऊपर कोई परिचय नहीं है। इसलिए स्वयं को जानना आवश्यक है। इसी को आत्मालोचन भी कहा गया है। काया से उपरान्त कोई क्षेत्र नहीं होता। इसे ही निर्मल और स्वस्थ रखना है। इसे ही उर्वरा और फलदायी बनाना है। शील से बड़ा कोई व्रत नहीं है। धर्म के चार आधारों में शील भी एक माना गया है। चक्षुओं से बढ़कर कोई दृष्टि नहीं होती। चक्षु भीतर और बाहर दोनों स्थितियों में होते हैं। अन्तर्मन में झाँककर ब्रह्म, अलख को देखना और बाह्य चक्षुओं से जीव जगत में देखना होता है। हम शुभ–शुभ देखें। चक्षुओं से सात्विक दर्शन करें। श्रवण से उपरान्त सुरति नहीं है, अपनी सुरति को सदा चेतन्य बनाए रखें। अच्छा सुनें, तभी अच्छे विचार हमारे भीतर पहुँचेंगे। उन्हीं से हमारी सोच शुद्ध होगी। सोच से चरित्र शुभ व पवित्र होगा।

संतोष से बढ़कर कोई सुख नहीं हो सकता। परम संतोषी सदा सुखी। संयम से बढ़कर कोई शुचिता नहीं हो सकती। जो संयमी है, वह अशुचिकर कर्म कदापि नहीं करेगा। कर्म शुचिकर होंगे तो फल भी शुचिकर ही प्राप्त होगा। अमरता अर्थात् मृत्यु भय से मुक्ति। मृत्यु भय से मुक्ति होने पर ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है। अभय भाव से उपरांत कोई कर्म नहीं होता। जब तक अभय भाव नहीं होगा, कर्म भी भय मुक्त नहीं होगा। भययुक्त कर्म दुष्कर्म हो सकता है। यहाँ निर्भयता का अर्थ आत्मबल से है। आत्मबल की पुष्टि ही अभय है। माता के बिना जन्म कैसे संभव है? गर्भ से बड़ा कोई नर्क नहीं होता। पलंत अर्थात् कर्म से पलायन भाव। ऐसे पलायन से बड़ी कोई हानि नहीं हो सकती। चित्त की चंचलता से बड़ा कोई रोग नहीं होता। चित्त की चंचलता विचारों में अस्थिरता उत्पन्न करती है। चित्त की अस्थिरता अर्थात् निर्णय करने में अकुशलता। अनिर्णय से ही सर्व हानि होती है। इसलिए इसे रोग कहा गया है। वृद्धावस्था से बढ़कर मृत्यु नहीं हो सकती। वृद्धावस्था अक्षमता की अवस्था होती है। अक्षमता भी मृत्यु तुल्य ही मानी गई हैं। जिस प्रकार मृत व्यक्ति कोई कर्म निर्वाहित नहीं कर सकता, उसी प्रकार अक्षम व्यक्ति भी कर्महीन होकर मृतक तुल्य हो जाता है। भगवान बुद्ध ने भी इस भाव को स्वीकारा है। काल से बड़ा कोई शत्रु नहीं होता। नाक के बिना रूप नहीं हो सकता। नासिका (नाक) को लोक व्यवहार में सम्मान का प्रतीक माना जाता है। यदि सम्मान नष्ट हो गया, तब शेष कुछ नहीं बचता। यश रूप मुख कुरूप हो जाता है।

दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं होता। ध्यान से बढ़कर कोई ग्रंथ हीं होता। चंदन से श्रेष्ठ को काष्ठ नहीं होता। बिन्दु से बढ़कर कोई उत्पति नहीं होती। यही बात आगे चलकर नानक देवजी ने भी कह 'एक बूंद तें सब जग उपज्या।' बिन्दु ही उत्पत्ति का

माध्यम है। समुद्र से अधिक कोई गम्भीर नहीं होता। पाताल से अधिक कोई अर्थ नहीं होता। पाताल ध्यान का एक मार्ग है। ध्यान में इतना गहनतम चले जाना, जहाँ आदि–अंत मिलते हों। वहाँ पहुँचकर समस्त प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं। समस्त गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं।

सूरज उपरान्त तप्त नहीं। सबसे तप्त सूर्य होता है। अग्नि से भी तप्त। सूर्य भीतर के समस्त मल को जलाकर नष्ट कर देता है। सारे तिमिर अज्ञान को प्रकाशित कर ज्ञानमय कर देता है। भीतर एक सूरज ज्योति झलमला रही है। उसे उद्दीप्त करना है। गोरखनाथ ने उसे ही दीपक कहा है। वही दीपक ब्रह्म स्वरूप है।

काया उपरान्त रत्न नहीं। यह काया एक मूल्यवान रत्न है। इसे भोग विलास तथा अनाचार से नष्ट नहीं करना है। इस मूल्यवान रत्न को सम्हालकर रखना है। सच उपरान्त शास्त्र नहीं है। सत्य ही समस्त शास्त्रों का मूलाक्षर एवं मूलभाव है। सत्य को उजागर करने के लिए ही ग्रंथों की रचना की जाती है।

अजप उपरान्त जाप नहीं है। वह जाप जो घट के भीतर ध्वनित होता है। साँस–उसाँस से होता है। उसे ही अजपा जाप कहा जाता है। अघोर से बड़ा कोई मंत्र नहीं है। (अघोर–शिवस्वरूप, सुन्दर, सुहावन, मनभावन) ये सभी पर्याय शिव के हैं। शिव से बड़ा कोई मंत्र नहीं है। केवल शिव कहने मात्र से मंत्र की शक्ति आ जाती है। नारायण से बड़ा कोई इष्ट नहीं है। निरंजन से उपरांत कोई ध्यान नहीं है। सिद्धि से ऊपर ब्रह्म नहीं है। ब्रह्म ही सिद्धि का लक्ष्य है। सिद्धि ब्रह्म प्राप्ति हेतु ही की जाती है। यदि सिद्धि प्राप्त हो गई तो समझो ब्रह्म ही प्राप्त हो गया। गुरु से अतिरिक्त कोई ज्ञान नहीं है। इसीलिए गुरु को 'ज्ञान स्वरूप' ऐसा कहा गया है। आत्मा से ऊपर कोई देवता नहीं है। आत्मा को परमात्मा कहा गया है। आत्मा–परमात्मा का ही अंश रूप है। शिव से बड़ा कोई देव नहीं है। यहाँ देव और देवता का अन्तर स्पष्ट है। देव तो केवल तीन हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश। इन्हें त्रिदेव कहा गया है। देवता अनेक हैं। यथा–सूर्य, वायु, अग्नि, इन्द्र आदि।

शब्द से बड़ा कोई बाण नहीं होता। शब्द का प्रभाव बाण की तरह लगता है। वह जीवन की दिशा बदल सकता है। फकीरी से बड़ा कोई पद नहीं है। कबीर ने कहा है–

*हद तपे सो ओलिया, अनहद तपे सो पीर।*
*हद अनहद दोनों तपे, उसका नाम फकीर।।*

फकीर को ओलिया और पीर से भी ऊँचा माना गया है।

मनसा से बड़ी कोई माया नहीं है। मनसा अर्थात् आकांक्षा, अभिलाषा, आशा, तृष्णा, कामना ये सभी माया के अंग है। माया को जागृत करते हैं। निश्चल उपरान्त योग नहीं हो सकता। निश्चल मन होने पर ही मन की एकाग्रता हो सकती है। एकाग्रता होने पर ही समाधि लग सकती है। अज्ञान से बड़ा कोई अंधकार नहीं होता। ध्यान से बड़ा कोई प्रभाव नहीं होता। ध्यान से भीतर की ज्योति के दर्शन होते हैं। वह ज्योति ही आत्म चिंतन का मार्ग प्रशस्त करती है। चर्चा (शास्त्र) से बड़ा कोई रस नहीं होता। चर्चा में जो आनंद है, वह किसी भी रस में नहीं हो सकता। भेष से ऊपर कोई पूँजी नहीं होती। इसलिए बार—बार भेष की रक्षा और मान बनाए रखने का उपदेश दिया जाता है।

साधु से बड़ा कोई देवता नहीं होता। जिसमें शील, सत्य, दया, करुणा, शुचिता आदि गुण होते हैं, वह साधु कहला सकता है। उससे बड़ा देवता हो सकता है।

असाधु के समान कोई भूत नहीं हो सकता। माया से बड़ा कोई जड़ नहीं। माया जड़ता लाती है। विवेक का नाश कर देती है। जीव से बड़ा कोई चैतन्य नहीं होता। जीव ही तो चेतनता का प्रतीक है। हृदय से बड़ा कोई पुण्य स्थल (धाम) नहीं होता। हृदय में परमात्मा का वास होता है। पवन से अधिक कोई चंचल नहीं होता। वैसे सबसे चंचल मन को कहा गया है। मन से ऊपर कोई कर्ता नहीं होता। मन ही कर्म करने की प्रेरणा देता है। चन्द्रमा से अधिक कोई शीतल नहीं होता। बुद्धि से ऊपर कोई व्याकरण नहीं होता। बुद्धि ही तो व्याकरण का अनुशासन निर्धारित करती है। स्वासी से ऊपर कोई वेद नहीं होता। वेद भी तो स्वचिंतन का ही प्रति प्रसाद है। स्वचिंतन ही श्रेष्ठ है। इसी से सृजन होता है। पराधीन से बड़ा कोई बंधन नहीं है। स्वासा उपरान्त मुक्ति नहीं। स्वास अर्थात् आत्मलीनता। स्वयं में लीन हो जाना। उसी को समाधि कहा जाता है। उसी प्रक्रिया को मुक्ति कहा गया है। समाधि अवस्था में संसार के सभी बंधन खुल जाते हैं। सभी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं। यही तो मुक्ति की अवस्था है। चाह से बड़ी प्राप्ति की कामना नहीं होती। यह कभी भी तृप्त नहीं होती। अचाह होने से ही कामनाओं से मुक्ति मिलती है। चाह यदि वापसी की ओर अग्रसर करती है तो अचाह पुण्य की ओर। कर्म के समान कोई मैल नहीं। कर्म यदि शुद्ध मन से तथा लोक कल्याण भाव से किया जाए तो निर्मल होता है अन्यथा अशुद्ध। दोष से बढ़कर कोई कुबुद्धि नहीं है। इसी प्रकार निर्दोष से बढ़कर सुबुद्धि नहीं है। सृष्टि के सामान को पोषक नहीं है। गुरु से ऊपर या बड़ा कोई दाता नहीं है। नुगरे (गुरु विमुख) से बढ़कर चाण्डाल भी नहीं तथा सुगरे (गुरु सम्मुख) से बड़ा कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता।

**गोरखवाणी (दया बोध)**

*आओ सिद्धौ खोज बताऊँ। आदिनाथ का पूत कहाऊँ।।*
*जोगारंभ की याही बाणी। सब घटिनाथ एकै करि जाणी।।*
*जोगारंभ हिरदा में मांड़ो। दया उपावो जूती छांड़ो।।*
*नागा पाँवाँ जे नूर मूवां। ताका का कारज पहेली हुआ।।*
*आप सुवारथ घालो धूई। ता में चींटी केती मूवी।।*
*तजो कहरि नजरि भभूत। कवा फाड़ि जिनि लेउ हाथ।।*
*एता आरंभ परिहरो सिद्धों। यों कथंत जती गोरखनाथ।।*
*नाथ चलंता घरणि दिष्टि लागे। तांके काँटा कदै न भागे।।*
*पहेली आरंभ हम भी करते। जीव जंतु बहुतेरे हंतते।।*
*आरंभ तेजो गूदड़ी चलावो। निरति–सुरति अविनासी संग लावौ।।*
*अविनासी पुरुख का लागा रंग। रिद्धि–सिद्धि ताही के संग।।*
*रिधि छाड़याँ सिधि पाइये। सिद्दि संकर के हाथि।।*
*छाड़ो सकल अखल कूँ ध्यावो। यो कथंत जति गोरखनाथ।।*
*आसन तजि अनत जिनि जासो। अकल्प भिछया बैठा खावो।।*
*कनक न पकड़े मोरौ न झेलै। आई रिद्धि की जोगी ठेले।।*
*हरया तिणां का न सतावे जीव। सो जागी कहिये जोगी सीव।।*
*चकमक कफ नांव न धरौ। पर आत्मा का परला जिनि करौ।।*
*अगिन न बोलो धुआं नन घोटौ। भिछया करपात्र ले वोटौ।।*
*ग्वांडा बिच आसण जिनि मांड़ो। मोह लगाय आप जिनि भांड़ौ।।*
*बा बावड़ी कौ मन नहिं दीजै। देखत दिष्टि काया तन छीजै।।*
*पंडित पढ़ि गुणि करै न आसा। देखि एकंतु जु रहो निरासा।।*
*काहे को पड़ि गुणि भला कहावै। जब लगि हिरदा दया न आवै।।*
*कनक न पकड़े सबद न वाहे। जोगी कागद कहाँ ते लावे।।*
*तन मेरे पोथी मन मेरे लेखनी। एती निज तत निसपती।।*
*यो कथंत गोरख जती।।*
*वहाँ चलिबें को करो विचार। अगम अगोचर सुलभ आकार।।*
*घड़ा देवरा औघड़ देव। तहाँ जोगे स्वर लाग्या सेव।।*
*पंच चेला मिलि पूरयानाद। धाणी गगन बिच भई आवाज।।*
*दीपक एक अखंडित बिन बाती। तहाँ जोगेस्वर थापना थाणी।।*
*अगम अगोचर सकल ब्रह्मंड। ता दीपक कै चरण न पांड।।*

*सिखा न नैन सीसहिं हाथ। सो दीपक देख्या जाति गौरखनाथ।।*
*ता दीपक के डाल न मूल। ता दीपक के कलि न फूल।।*
*ता दीपक के रूंग न रूप। ता दीपक के छाँह न धूप।।*
*ता दीपक के सबद न स्वाद। ता दीपक के विद्या न वाद।।*
*ता दीपक के मोह न माया। ता दीपक सूनै सून समाया।*

**भावार्थ**

गोरख कहते हैं– हे सिद्ध जनों! मेरे निकट आओ, मैं तुम्हें एक रहस्य बताता हूँ। मैं आदिनाथ भगवान शिव का पुत्र हूँ। योग साधने की यही वाणी सत्य है। नाथों ने इसे अपने घट में स्थापित कर एकरूप करते हुए स्वीकारा है। योग को आरंभ करना हो तो उसे पहले अपने हृदय में स्थापित करो। पाँव के जूते उतार दो। मन में दया लाओ। जूते तो किसी पशु के चमड़े से ही बनेंगे। जो नंगे पैर रहेंगे, वे जीव हत्या की भागीदारी से बचेंगे। गो की रक्षा का पुण्य भोगेंगे। उनको सभी सिद्धियाँ अवश्य प्राप्त होंगी। आप अपने स्वार्थ के लिए धुई (चींटी) भोज डालते हैं। उस खाने के लिए चीटियाँ एकत्र होती हैं। उन चींटियों को चिड़ियाँ चुग जाती हैं। अर्थात् तुमने उन चींटियों को मारने के लिए एक प्रकार का तंत्र रचा। तुम उन चींटियों की हत्या के कारण बने। बाघांबर और अन्य पशुओं के चर्म का त्याग करो, भभूत का त्याग करो। बटवा (कोथरी) को फाड़ फेंको। ऐसा योगारंभ करो। ऐसा गोरखनाथ का वचन है। जो नाथ चलते राह अपनी दृष्टि नीचे रखता है उसे कभी कांटा नहीं चुभ सकता। अर्थात् जो अपनी दृष्टि शुद्ध रखने के लिए संसार के सौंदर्य से मुक्त रहता है। जो एकनिष्ठ रहता है। उसका मन कभी भी विषयों में लिप्त नहीं हो सकता। वह तन, मन, वचन, वाणी और कर्म से सदा शुद्ध रहता है। योगारंभ में उस समय बलि दी जाती थी। गोरख कहते हैं कि हम भी पूर्व काल में यह काम करते थे। जीव–जंतुओं का हनन करते थे। जब ज्ञान और भान हो गया, तब इस आडम्बर और दुष्कर्म को त्याग दिया। इसलिए– हे नाथ सिद्धों! आरंभ की परम्परा का त्याग करो। अपनी वृत्ति निरति और सुरति से अविनाशी परब्रह्म में स्थापित करो।

आरंभ की परम्परा को त्याग कर गूदड़ी का चलन करो। जब अविनाशी पुरुष का रंग चढ़ जाएगा, तब स्वयं ही आठों सिद्धियाँ तुम्हें प्राप्त हो जाएँगी। रिद्धियाँ प्राप्त करने का मोह त्याग दो। सिद्धि प्राप्ति करने का यत्न करो। सिद्धि शिव के बस में है। उनका ध्यान करो। उन्हें साधो। इसलिए शेष सभी देवों–देवताओं को और देवियों को छोड़कर एकल शिव की, ब्रह्म की साधना करें। ऐसा गोरखनाथ का कथन है।

अपना आसन त्याग कर अन्यत्र भिक्षाटन करने मत जाओ। भैरव झोली (वेश धारण कर घूँघरु बजाते हुए अलख नाद करते हुए दर–दर भिक्षा मांगना) मत चलाओ। अपने आसन पर बैठकर मान–मर्यादा से जैसा भी भोजन मिले उसे ग्रहण करो। भोजन की व्यंजन स्वाद भावना त्याग दो। मनोवांछित भोजन की इच्छा का त्याग कर दो। संयम धारण करो।

स्वर्ण तथा मोहर (स्वर्ण मुद्रा) को स्वीकार मत करो। जो सच्चा योगी होता है, वह ऐसी आने वाली रिद्धि का त्याग कर देता है।

हरे–भरे वृक्षों को मत काटो न काटने दो। जीवों को मत सताओ। आसन दरियानाथ के सिद्धनाथ ने भी राजपूत राजा को यही उपदेश दिया था। हरे वृक्ष मत काटो। वनपशु मत मारो (शिकार मत करो) उन्होंने बड़ के सूखे पेड़ को अपने योग बल से हरा कर दिया था। ऐसा योगी जो हरे वृक्षों और वन जीवों तथा अन्य जीवों की रक्षा करता है, वह शिव तुल्य मान्यता पाता है। उसे लोक में स्वीकृति एवं यश प्राप्त होता है। चकमक कफ नाम धारण मत करो। भावार्थ में नाव में चकमक पत्थर भरकर उसे भारी मत बनाओ। परमात्मा का नाम धारण करो। संसार में निर्लिप्त भाव से रहो।

गोरखनाथ कहते हैं– अग्नि मत जलाओ। धुँआ से आकाश मत भरो। इस प्रकार गोरख धूनी प्रथा की भी वर्जना करते दिखते हैं। वे तो अपने साथ खप्पर रखने की वर्जना करते हैं। वे कहते हैं– करपात्र (दोनों हाथों को मिलाकर पात्र बनाना) में भोजन करो। जो भी भिक्षा मिले उसे करपात्र में ग्रहण करो और उसी करपात्र में खा लो। अपरिग्रह को आचरण में लाओ।

गाँवों में आसन मत लगाओ। उससे मोह उत्पन्न होता है। मोह से माया, माया से भटकाव आता है और भटकाव से भ्रम, फिर चारित्रिक भ्रष्टता आती है। किसी भी स्त्री से मन मत लगाओ। स्त्री पर दृष्टि तक मत डालो। दृष्टि डालने से मन विचलित होता है। उससे तन भ्रष्ट हो जाएगा। इसीलिए गोरख जी ने पूर्व में कहा है– नाथ चलता दिष्टि जिन लागे। तिनके कांटा कदै न भागै।। जो नाथ अपनी दृष्टि नीचे रखकर चलेगा। उसके पैर में कभी कांटा नहीं लगेगा। इस सबदी का निहितार्थ भी यही है कि दृष्टि पर संयम रखो।

पंडित बनकर ज्ञान प्राप्त कर फिर उससे धन–यश प्राप्त करने की लालसा रखना व्यर्थ है। एकांत में रहकर स्वाध्याय करे। आत्म चिंतन करे। यही उचित है। पढ़

लिखकर–गुणकर, ज्ञानी बनकर स्वयं को भला कहलाने की लालसा क्यों रखते हो? जब तक हृदय में दया भाव नहीं आ जाता, सारा ज्ञान और समस्त सिद्धियाँ व्यर्थ हैं।

न तो स्वर्ण का स्पर्श करो और न व्यर्थ में शब्दों का उपदेश देकर यश पताका फहराओ। योगी के पास कागज और लेखनी कहाँ है? मेरा यह तन ही पोथी है। मन ही लेखनी है। ऐसा भव्यभाव धारण करें। वह सच्चा योगी है। ऐसा गोरखनाथ का कथन है।

हे योगियों। हे सिद्धों! हे नाथों! जहाँ वह अगम–अगोचर बिराजता है, जिसका कोई आकार नहीं होकर भी सुलभ है। वहाँ तक (उस तक) पहुँचने का विचार करो। जहाँ मूर्तियाँ स्थापित हैं। जहाँ औघड़ देवता बिराजित हैं। जहाँ मदिरा की धार लगती है। बलि होती है। जोगेश्वर नाथ सिद्ध वहाँ जाकर सेवा करते हैं। उन देवताओं की पूजा करते हैं।

पाँच चेले इकट्ठे होकर नाद की गर्जना करते हैं। उनकी आवाज धरती– आकाश में गूँज जाती है। एक ऐसा दीपक है जो सदा प्रदीप्त रहता है। बिना बाती के प्रज्ज्वलित होता रहता है। वहाँ पर योगेश्वर ने उस दीपक की स्थापना की है। वह दीपक अगम और अगोचर हैं। उस दीपक के न चरण है न हाथ हैं। न उसकी शिखा है न नेत्र हैं। न शीश है न सिर है। गोरखनाथ ने उस दीपक के दर्शन किए हैं।

उस दीपक का न रंग है, न रूप है न छाँव है, न धूप है। न शब्द है, न स्वाद है। उस दीपक में न विद्या है। न तर्क–वितर्क, वाद–विवाद का विषय है। उस दीपक को न मोह व्यापता है न माया प्रभावित करती है। वह दीपक शून्य जगत में समाया हुआ है। वहीं वह प्रदीप्त है। उसके दर्शन वहीं हो सकते हैं।

इस वाणी में गोरख ने जहाँ नाथ सिद्धों को चारित्रिक उपदेश दिया है, वहीं माया, मोह, यश लिप्सा से मुक्त होकर सत्य, सुकर्म और सदाचार का संदेश भी दिया है। ज्योति स्वरूप परमात्मा का ज्ञान करवाकर वे कहते हैं कि योगी को चाहिए वह जगत लिप्सा से मुक्त होकर उस ज्योति स्वरूप की आराधना और साधना करें।

### तांत्रिकों का सिद्ध स्थल : लोह पट्टण पड़दाँ

अरावली पठार की तलहटी में बसा गाँव पड़दाँ किसी समय लोह पट्टण कहलाता था। मनासा से यही कोई 10 किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह गाँव पुरातत्व की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ के पठार में लोहे की खदाने थी। 'शहरी लोहार' खदानों में कच्चा लोहा निकालकर उसे गलाकर शोध कर लोहा बनाते थे और उस लोहे से कृषि

यंत्र तथा हथियार बनाते थे। ऐसी ही खदान इसी सीध में जाट नामक गाँव में भी थी तथा इसी पठार पर स्थित मनासा से लगभग 90 किलोमीटर दूर नावली गाँव में भी थीं। नावली में होल्कर राज्य के हथियारों का कारखाना था। विजयंती नामक तोप यहीं ढाली गई थी।

आज यह गाँव पूर्व के गाँव से बहुत छोटा है। पहले इसका विस्तार दसपुरों में संगठित था। भेरपुरा, नवलपुरा, भोजपुरा, अमरपुरा, रावतपुरा, मदुरपुरा, खलकीपुरा, कलपुरा, लालपुरा, नवपुरा। इस प्रकार इस अंचल में यह दशपुरों का संघ दशपुर था। एक दशपु मन्दसौर दूसरा पड़दाँ हुआ।

किसी भूस्खलन के कारण पूर्व लोहपट्टण ध्वस्त हो गया। फिर बसा तब इसे गोस्वामी परिवार ने बसाया। उन्होंने इस बेचिराग गाँव को पड़तखेड़ा नाम दिया। पड़तखेड़ा अर्थात् पड़ा हुआ गाँव ध्वस्त या खण्डहर बना गाँव।

यहाँ दशपुर, बावड़ियाँ और कँवलों से भरा पुष्कर्या तालाब था।

राणा लाखा के बाद मोकल का समय 1478–1490 माना जाता है। मोकल के नाना रणमल राठौर अपने नाती के अभिभावक थे और सारा शासन अपने नाम से चलाते थे। उन्होंने रामेश्वर गिरी गोस्वामीजी को मठ के लिए संवत् 1483 विक्रमी में पट्टा दिया। गोस्वामी परिवार यहाँ इससे पहले आ चुका था। उनका यहाँ आगमन 14 वीं शताब्दी में माना जाता है।

उसी काल में आसन दरियानाथ में दरियानाथ जी का आना हुआ। उनका आगमन 14 वीं शताब्दी विक्रमी के प्रथम भाग में हुआ। मठ में 1331 विक्रमी का पट्टा मौजूद है, जो महाराणा हमीर के द्वारा प्रदत्त है। उनके साथ ही उनके गुरु भाई सुखनाथ महाराज भी आए थे। वे भी चतरानाथ के शिष्य थे।

दरियानाथ ने उन्हें सुखानंद मुकाम करने की सलाह देकर वहाँ भेज दिया। सुखनाथजी बहुत बड़े सिद्धनाथ थे। उन्होंने सुखानंद में रहकर कुछ वर्षों तक तपस्या की, फिर उनका व दरियानाथ जी का किन्हीं कारणों से मन मुटाव बढ़ने लगा। सम्भवतः वह वर्चस्व का मन मुटाव हो। यह कहना कठिन है कि वर्तमान सुखानंद तीर्थ का नाम सुखानंद किस कारण से पड़ा होगा। कुछ लोग शुकदेवजी की तपोभूमि कहकर इस स्थान को महिमामंडित करते हैं, जो एक स्वाभाविक महिमा प्रवृत्ति है। इतना निश्चित है कि गिरि कंदराओं में जिस प्रकार शिव स्थल है, वहाँ नाथों का वर्चस्व रहा है। आज भी यह प्रभाव दिखलाई देता है।

सुखनाथजी सुखानंद तीर्थ से प्रस्थान कर पठार पर आगे बढ़े। डीकेन की वर्तमान भूखी माता स्थल पर मुकामी हुए। वह स्थान भी तांत्रिकों का प्रसिद्ध स्थल है। नाथों का वह तपस्या स्थल रहा है। सुखनाथजी कुछ समय भूखीमाता के रमणीक स्थल पर रहे। वहाँ भी पहले से एक सिद्धनाथ निवास कर रहे थे। कुछ काल के पश्चात् सुखनाथजी डीकेन से कंजार्ड़ा होकर पड़दाँ पहुँचे। डीकेन को राजस्थान से मालवा प्रवेश का दक्खणी द्वार माना जाता है। सुखानंदजी पड़दाँ में आकर रहने लगे। यहीं पर गंगाबावड़ी मार्ग पर उन्होंने अपना डेरा बनाया। यहाँ ढण्ढेड़ी नदी बहने के कारण पानी की दिक्कत नहीं थी। बाद में उनके डेरे में कुछ और नाथ भी आकर रहने लगे। इस प्रकार एक मठ जैसा वह स्थान बन गया। घोषित रूप से उसे कभी मठ नहीं कहा गया। उसका मठ के रूप में भले ही कहीं उल्लेख न मिलता हो, किन्तु वह स्थल सुखनाथजी का मठ ही माना जाएगा। पं. रामचन्द्र उपाध्याय ने बताया कि सुखनाथजी एक भव्य और दिव्य आकृति के नाथ थे। वे भगवा वस्त्र धारण नहीं करते थे, बल्कि एकदम सफेद वस्त्र धारण करते थे। सिर पर जटा एवं उस पर सफेद पाग बाँधते थे। पांव में खड़ाऊँ पहनते थे। उनकी सफेद लम्बी दाढ़ी थी। ऐसा पूर्व के वृद्ध लोग बताते थे। किसी ने उन्हें सशरीर नहीं देखा था। उनका यश और लोक कल्याणों के संदर्भ लोक में चर्चित बने रहे, जो अब लगभग समाप्त हो गए हैं। लगभग 700 वर्ष पूर्व की कथाएँ समय के उदर में विलुप्त हो गई हैं। तीसरी पीढ़ी तक तो लोग अपने दादा–परदादा तक का नाम तक भूल जाते हैं।

सुखनाथजी महाराज जिन्हें लोक में सुखनाजी महाराज पुकारा जाता था, लोक मानस में अत्यंत सम्मानित थे। उनके पास एक घोड़ा भी था। एकदम सफेद। मानो दूध धोया हो। उसका नाम हंसा था। सुखनाथजी महाराज जब गाँव में आते, तब उनका घोड़ा उनके पीछे चलता था। डेरे से गाँव की सीमा तक तो वे हंसा पर सवार होकर आते थे, फिर पैदल चलते थे। उनके मुख पर एक आनंददायक मुस्कराहट छायी रहती थी। उनके दर्शन मात्र से मन का क्लेश–शोक, शांति में बदल जाता। भोजन एक समय करते थे। वह भी करपात्र में । दसपुरों का गाँव। प्रति गाँव क्रम–क्रम से वे जाते थे। जिस गाँव में वे भिक्षाटन करते थे, उस गाँव में उनके शिष्य नहीं करते थे। वे सब अलग–अलग गाँवों में जाते थे। सभी नाथ एक समय ही भिक्षाटन करते थे।

मठ में गाएँ थी। नाथ जी गायों को बहुत प्यार करते थे। स्वयं अपने सामने गायों की सेवा करवाते थे। बछड़ों को भी तृप्ति तक दूध पिलाते। शेष दूध मठ में पिया जा सकता था। दोपहर को वे सभी गाएँ एक वृक्षावली में बंधवाते और वहाँ से स्वयं उनके बीच चारपाई डालकर सोते थे।

थोड़ी सी खेती भी थी। उनके शिष्य खेती करते थे। मठ में चढ़ावा नहीं लिया जाता था। वे जड़ी–बूटियों के भी जानकर थे। कई असाध्य रोगों का इलाज वे करते थे। पशुओं और मनुष्यों दोनों का।

उनका इतना मान था कि जब भी कोई गाय–भैंस खरीदता, पहले वह महाराज के सामने लाता। आशीर्वाद दिलवाता। विवाहित युगल गृह प्रवेश से पूर्व पहले महाराज के धोक लगाने आते।

उनको सिद्धियाँ प्राप्त थी। उनके रहते किसी भी गाँव में कोई लूट नहीं हुई, वर्ना उस काल में लूट बहुत होती थी। उनके गण पड़दाँ (लोहपट्टण) के सभी गाँवों में अप्रत्यक्ष चौकसी करते थे। कई बार लुटेरों की पिटाई हुई। लुटेरे माल छोड़कर भाग खड़े हुए। अतिवृष्टि या कम वृष्टि नहीं हुई। फसलों में रोग नहीं लगा। ऐसे थे सुखनाथजी महाराज। जंगल बहुत घना था। शेर कई बार गायों को घेरते थे। एक बार शेर ने मठ की गायों को घेर लिया। महाराज को मठ में बैठे–बैठे आभास हो गया। उन्होंने बैठे–बैठे शक्ति चला दी।

जो गाएँ शेर के भय से डरकर भाग रही थीं. वे एकदम रुक गईं और पलटकर खड़ी हो गईं। शेर को उस अप्रत्याशित स्थिति की कल्पना भी नहीं थी। देखते–देखते गायों ने शेर के चतुर्दिक घेरा बना लिया और उस पर आक्रमण कर दिया। शेर जिधर भागता उसके पीछे वाली दो गाएँ अपने सींगों से टक्कर लगातीं। इस प्रकार शेर बुरी तरह घायल हो गया। वह प्राण बचाकर भाग खड़ा हुआ। भागकर वह मठ में आ पहुँचा। यह भी महाराज की ही लीला थी। अन्यथा गाएँ उसे मार ही डालतीं। महाराज ने शेर को सहलाया। उसके घावों पर औषधि लगाई। पानी पिलाया और वन में भेज दिया। कहते हैं उसके बाद वह शेर कई बार महाराज के दर्शन करने आता था। वन में भी वह कई बार गायों के साथ घूमता था।

महाराज की उम्र बहुत हो गई थी। एक दिन उन्होंने अपने शिष्यों को अपने पास बुलाया और कहा– 'मैं कल समाधि लूँगा।' उम्र बहुत हो गई है। ज्यादा उम्र भी दुखदायी होती है। भीष्म पितामाह को पिता ने इच्छा मृत्यु का वरदान दिया। वह श्राप बन गया। उनके सामने ही उनका वंश नष्ट हो गया। पितामह को संसार का मोह हो गया था। अन्यथा वे चाहते तो वंश नाश नहीं देखते। मृत्यु स्वीकार कर लेते। मैं अब जाना चाहता हूँ। मेरी समाधि वहीं बनाना, जहाँ मैंने सबसे पहले मुकाम करना चाहा था। वहाँ की भूमि मेरी समाधि के लिए उचित है।

हम नाथ है। नाथ का अर्थ स्वामी भी होता है और सेवक भी। लोक में इसका अर्थ बहुत बड़ा है। जब बछड़ा युवा हो जाता है, तब उसे नाथ डाली जाती है। नाथ डालने के बाद वह मर्यादा में रहता है। अपने मालिक के कब्जे में रहता है। हमारे कानों में भी नाथ पड़ी है। बैल के नाक में होती है। कानों के मुद्रणें हमारे लिए नाथ हैं। इसीलिए हम नाथ है। मुद्रणा हमारी मर्यादा हैं।

मर्यादा मत छोड़ना। हमारा मालिक स्वयं सद्‌गुरु और आदिनाथ शिव है। उनका मान और नाम नहीं बदनाम हो। सदा ध्यान रहे। भैरव झोली मत घुमाना। सीधे–सीधे भिक्षाटन करना। पेट भरने तक। संग्रह मत करना। भिक्षाटन से एक तो अहंकार टूटता है। दूसरा गृहस्थी का मोह नहीं व्यापता। अजपा जपना। छल मत करना। सहजी भक्ति करना। न तो तीखे चलना न धीरे चलना। न तीखा बोलना न धीमा बोलना। स्पष्ट किन्तु मधुर बोलना। सद्‌गुरु गोरखनाथ जी ने सही फरमाया है–

*नाथ कहंता सब जग नाथ्या, गोरख कहंता गोई।*

ऐसा ज्ञान देकर वे सो गए। प्रातः तीन बार अलख निरंजन का नाद लगाया। स्नान किया। फिर आसन पर बैठकर समाधि ले ली। प्राणों को ब्रह्मरंध्र में चढ़ाकर संसार से मुक्त हो गए।

उन्हें पूरे मान–सम्मान से शोभायत्रा सहित उनके इच्छित स्थान पर लाया गया। जहाँ उन्हें समाधि दे दी गई। उनके समाधि ले लेने के पश्चात् भंडारा हुआ (भोज प्रसादी)। कहते हैं निर्वाण के पश्चात् भी वे लोक कल्याण करते रहे। कई बार लोगों ने वन में, खेतों में, स्वप्न में उनके दर्शन किए। उनके पश्चात् उनके एक शिष्य मंगलनाथ ने भी जीवित समाधि ले ली। उनकी समाधि भी उनके पास बनी है। नाथों की और भी समाधियाँ वहाँ हैं। कालान्तर में कोई योग्य नाथ वहाँ नहीं हुआ। मठ का अस्तित्व समाप्त हो गया, अब तो नाम निशान तक नहीं बचा। पं. रामचन्द्र उपाध्याय ने बताया–वर्षो तक सुखनाथजी की स्मृति लोक जीवन में बनी रही थी।

पड़दाँ संतों, फकीरों, नाथों, सूफियों और बोहरा संतों के लिए तीर्थ है। गोस्वामियों का केन्द्र स्थल रहा है। अजमेर के ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती साहब का उर्स पूरा हो जाने के बाद कई सूफी संत डीकेन के मार्ग से कंजार्ड़ा होकर पड़दाँ आते थे। सूफी संत मिट्ठे साहब और हसन दरवेश इसी मार्ग से पड़दाँ आए और यहाँ मुकामी हुए। अम्बाखोह (अमखों) में इनका मुकाम रहा। ये सिद्ध फकीर थे। इनके कई चमत्कारिक प्रसंग आज भी इस अंचल में प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार मिट्ठे साहब भी यहाँ

मुकामी रहे, फिर मनासा में मुकाम किया और अन्ततः गरोठ आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए गागरोन जाकर स्थाई निवास किया। वहाँ उनका मजार आज भी है। मनासा में ब्रदीविशाल मंदिर के नीचे उनकी मजार है तथा आज भी वहाँ दीपक लगता है। इनके मजार मन्दसौर, अफजलपुर, नाहरगढ़ और गरोठ में बने है। जहाँ–जहाँ भी ये चालीस दिनों से अधिक मुकामी हुए, वहाँ–वहाँ इनके स्थान कायम किए गए।

इसी प्रकार मंगलनाथ जोगी भी इसी मार्ग से यहाँ आए। उन्होंने सुखनाथ मठ पर मुकाम करने का विचार किया, कुछ समय वहाँ रहे भी। वे भरथरी, गोपीचंद और निर्गुणी भजन गाते थे। रात–रात भर लोग सुनते थे। बहुत लोकप्रिय हुए। नाथों में गायिकी का बहुत चलन रहा है। विशेष रूप से जमला या जमरा भजन। इन्हें कहीं–कहीं जलवा भी कहते हैं। पूर्वजों के भजन गाए जाते हैं। साथ में पूर्व नाथों सिद्धों का यश बखान भी होता है। जमरा (यम के) भजन अर्थात् यमपुरी में गए पूर्वजों के स्मृति भजन।

मंगलनाथजी सारंगी के पक्के बजैया थे। उन्होंने भी बाद में जीवित समाधि ले ली। उनकी समाधि पुष्कर या तालाब की पाल पर स्थित है। तालाब तो अब खेत बन चुका है। लोगों ने उसे हांककर खेत में बदल लिया है।

पड़दाँ (लोहपट्टण) में नाथों की धूनी संवत् विक्रमी चौदह से कुछ वर्षों पूर्व तक कायम रही। नाथों का वर्चस्व एवं सम्मान यहाँ बराबर बना रहा।

## रामपुरा का आसन सारंगीनाथ

रामपुरा दशपुर अंचल का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र माना जाता है। ईस्वी 1409 से पूर्व यहाँ रामा भील का शासन था। अरावली पठार और तलहटी में भील सत्ता कायम थी। यहाँ पर नाथों का वर्चस्व भी पूर्व काल से चला आ रहा था। सभी नाथ यहाँ राजस्थान के मेवाड़ से आकर बसे थे। रामपुरा पर चन्द्रावतों ने विक्रमी संवत् 1466 में रामाभील पर आक्रमण किया। इससे पूर्व उनका शासन आमदगढ़ पर था। यह किला अरावली पठार पर स्थित है। यहाँ मोरी शासक देवा की सत्ता थी। कुछ विद्वान देवा को राजपूत मानते हैं, किन्तु सम्भवतः वह मोरी वंश का मीणा था। मीणा भी आदिवासी होते हैं तथा भील भी। इसी कारण दोनों राज्य परस्पर मित्र बने रहे। सेवा मोरी ने हुशंगशाह माण्डव की सहायता से आमद पर आधिपत्य किया। फिर दो वर्षों के पश्चात् रामपुरा पर अधिकार करवहाँ राजपूत सत्ता स्थापित की।

नाथों का मेवाड़ घराने में बहुत मान था। महाराणाओं ने उन्हें जागीरें भेंट में दी

थीं। बप्पा रावल के समय से आज तक महाराणा के शस्त्रागार की पूजा विजयादशमी पर नाथ ही करते हैं।

महाराणा ने ही मेवाड़ मालवा की सीमा पर दरियानाथ को चकती की जमीन आसन स्थापित करने के लिये प्रदान की थी। चन्द्रावत भी महाराणा वंशज के ही थे। वे राजनैतिक कारणों से निष्कासित किए गए थे। रामपुरा की सत्ता प्राप्त होते ही उन्होंने मेवाड़ से नाथ सिद्ध सारंगीनाथ को निमंत्रण दिया और पूरे मान के साथ रामपुरा में उनका आसान धूनी कायम कर उन्हें जागीर दी।

सारंगीनाथ सिद्ध पुरुष थे। वे राजनीति और युद्ध विद्या के भी बहुत जानकर थे। उन्होंने अपने आसन में शस्त्र संचालन की शिक्षा देने का काम शुरू किया। मेवाड़ से उन्होंने कुछ ऐसे नाथ बुलवाए जो शस्त्र विद्या में पारंगत थे। राजपरिवार के कुमारों को वे शस्त्र विद्या सिखाते थे। एक प्रकार से वे महाभारत के द्रोणाचार्य थे। उनके साथ आने वाले नाथों को आसपास के गांवों में बसाकर उन्हें जागीरें प्रदान की गई। इनमें मोया, लोटवास, छोटी आंत्री, बड़ी आंत्री, चपलाना, शंखोद्धार आदि प्रमुख धूनिया मानी जाती हैं। रामपुरा में आसन होते हुए भी खास केन्द्र शंखोद्धार ही था। शंखोद्धार प्रकरण में मैंने शस्त्र विद्या का उल्लेख किया गया है।

सारंगीनाथ ने रामपुरा राज्य की बहुत सहायता की। 1511 ई. में हंसराज जी चन्द्रावत की उन्हीं के भाई ने विष देकर हत्या करवा दी थी। तब अंचलसिंह किशोर अवस्था में थे। तब सारंगीनाथ ने उन्हें रामपुरा महल से ले जाकर भाटखेड़ी जागीर में गुप्त करवा दिया था। वहीं उन्होंने अपना एक विश्वसनीय नाथ रखा और अचलसिंह को शस्त्रविद्या में पारंगत किया। रामपुरा गद्दी पर अचलसिंह और द्रुगभान दो शासक बहुत वीर हुए। उन्होंने कई युद्धों में भाग लिया और विजयी हुए। सभी युद्धों में सारंगीनाथ और उनके पश्चात् के गादीधारी शामिल हुए और अपनी वीरता एवं रणकौशल का प्रदर्शन किया।

ईस्वी 1532 में वीर अचलसिंह भोपाल के एक युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गए। उनके साथ उनकी रक्षा करते–करते कई नाथों ने भी वीरगति प्राप्त की। यह था नाथ जोगियों का अपने राजा, अपने संरक्षक के प्रति त्याग भाव। रणभूमि से उन्हें ढूढने में घायल अवस्था में भी नाथ सिद्ध ने हिम्मत नहीं हारी। अंत में उन्हें लाशों के अम्बार में से ढूँढ निकाला और उनके अंगरक्षकों को सूचना दी। बाद में प्राण त्याग दिए। बिलाड़ा राज्य का वीर माधौराय जब अचलदास खीची के शव को अपने घोड़े पर लादकर रामपुरा की ओर रवाना हुआ, तब शेष बचे नाथों ने कवच बनकर उनकी

सहायता की और रामपुरा सुरक्षित लेकर आए। मरते–मरते भी अचलदास ने अली को मार डाला। उसका सिर काट दिया। वह सिर भी माधौराय नाथों की सहायता से रामपुरा ले आया था।

जब उन्होंने देखा कि अली के सैनिक रामपुरा पर चढ़ाई करके उनका सिर लेने अवश्य आएँगे, तब दुर्गभान को हिम्मत बंधाकर सेना सजाकर रामपुरा की रक्षार्थ तत्पर दुर्गभान की सुरक्षा में राजपूतों से अधिक नाथ वीर तत्पर थे।

बाद में वह सिर माण्डव भेज दिया गया। नाथ सिद्ध ने दुर्गभान को जहाँ रणकौशल बनाया, वहीं शस्त्र संचालन में पारंगत करते हुए अच्छे राजा के संस्कार भी दिए थे। यही कारण था कि समग्र चन्द्रावत राजाओं में दुर्गभान का कार्यकाल सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। लोक कहावत है–

*रामपुरो द्रगभान को देखते भागे भूख।*
*घर–घर राणी पदमनी घर–घर चम्पा रुख।।*

दुर्गभान का रामपुरा इतना शांत और सुन्दर है कि उसे देखते ही मन तृप्त हो जाता है। घर–घर में पदमनी रानियों जैसी सुन्दर स्त्रियाँ है और घर–घर में चम्पा के वृक्ष लगे हैं। इसी संदर्भ में कालिदास के मेघदूत में दशपुर अंचल मालवा का वह वर्णन याद हो आता है, जिसमें वे कहते हैं–

*हे मेघ नामुतर्य वज्र परिचित भूतला विभ्रमाण।*
*पदमोत्क्षपादुपरि विलसत्कृष्णसार प्रमाणायम्।*
*कुंदेसे पानुगमधुर श्रीमुषात्म बिम्ब,*
*पात्री कुर्वन दशपुर मधुनेत्र कौतूहलानाम्।*

मालवा की स्त्रियां वसंत ऋतु जैसी सुहावनी और गजब की कामोत्तेजक होती हैं। वे अपने आँगन में प्रतिदिन मांडने मांडती है। ये बहुत नखराली किन्तु सत्वंती होती हैं। भ्रमर उनके तन पर सोलह श्रृँगार पाकर भ्रमित हो जाते हैं और रस पीने के लिये उनके आसपास गुनगुन गुंजार करते हुए मंडराने लगते हैं। (मेघ में वर्णित कालिदास वर्णन का सार संक्षेप)।

यह सब परिवर्तन नाथों ने किया था। वे अपने देश के प्रति सदा समर्पित रहे। रामपुरा राज की जहाँ–जहाँ भी जागीरें रहीं, वहाँ नाथों को ससम्मान बसाया गया था। उन्हें खेती लायक व रहने लायक जमीन दी गईं।

जब गोपालसिंह जी सन् 1689 ई. में रामपुरा गद्दी पर बैठे, तब तक भी रामपुरा राज में सुख शांति स्थापित थी। राज्य की कृषि उपज बहुत अच्छी थी और राज्य आर्थिक रूप से सम्पन्न था। गोपालसिंह को 'संत राजा' कहा जाता था। उनके संत पन के कारण लोक में उन्हें जनकराज कहा जाता था। वे नाथों की संगत में रहकर योग साधना करते थे। राज्य की व्यवस्था नाथ सिद्ध की सहायता से होती थी।

बाद में उनके पुत्र रतनसिंह ने जब विद्रोह कर दिया और औरंगजेब की शरण जाकर इस्लाम स्वीकार किर लिया, तब रामपुरा में कई देश के हितैषियों ने विद्रोह कर दिया। रतनसिंह ने अपना इस्लाम खान और रामपुरा का नाम इस्लामाबाद रख लिया। गोपालसिंह को सुरक्षित निकलने वाले नाथ योगी ही थें। वे उन्हें सुरक्षित शंखोद्धार ले आए और वहीं के मठ में सुरक्षित किया। इसका वर्णन मैंने शंखोद्धार प्रकरण में किया भी है।

रतनसिंह उर्फ इस्लाम खाँ ने रामपुरा मठ पर आक्रमण कर गोपालसिंह (अपने पिता) को खोजने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु नाथों ने उसे युद्ध में उलझाए रखा, तब तक गोपालसिंहजी शंखोद्धार पहुँचा दिए गए।

शंखोद्धार से निकालकर गोपालसिंह जी ने कुछ समय आसन दरियानाथ में भी शरण ली। जब गोपालसिंह के दूत महाराणा से शरण–सुरक्षा का समाचार लेकर आसन पर लौट आए, तब आसन के नाथों ने उन्हें सुरक्षित मेवाड़ पहुंचा दिया।

ऐसा था नाथ पंथ के नाथ जोगियों का राजा–देश और प्रजा के प्रति समर्पण भाव। नाथों ने अपने सिद्ध मंत्रों, जंत्रों व जड़ी–बूटियों से मनुष्यों व पशुओं का उपचार किया। गो सेवा में उन्होंने बहुत सतर्कता रखी। गो शालाएँ स्थापित की। उन्हें अच्छा पोषण दिया और राजाओं और जागीरदारों से चरनोई (चरागाहें) छुड़वाई (दान करवाई)। रामपुरा का समग्र अंचल जी भी नाथों के प्रति मान–सम्मान रखता है। गाँवों में उनके भरण–पोषण के लिये जमीनें तो परम्परा से चली आ रही हैं। वहीं गाँव के घर प्रत्येक परिवार से उन्हें भोजन सामग्री भी देते हैं।

नाथ पंथ के प्रति लोक की स्वीकृति की इससे बड़ी मिसाल और क्या हो सकती है?

## रामपुरा अंचल के अन्य आसन

रामपुरा अंचल नाथों का प्रभाव क्षेत्र माना जाता रहा है। मोया, चपलाना, छोटी

आंतरी, बड़ी आंतरी, लोटवास, दाँता आदि गांवों में नाथ पंथ की धूनियाँ पिछले कई वर्षों से जीवित और जीवंत हैं।

यहाँ के जागीरदारों ने यहाँ के आसन पर जागीरें दीं। उनको पर्याप्त सम्मान दिया। यहाँ तक कि गाँव के परिवारों को व्यवस्था दी कि वे उनके गाँवों में रहने वाले नाथ परिवारों के भरणपोषण की व्यवस्था करें। इसी परम्परा में गाँव के सर्वजाति परिवार अपने घरों से उन्हें नियमित आटा और रोटी की व्यवस्था दैनिक रूप से करते हैं। यह परम्परा आज भी निरन्तर है।

नाथ सिद्ध औषधियों के जानकार होते हैं, वहीं वे तंत्र–मंत्र के भी जानकार होते हैं। जिन–जिन गाँवों में नाथों की धूनियाँ स्थापित हैं। वहाँ कभी न तो अकाल पड़ा और न अतिवृष्टि हुई। न लूट हुई न डाका पड़ा। यह बात केवल कहने भर की नहीं है, अपितु बड़ी आयु के ग्रामीण बुजुर्ग इस बात की पुष्टि पूरी श्रद्धा से करते हैं।

नाथ पंथ के प्रति श्रद्धा आज भी कायम हैं। आज भी लोग भले ही मंदिर नहीं जायें, किन्तु नाथों की धूनियों पर मत्था टेकने अवश्य जाते हैं। इसमें जाति या सम्प्रदाय भेद भी नहीं है।

मैंने स्वयं अनेक नाथ आसनों का भ्रमण किया है। वहाँ के लोगों से पूछताछ की है। नाथों के प्रति उनकी श्रद्धा नाथ पंथ की लोक स्वीकृति का अटूट प्रमाण है। यदि कोई पशु बीमार हो जाए। किसी बच्चे या महिला को नजर या बुरी हवा लग जाए। सीधे नाथजी महाराज का स्मरण आता है। नाथ जी भी पूरे भाव से उनके कष्ट निवारण करते हैं।

आज नाथों ने भगवा वस्त्र पहनना लगभग छोड़ दिया है। पुराने बुजुर्ग तो परम्परा का निर्वाह करते चले आ रहे हैं। नई पीढ़ी आधुनिक वेश व्यवहार में ढलने लगी। शिक्षा का प्रसार होने लगा। कृषि के अलावा नौकरियाँ में जाने का सिलसिला चला है।

नाथों का यदि पूरे भारत का सर्वेक्षण करें, तब हम पाएँगे कि नाथ समाज के अनेक लोग बड़े–बड़े पदों पर स्थापित हैं। कॉलेज स्तर पर आचार्य–प्राचार्य हैं। स्कूली स्तर पर तो बहुत हैं। कई नाथ अच्छे लेखक, कवि–साहित्यकार भी हैं।

नाथपंथ की लोक स्वीकृति में इससे अन्तर नहीं पड़ने वाला। दोनों धाराएँ चलती रहेंगी। शिक्षा की भी और दीक्षा का भी। सम्पन्नता–विपन्नता भी बनी रहेगी। यह तो सर्व समाजों में है।

गोरखपुर का अस्तित्व बरकरार रहेगा। उनका अनुशासन कायम रहेगा। अक्षुण्य रहेगा।

नाथपंथ की लोक स्वीकृति तभी तक कायम रहेगी, जब तक गोरख का संदेश कायम रहेगा। पंथ उनके बताए मार्ग पर चलता रहेगा। अन्यथा एक दिन यह पंथ केवल इतिहास बन जाएगा।

## दलावदा का सिद्ध आसन

दलावदा गाँव जिला नीमच का छोटा सा गाँव है। यह गाँव नीमच से दक्षिण में लगभग 10 कि.मी. दूरी पर स्थित है।

यहाँ पर आसन दरियानाथ से भी पूर्व यह आसन स्थापित हुआ था। सिद्धनाथ ओंकारनाथजी ने यह आसन स्थापित किया था। वे बहुत बड़े सिद्ध थे। उन्हीं ने यहाँ आसन स्थापित किया था। यहाँ घना जंगल था। राजयोगी भरथरी इसी मार्ग से गुजरे थे। उन्हें यह स्थान पूर्व ऋषियों की तपस्या भूमि प्रतीत हुआ। उनके साथ जो शिष्य वर्ग था। वह वहीं रुक गया। भरथरी ने उनसे कहा मैं यहाँ से अकेला ही अपनी यात्रा प्रारंभ करुँगा। तुम लोग यहाँ रुको और प्रतीक्षा करो। यहाँ एक सिद्ध योगी आएँगे, वे यहाँ अपना आसन स्थापित करेंगे। स्वयं भरथरी ने भी इस वन में रहकर तीन माह तक समाधिस्थ रहकर तपस्या की। वे वहाँ से प्रस्थान कर गए। उनके शिष्य इस वन में रह गए। सभी सिद्धनाथ थे। उन्होंने वहाँ रहकर साधना की। छोटी–छोटी कुटिया बनाकर वे वहाँ रहने लगे। एक दिन वहाँ एक गाय आई। वह गाय अद्भुत थी। ऐसी सुन्दर गाय उन नाथों ने पहले नहीं देखी। गाय के साथ एक बछिया भी थी। वह गाय इतना दूध देती थी कि प्रातः व शाम उन सातों नाथों के खप्पर भर जाते। इस प्रकार उनका आहार उन्हें मिलने लगा। उन नाथों में मुखिया जो था, उसका नाम समर्थनाथ था। उसकी कुटिया सातों नाथों के मध्य थी। चारों ओर कुटिया। बीच में धूना स्थापित हुआ। रातभरा जलवा होता। खूब भजन होते। धीरे–धीरे वहाँ आसपास गाँवों के लोग आने लगे। नाथों के भोजन की व्यवस्था होने लगी।

जब बहुत वर्ष बीत गए, तब समर्थनाथ को सपने में राजयोगी ने परचा दिया। उन्होंने कहा– प्रातःकाल एक महान सिद्ध इस वन में आएँगे। आप उनका स्वागत करना। अभी तक तुम्हारा धूना कच्चा है। उनके आते ही वह पक्का होगा। तब यहाँ सच्चा आसन स्थापित होगा।

प्रातःकाल ओंकारनाथजी वहाँ पधारे। उनके पीछे–पीछे एक सिंह भी चल रहा

था। ओंकारनाथ ने वहाँ आकर उन सबको आशीर्वाद दिया। सिंह उनके आसन के निकट बैठ गया। इस प्रकार उस आसन की पक्की स्थापना हुई। यह आसन पूरे दशपुर अंचल का सबसे प्राचीन आसन माना जाता है। सिंह और गाय साथ–साथ एक ही वन में रहने लगे। कुछ लोग कहते हैं वह सिंह गोरख का स्वरूप था और गाय राजयोगी भरथरी की।

इस आसन पर सात सिद्ध योगी फक्कड़ (ब्रह्मचारी) हुए। वर्तमान गाँव दलावदा के नाथ मांगूनाथ ने बताया। फक्कड़ों के पश्चात् यहाँ गृहस्थ नाथ आसन पर रहे। भैरवनाथ मोतीनाथ–उदयनाथ और वर्तमान में मांगूनाथ। मांगूनाथ ने कहा– ओंकारनाथ जी के पश्चात् जितने गादीधारी नाथ हुए, उनके नाम याद नहीं हैं। बड़े नाथों ने बताया था– सात नाथ हुए। लेकिन कई सिद्धनाथ इस आसन पर हुए। यहीं पर एक सिद्धनाथ शंकरनाथ हुए, वे रावल गोत्र में थे। माने हुए सिद्ध थे। उन्हें कई सिद्धियाँ प्राप्त थीं। उधर रामपुरा अंचल में लोटवास के नाथ और रामपुरा के नाथ बहुत सिद्ध थे। इसी प्रकार आंत्री (छोटी–बड़ी) संजीत, चपलाना में माने हुए सिद्ध थे। रामपुरा में जहाँ काल भैरव का स्थान है। वहीं बहुत बड़ा नाथों का आसन था। वहाँ के नाथ शस्त्र विद्या में बहुत कुशल थे। रामपुरा से नाथों ने राजनैतिक कारणों से रावरतन से रूष्ट होकर पलायन कर दिया। सब बिखर गए। उन्हीं में से एक परिवार सावन, पटलावद और दलावदा में भी आया था।

दलावदा में अब कोई धूनी नहीं है। मांगूनाथजी गृहस्थ नाथ हैं। गाँव में उनका मान है। गांव उनकी व्यवस्था जुटाता हैं। मांगूनाथ से मेरी अच्छी मुलाकात रही है। मेरे नाथ शोभित वेश के कारण वे मुझे अंत तक पूरननाथ ही पुकारते रहे। अपनापन जताते रहे। मेरी शोध की यह शैली भी है। जिस लोक गायक से भेंट वार्ता करना है, उससे अपनत्व स्थापित करना पड़ता है। गाँव के वृद्ध लोग आसन के गौरवशाली अतीत का स्मरण करते हैं और अनेक चमत्कारी घटनाओं का वर्णन करते हैं।

मांगूनाथजी ने बताया कि मैंने कभी भी गाँव में न तो गरड़ (ओलावृष्टि) पड़ने दी न फसलों में या पशुओं में बीमारी आने दी। मैं जन्माष्टमी पर अपने गुरुजी द्वारा दिए मंत्रों को सिद्ध करता हूँ। जिस गाँव का अन्नजल ग्रहण करते हैं, उसकी रक्षा करना नाथों का कर्तव्य ही नहीं बल्कि धर्म है। यही ज्ञान सद्‌गुरु गोरखनाथजी ने व आदपुरुषों ने दिया है।

आसनों, धूणियों, मठों–मढ़ियों में नाथों ने सिद्धि प्राप्त कर उस अंचल की प्रत्येक तरह से रक्षा–सुरक्षा की।

वे आसन नाथ पंथ की यश पताकाएँ हैं। विरुदाकलियाँ है। इन्हीं के कारण नाथ पंथ लोकमान्य हुआ। वहाँ के नाथों के पास वे सिद्धियाँ भी नहीं रही, किन्तु लोक आस्था आज भी जीवित है। आसन (दलावदा) ओंकारनाथ के निकट जमुनियां कलां में भी एक नाथ आसन स्थापित था। नाथों की समाधियाँ भी वहाँ है, यह आसन भी अब पूर्णतः समाप्त है। ये नाथ गायरी समाज के हैं और किसानी करते हैं।

## गोरखनाथ का फलित आशीर्वाद गोगापीर

लोक आस्था का एक और प्रसंग याद आ रहा है। जितने भी लोक देवता हुए है, उनका सम्बन्ध कहीं न कहीं नाथ पंथ के सिद्धों से रहा है। ये लोक देवता स्वयं चमत्कारी पुरुष थे। कोई राम का अवतार तो कोई कृष्ण का अवतार। कोई लक्ष्मण का अवतार तो कोई वासक (शेष) का अवतार। इन लोक देवताओं में रामदेव, देवनारायण, पाबूजी, हरबूजी, केसरिया कुँवर, गोगाजी आदि लोक में आज भी मान्य हैं। इन सबके देवस्थान मंदिर बने हैं। इनका भाव आता है। अपने भोपा के शरीर में भावरूप से प्रवेशकर ये लोक में अनेक चमत्कार करते हैं। दुःख–रोग–शोक मिटाते हैं।

एक लोककथा के अनुसार गोगापीर का जन्म गोरखनाथ के आशीर्वाद से हुआ। कथा कहती है– दो बहनें थी, एक का नाम था बाछल दूसरी का नाम था काछल। बाछल गुरु गोरखनाथ की भक्त थी। उनकी चाकरी में सदा तत्पर रहती थी। उसे पुत्र प्राप्ति की कामना थी। गुरु गोरखनाथ उसकी सेवा से प्रसन्न हुए और कहा– बाछल तुमने मेरी बहुत सेवा की है। वरदान मांगो। बाछल ने कहा– महाराज! मुझे पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद दे दो।

गोरख ने ध्यान लगाया। उन्हें आभास हुआ कि बाछल के भाग्य में तो संतान योग है ही नहीं। वे धर्म संकट में पड़ गए। वरदान तो देना पड़ेगा। वरदान दें और वह फलदायी न हो तो मेरा मान भंग होगा। यश समाप्त होगा। मैं एक छली और ढोंगी साधु माना जाऊँगा। तब उन्होंने तपबल से आदिनाथ महादेव से याचना की। महादेव ने कहा– ब्रह्मा से याचना करो। गोरख ने ब्रह्मा से याचना की। ब्रह्माजी ने गोरख को आश्वस्त कर दिया। उन्होंने कहा– गोरख तुम अपने तप का अंश भाग इसे प्रदान कर दो। इसका मनोरथ पूरा हो जाएगा। गोरखनाथ ने बाछल से कहा– बाछल कल सबेरे आना, जैसे ही मेरी समाधि खुले तुम मेरे सामने दिख जाना। मेरे आशीर्वाद से तुम्हें एक पुत्र की प्राप्ति होगी। बाछल ने यह बात अपनी बहन काछल को बताई। काछल की भी संतान नहीं थी। दोनों जुड़वा होने के कारण हमशक्ल थीं। काछल ने चतुराई की और अगले दिन वह बाछल से पहले गोरखनाथजी की धूनी

पर जा पहुँची। जैसे ही गोरखनाथ की समाधि खुली। उन्होंने उसे पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद दे दिया। काछल तत्काल वहाँ से घर चल दी।

थोड़ी देर में वहाँ बाछल आई। उसने गोरखनाथ से आशीर्वाद माँगा, तब गोरखनाथ ने कहा– 'बाछल! मैं तुम्हें पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद दे चुका हूँ। दुबारा नहीं दे सकता। तुम अभी कुछ देर पहले ही आशीर्वाद प्राप्त कर चुकी हो। बाछल सारी बात समझ गई। उसे काछल की चालाकी का पता चल गया। उसने गोरखनाथ से सारी बात बतला दी।

गोरखनाथजी को उस पर दया आ गई। उन्होंने अपने तप बल से वासक का एक बच्चा उठाकर बाछल को दे दिया और कहा– यह तुम्हारे घर पहुँचते ही मनुष्य रूप धारण कर लेगा। यही तुम्हारा पुत्र होगा।

बाछल जैसे ही वासकपुत्र को लेकर वहाँ से चली, तभी वहाँ वासक रानी पद्मा पहुँच गई। बाछल ने उसके बच्चे को गूगल बनाकर खेजड़ी (शमी) के तन पर चिपका दिया। पद्मा उसकी चतुराई जान गई, किन्तु अपना पुत्र नहीं ढूँढ पाई। उसने खेजड़ी से कहा– मेरा पुत्र तुम्हारी अमानत है। उसको सम्हाल कर रखना।

पद्मा के जाने के पश्चात् बाछल जब खेजड़ी वृक्ष से गूगल उठाने लगी, तब खेजड़ी ने उसे मना कर दिया और अपनी शाखाओं से गूगल को ढँक दिया।

बाछल ने गोरखनाथ का ध्यान किया। गोरखनाथ प्रकट हुए। उन्होंने खेजड़ी से कहा– 'इसको मैंने नागपुत्र प्रदान किया है, तुम इसे इसका पुत्र ले जाने दो। तब खेजड़ी ने बाछल को गूगल ले जाने दिया। घर जाकर नागपुत्र मनुष्य बालक बन गया। वही बाद में गोगापीर कहलाया।

गूगल से उत्पन्न होने तथा गोरखनाथ के आशीर्वाद द्वारा प्राप्त होने के कारण उसका नाम 'गोगा' रखा गया। उसने खूब तपस्या की और सिद्ध हो गया। पूरे मालवा, गुजरात, राजस्थान, पंजाब और सिंध में गोगाजी नागदेवता के रूप में पूज्य हैं।

नाथ पंथ और नाथ गुरु गोरखनाथ के ऐसे अनेक चमत्कारिक प्रसंग लोक में चर्चित हैं। ये सब प्रसंग नाथ पंथ के प्रति आस्था एवं विश्वास का बोध करवाते हैं। ऐसे ही लोक देवता रामदेवजी का भी प्रसंग लोक ज्ञात है। उस युग में भैरवनाथ नाम के तांत्रिक का बहुत बड़ा आतंक था। रामदेवजी ने उसके मायाजाल को तो समाप्त किया ही। बाद में युद्ध करके उसका वध भी कर दिया। इससे रामदेवजी ने तनिक भी संकोच नहीं किया। जबकि, रामदेवजी गुरु गोरखनाथ और नाथ पंथ के सदा प्रशंसक रहे।

महाराजा भोज की लोक कथाओं में स्वयं महाराजा भोज एक ढोंगी नाथ पंथी साधु जिसने अंचल की महिलाओं, कन्याओं के अपहरण का जाल बिछा रखा था। उनके चेले छलपूर्वक उन्हें वन में नाथ के डेरे पर ले जाते थे। वहाँ मांस, मत्स, मदिरा के साथ–साथ अंचल की स्त्रियों का भोग तथा तांत्रिक सिद्धियों के लिए बलि चढ़ाते थे। महाराजा भोज ने उस ढोंगी साधु (नाथ) व चेलों का वध कर अंचल को उसके आतंक से मुक्त करवाया।

ऐसे कई प्रसंग नाथ पंथ के पक्ष में तथा विपक्ष में लोक जीवन में प्रचलित हैं। जितने भी प्रसंग नाथ पंथ के विरुद्ध आचरण के मिलते हैं वे सब आचरण भ्रष्ट एवं पंथ भ्रष्ट नाथ सिद्धों के होते हैं। उन्हीं के कारण नाथ पंथ को अपयश मिला और लोक स्वीकृति में बाधा आई।

गोगापीर का मैंने ऊपर वर्णन किया है। उनके जन्म के संबंध में एक गाथा के अंश यहाँ संग्रहीत हैं। यह गाथांश यह संदेश तो देता ही है कि गोगापीर जिनका समय 17–18 वीं शताब्दी रहा। उनके काल में भी गोरखनाथ का संदर्भ हमें मिल जाता है। यह गोरख के प्रति एवं नाथ पंथ के प्रति अवतारी आस्था है। कभी–कभी कोई सिद्धनाथ भी गोरख पद प्राप्त कर लेता है।

**गोगापीर की गाथा**

*बाछल ने तपसा तपी, एक पूत के काज।*
*गोरख ने परगट कह्यो, तप कर्‌यो किण राज।।1।।*
*मन छायो वर मांग लो, इच्छा पूरण होय।*
*तपस को फल देवसाँ, अवसाँ बाछल तोय।।2।।*
*बाछल वर माँगो अवस, हिरदै धरताँ धीर।*
*यो गोरख रो कोल हे, माँगू हगरी भीर।।3।।*
*हात जोड़ बाछल कह्यो, हे नाथाँ रा नाथ।*
*मन री पूरो कामना, माथे धर दो हाथ।।4।।*
*एक पूत बगसो मने, करो सपूती मोय।*
*ऐसा वर दो नाथ जी, हिरदो सीतल होय।।5।।*
*बाछल थारे भाग में, विधिनहिं लिख्यो पूत।*
*विधना रो लिख्यो थको, कोई सके न कूत।।6।।*
*तप तपयो भारी थने, देस्याँ आसिरवाद।*
*काल परोड़े आवजे, खुल्याँ समाधी बाद।।7।।*

*बाछल री जुड़वा बहन, सुणी जाण ली वात।*
*पेल परोड़े आ पुगी, मली पूत री दात।।8।।*
*बाछल  आई धीरती, आरत करी पुकार।*
*आसीसो हे सद्‌गुरु, खोलो सरग दुआर।।9।।*
*जाय निपूती नरग में, तानो भारे लोग।*
*सुगन सपूती वेवताँ, मिट जासी मव रोग।।10।।*
*बाछल तू तो ले चुकी, कद को ई आसीर्वाद।*
*फेर दुबारा क्युँ करो, लालच री फरयाद।।11।।*
*बाछल फोरन जाणगी, काछल कर गी चोट।*
*ले आसीसाँ जा पुगी, अपणे मेलहाँ ओट।।12।।*
*झर–झर आँसू ढरि गया, करी बेहना चोट।*
*सद्‌गुरु गोरख कईं करे, पड़ी करम में खोट।।13।।*
*सुन्न–मुन्न बाछल उबी, आँसूड़ा ढरकाय।*
*मन रो दुखड़ो नाथ ती,सबदाँ केह नी पाय।।14।।*
*सद्‌गुरु गोरखनाथ ने, तुरत जाण ली वात।*
*जुड़वा बहनी करि गई, बाछल ऊपर घात।।15।।*
*आँख मूँद ने नाथजी, गेहरो ध्यान लगाय।*
*देख्यो वासग मेहली ती, पूत सरगता जाय।।16।।*
*एक पूत सद रेंगतो, मेहल बार आय।*
*सद्‌गुरु गोरखनाथ ने, तुरताँ लियो उठाय।।17।।*
*ले बाछल यो बालको, हे सग रो पूत।*
*थारोई जायो जाणजे, वेसी घणो सपूत।।18।।*
*धोग लगा बाछल चली, लियाँ पूत परसाद।*
*वासग राणी आ पुगी, करसी घणो विवाद।।19।।*
*बाछल ने झट बालको, कर दियो गूगल गोल।*
*बिरछ खेजड़ी थेपयो, करया नमता बोल।।20।।*
*बेहन खेजड़ी राखजे, रगसा म्हारे पूत।*
*गोरख रोप रसाद हे, जगती रो अवधूत।।21।।*
*पाछे–पाछे पदमजा, आ पउँच विस ठाँव।*
*वासग जायो पूत हे, बैठयो थारी छाँव।।22।।*
*वासग राणी यूँ कह्यो, अरे खेजड़ी सूण।*
*म्हारो बालक राखजे, नी कर देसूँ धूण।।23।।*

*यों कहताँ पाछाँ फरी, पदमा वासग नार।*
*गोरख झट परगट विया, करो मती कोई रार।।24।।*
*गोरख ने हमजा कह्यो, धरो खेजड़ी धीर।*
*थारी रगसा में रह्यो, वासग गोगा पीर।।25।।*
*थारो जग में रेहवसी, जुगाँ–जुगाँ सनमान।*
*मांड़ा–सादी में सदा, रेहसी थारो मान।।26।।*
*थारे पूज्याँ रे बना, तोरण नी वंदाय।*
*समी–खेजड़ी लोक में, देवत ज्युँ पूजाय।।27।।*
*थानक–थानक होवसी, पूजा थारी जाण।*
*पूत सोंप दे बाछली, गोरख रे फरमाण।।28।।*
*खेजड़ली हरसित वई, सुण गोरख रा बोल।*
*हे नाथाँ रा नाथजी, साँच राखजो कोल।।29।।*
*बाछल ने झट तोक्यो, गूगल पिंड धराय।*
*सीस नमायो खेजड़ी, सद्‌गुरु धोक लगाय।।30।।*
*ममता रे आँचल तले, बालक लियो हँपाय।*
*थानाँ सरसो दूधड़ो, हीव गयो हरसाय।।31।।*
*जीव वियो समचेतन्यो, प्राणा भर्‌यो उछाह।*
*तन मन दोई सरसस्या, मिटयो जीव रो दाह।।32।।*
*धन्य–धन्य गोरख गुरु, धन्न–धन्न नर नाह।*
*रोग सोग सब मेटया, पुरी रिदै री चाह।।33।।*
*पूत दियो एसो दियो, वासग रो अवतार।*
*धन्न–धन्न गोरख गुरु, सिवजी रा औतार।।34।।*
*हिरदा री हगरी मिटी, सम्पत पावण री चाह।*
*सद्‌गुरु रे चरणा मली, निरभी कड़ी पनाह।।35।।*
*जो छायो सो मिल गयो, सात जनम रो सूख।*
*मुरझायो सरसत वियो, म्हारा तन रो रूख।।36।।*
*जतरे जग में नाथ हे, हे नाथाँ रा नाथ।*
*दीन–दुखी पे रेहवसी, मेहर पुरयो हाथ।।37।।*
*नाथाँ ने मन नाथ्यो, जद जा वाज्या नाथ।*
*आदिनाथ किरपा करी, औतरया गोरखनाथ।।38।।*
*जतरे सूरज चन्द्रमो, वतरे गोरखनाथ।*

*जे ईसर जगनाथ हें, गोरख गोरखनाथ।।39।।*
*दोई सिद्ध संसार में, अमर कथ्या जग जान।*
*एक आप गोरख गुरु, दूजा हे हणुमान।।40।।*
*गो री रगसा कारणे, गोरख रो औतार।*
*गोगाजी गोरख विया, तपसा तणी अपार।।41।।*
*गोगाजी री सगत रो, कोई न पावे पार।*
*वासग गोरखनाथ री, सगती मली अपार।।42।।*
*जठे–जठे बी नाथ हे, वठे–वठे सुख चैन।*
*वाचे–काछे निरमला, बोले धिरता बैन।।43।।*
*गो केवूँ पिरथी कवूँ, दोनों ई एक सरुप।*
*गोरख सतगुरु जाणजो, जग धरती रो भूप।।44।।*
*गोरख–गूगल जोड़ता, गोगा नाम धराय।*
*पाप–साप रो विस सबै, गोगाजी पी जाय।।45।।*
*मर्यादा री नाथ में, बंध्या रेहवे नाथ।*
*पग धोके पूजो करे, जगत नमावे माथ।।46।।*
*जय गोरख गोगा सती, पीराँ का भी पीर।*
*रोग–सोग मिटावजो, दुखियाँ दीजो धीर।।47।।*
*गोगा थे हो परमसिद्ध, सिद्धां रो सिरमोर।*
*थांकी तांती नाखतां, शमन होवसी विष जोर।।48।।*

**भावार्थ**

'वासक अवतार गोगा पीर री गाथा' का यह अंश भाग प्रारम्भ प्रकरण हैं। गाथा के प्रारम्भ में देव वंदना की गई है। सरस्वती, गणेश, नागदेवता, वासगराज, शिव–आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ का स्मरण किये जाने के पश्चात् गाथा प्रारम्भ होती है।

बाछल और काछल दो जुड़वा बहनें थी। एक जैसी शक्ल, एक जैसी वेशभूषा एक ही राजा की रानियाँ। दोनों संतानहीन। बाछल ने नाथपंथ के संस्थापक गोरखनाथ की तपस्या की। संतान प्राप्ति उसका उद्देश्य था। बाछल की तपस्या से गोरख प्रसन्न हो गए।

इतने सारे देवताओं, त्रिदेवों, देवियों की तपस्या नहीं करते हुए संतान प्राप्ति हेतु सद्गुरु गोरखनाथ की तपस्या करना गोरखनाथ और उनके पंथ के प्रति लोक आस्था का प्रमाण है।

बाछल की तपस्या से प्रसन्न होकर जब गोरखनाथ प्रगट हुए, तब उन्होंने बाछल से कहा– 'बाछल तुम अपना मनवांछित वर मांग लो। मैं तुम्हारी तपस्या का फल प्रदान करुँगा। हे बाछल! तुम ह्रदय में धैर्यधारण कर निश्चिंत होकर वर मांगो। मैं तुम्हारी सभी मुसीबतें दूर करुँगा। तुम्हें चाहा गया वरदान दूँगा। वह गोरख का (मेरा) वचन है।

गोरख द्वारा आश्वस्त कर देने के पश्चात् बाछल ने कहा– हे नाथों के नाथ! सद्गुरु गोरखनाथजी! आप मेरी मनोकामना पूरी करो। मेरे सिर पर अपना वरदहस्त रख दो।

हे सद्गुरु! मुझे एक पुत्र का वरदान देकर सपूती कर दो। ऐसा वरदान देकर मेरा ह्रदय शीतल कर दो। बाछल की बात सुनकर गोरख ने कहा– बाछल! विधाता ने तुम्हारे भाग्य में पुत्र लिखा ही नहीं है। बधाता का लिखा कोई भी नहीं अनुमान सकता। न बदल सकता है।

तूने भारी तपस्या की है। मैं तुम्हें तुम्हारा मनोवांछित वरदान अवश्य दूँगा। तू कल प्रभात में आना। जैसे ही मेरी समाधि खुले, तुम मेरे समक्ष दिखना। मैं तुम्हें तुम्हारा मनोवांछित वरदान अवश्य दूँगा।

गोरख और बाछल की यह चर्चा बाछल की जुड़वां बहन काछल सुन रही थी। वह भी निपूती थी। वह प्रभात से कुछ पहले बड़े सवेरे गोरखनाथजी की समाधि पर जा पहुँची और उनसे आशीर्वाद लेकर शीघ्र ही अपने महल में पहुँच गई।

बाछल के जाने के थोड़े समय पश्चात् बाछल धैर्य सहित गोरखजी के धूने पर पहुँची और हाथ जोड़कर निवेदन किया। हे नाथजी महाराज! मुझे आशीर्वाद देकर धन्य करें व मेरे लिए स्वर्ग के द्वार खोल दें। निपूती सदा नर्क में जाती है, लोक मुझे सदा ताने मारता है। अच्छे शकुन वाली सपूती होते ही तानों का तथा भव का रोग (भय) मिट जायेगा।

बाछल की बात सुनकर गोरखनाथ ने कहा– अरे बाछल! तू तो अपना मनोवांछित आशीर्वाद कभी के ले चुकी हो। फिर दुबारा लालच में पड़कर प्रार्थना क्यों कर रही हो?

गुरु गोरखनाथजी की बात सुनकर बाछल सारी बात समझ गई। उसे भान हो गया कि मुझसे पहले ही वहाँ आकर काछल ने आशीर्वाद प्राप्त कर लिया है। वह आशीर्वाद प्राप्त कर चुपचाप अपने महल में जा छुपी है।

बहन द्वारा ऐसा छल हुआ जानकर उसकी आँखों से आँसू झरने लगे। उसने सोचा। सद्गुरु गोरख क्या करें। मेरे कर्म में ही खोट है। मेरा भाग्य ही खराब है।

बेचारी बाछल सुन्न–मुन्न होकर चुपचाप आँसू बहाती खड़ी रही। नाथजी से वह अपने मन का दुःख नहीं कह पा रही थी।

सद्गुरु गोरखनाथजी ने तत्काल बाछल के मन की पीड़ा को समझ लिया। वे जान गए कि इसकी जुड़वा बहन घात कर गई है।

सद्गुरु गोरखनाथजी ने ध्यान लगाकर जानना चाहा कि बाछल की मनोकामना कैसे पूरी हो सकती है?

गोरखनाथजी ने ध्यान में देखा कि वासकराज के महल से उनके पुत्र इधर–उधर सरक रहे हैं। तभी एक नन्हा पुत्र महल से बाहर निकल आया। गोरखजी ने उसे उठा लिया। आँखें खोली और वह नन्हा वासक पुत्र उन्होंने बाछल को दे दिया। हे बाछल! तू इसे ले जा। इसे तू अपना जाया पुत्र ही मानना। यह बहुत बड़ा सपूत बनेगा।

बाछल ने गोरख को धोक लगाई, शीश झुकाकर वंदन किया और पुत्र का प्रसाद लेकर वहाँ से चल पड़ी। तभी वहाँ वासक की रानी पद्मा आ पहुँची। वह विवाद करने लगी। बाछल ने वासक पुत्र को गूगल का गोला बनाकर खेजड़ी! (शमी) वृक्ष पर चिपका दिया। बाछल ने खेजड़ी से विनम्रतापूर्वक कहा– हे बहन खेजड़ी मेरे पुत्र की रक्षा करना। यह जगत के अवधूत गोरखनाथजी का प्रसाद है। तभी वहाँ पद्मा भी आ पहुँची। उसने खेजड़ी को धमकाकर कहा– तुम्हारी छाया से वासकराज का पुत्र और मेरा जाया मुझे दिख नहीं रहा। वह तुम्हारे घर में छिपा है। तू उसकी रक्षा करना, वर्ना मैं तुझे जलाकर राख कर दूँगी।

ऐसा कहकर वासकजी की पत्नी रानी पद्मा वापिस लौट गई। तभी वहाँ गोरखनाथजी प्रकट हुए और कहा– यहाँ कोई भी राड़ (झगड़ा) मत करो। गोरख ने खेजड़ी को समझाया कि अरे खेजड़ी! तू धैर्य रख। तेरी रक्षा में गोगा पीर निवास कर रहा है। वह स्वयं वासक का अवतार है। तूने ऐसे अवतारी पुरुष की रक्षा की है और तेरी छाया में ऐसे अवतारी पुरुष ने निवास किया जो लोक कल्याण के लिए जन्ता है। इस कारण तू धन्य हो गई। युगयुगांतर तक तेरा लोक में सम्मान होता रहेगा।

विवाह के समय जब तक तेरी पूजा नहीं होगी, दुल्हा (वर) तोरण नहीं वंदा सकेगा। हे खेजड़ी (शमी)! तुझे देव वृक्ष की तरह लोक में पूजा जायेगा।

भविष्य में जहाँ—जहाँ भी गोगापीर के थानक बनेंगे, वहाँ—वहाँ तुझे भी स्थापित किया जायेगा। तेरी छाया सदा गोगा पर रहेगी। गोगापीर के साथ—साथ तुम्हारी भी पूजा होगी।

गोरख के ऐसे सुखद बोल सुनकर खेजड़ी बहुत हर्षित हो गई। गोरख ने कहा— खेजड़ी! तुम बाछली को उसका पुत्र सौंप दो। खेजड़ी ने सद्गुरु गोरख का आदेश जानकर बाछली की गोदी में उसका पुत्र सौंप दिया। खेजड़ी ने गोरखनाथजी से कहा— 'हे नाथजी! आप अपने वचन का पालन करना।

बाछली ने तुरंत गूगल को उठाया और खेजड़ी को शीश नमकर तथा गोरखनाथजी को धोक लगाकर उसने ममता के आँचल में बालूड़े वासक पुत्र को छुपा लिया। आँचल में लेते ही बाछल के स्तनों में दूध सरस हो गया। हृदय हर्षित हो गया। जीव चैतन्य हो उठा, प्राणों में उत्साह भर गया। तन और मन दोनों सरस हो उठे। जीव में जो दाह था। वह शीतल हो गया।

उसने सद्गुरु का गुणगान करते हुए कहा— हे गोरख सद्गुरु! आप धन्य हैं। हे नरश्रेष्ठ! आप धन्य हैं। आपने मेरे समस्त रोग—शोक मिटा दिए हैं। मेरे हृदय की कामना पूर्ण कर दी। आपने पुत्र दिया वह भी ऐसा जो वासक का अवतार है। हे शिवजी के अवतार सद्गुरु गोरखनाथ जी! आप धन्य हैं। हृदय में अब कुछ भी पाने की इच्छा शेष नहीं रह गई। सभी इच्छाएँ पूरी हो गई हैं। मुझे आपके चरणों में निर्भय शरण प्राप्त हुई है। मैं धन्य हो गई हूँ।

मेरे तन का वृक्ष जो मुरझा गया था, वह फिर से हरा—भरा हो गया। मुझे तो सात जन्मों का सुख एक साथ एक ही जन्म में मिल गया है।

जब तक संसार में नाथ हैं। नाथों के नाथ आप बिराजते हैं, तब तक दीन—दुखियों के सिर पर आपकी मेहर (कृपा) का वरदहस्त बना रहेगा।

नाथों ने मन को नाथ लिया है (मन को वश में कर लिया है), तब कहीं जाकर वे नाथ कहलाए। आदिनाथ भगवान ने कृपा की, तब गोरखनाथजी का अवतार हुआ।

जब तक सूरज—चाँद रहेंगे, तब तक गोरखनाथ भी रहेंगे। यदि ईश्वर जगन्नाथ अर्थात् जगत का नाथ कहलाता है, तो गोरख, गो + रख नाथ है। गऊ और पृथ्वी का रक्षक है। गोरख—गोरख ही है। उसका कोई पर्याय नहीं है। संसार में केवल दो सिद्ध ही ऐसे हैं जो अमर हैं। एक गोरखनाथ तथा दूसरे हनुमानजी।

गोरख का अवतार गाय माता की रक्षा करने के कारण हुआ है। यही कारण है कि मैंने इन वर्षों में जितने भी प्राचीन नाथ स्थलों का भ्रमण किया, वहाँ एक समय समृद्ध गौशालाएँ भी थी। यहाँ तक कि उज्जैन की भरथरी गुफा स्थल पर भी जो मठ है, वहाँ भी गौशाला है।

गोरख के आशीर्वाद से ही गोगापीर का अवतार हुआ। उनमें गोरख के समस्त गुण मौजूद थे। वस्तुतः वे भी गोरख ही थे। उन्होंने अपनी तपस्या के बल पर यह पद प्राप्त किया था।

गोगाजी की शक्ति का पार कोई नहीं पा सकता। उनमें वासक राज और गोरखनाथ की शक्तियाँ समाहित हैं।

जहाँ–जहाँ भी नाथ हैं। वहाँ–वहाँ सुख–शांति का भी वास है। नाथ सुख और शांति का पर्याय है। सच्चे नाथ मन–वचन, कर्म–आचरण और वाणी से निर्मल रहता है। उसकी वाणी में धैर्य होता है।

गाथाकार कहता है– मैं 'गो' को गऊ कहूँ या पृथ्वी कहूँ। दोनों एक स्वरूप हैं। गऊ में समस्त देवों– देवियों समस्त तीर्थों आदि का वास माना गया है। गो की रक्षा या सेवा अर्थात् जगती माता की सेवा। गोरख गुरु जगती के राजा हैं।

गोरख और गूगल नाम की युति से गोगा नाम निर्धारित हुआ। धरती पर समस्त पापों और श्रापों का विष गोगाजी पी जाते हैं।

सभी नाथ मर्यादा की नाथ में बंधे रहते हैं। इसी कारण सारा संसार उनके पांव पूजता हैं और वंदन करता है। हे गोगापति! आपकी जय हो। आप पीरों के भी पीर हैं। और संसार के रोग–शोक मिटाना, दीन–दुखियों को धैर्य बंधाना, यही मेरी आर्त प्रार्थना है। आप परम–सिद्ध हैं। सिद्धों के भी सिद्ध हैं। आप वासक अवतार हैं। आप केलम दे के भर्तार हैं। आप जगती के और सत्य के संधार हैं और आप गोरख हैं। गोरख के अवतार हैं। हे गोगा धणी! आप सिद्धों के सिद्ध परमसिद्ध हो, बल्कि सिद्धों के सिरमौर हो। आपके नाम की ताँत यदि दंश की जगह–हाथ पांव या गले में डाली जाय (ताँत–डोरा) तब सर्पविष का जोर समाप्त हो जाता है।

गाथा का यदि हम ठीक से कूट विश्लेषण करें तो हम पाएँगे कि जहाँ इसमें गोगाजी के जन्म का वर्णन है, वहीं गोरखनाथ की गौरव गरिमा का वर्णन भी किया गया है।

गोरख को युग का सर्वमान्य एवं सर्वसिद्ध युग पुरुष सिद्ध कर गाथाकार उन्हें लोक देवता तक ले जाता है। वे गोरख के आशीर्वाद और वासक देव के अंश का सम्यक संगठन हैं। वे धन्य हैं। लोक देवता हैं। शमी की छाया में सदा संसार के दुःखों का शमन करते हैं। गाथाकार ने गोगा के चरित्र वर्णन के साथ–साथ गोरखनाथ और गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ पंथ की लोक मान्यता, लोक आस्था और लोक स्वीकृति का भी बखान किया है।

नाथ पंथ की मर्यादा, लोक कल्याण की भावना और लोक विश्वास–आस्था का उचित कारण बताकर नाथ पंथ की लोक स्वीकृति को प्रमाणित किया है।

लोक में आस्था का सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि बाछल सभी देवताओं और देवियों का विश्वास नहीं करते हुए योगीराज सद्‌गुरु गोरखनाथ की तपस्या करती है और उन्हें उस युग का सर्वाधिक सक्षम एवं सिद्ध पुरुष मानती हैं। जो काम त्रिदेव नहीं कर पाते, वह काम गोरख कर दिखाते हैं। वे बाछल को सपूती करते हैं। इससे नाथ पंथ के प्रति लोक आस्था और विश्वास दृढ़ होता है। यही गाथाकार का अभीष्ट भी लगता है।

## सिद्ध क्षेत्र ताखाजी

भानपुरा अंचल पुरातात्विक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यहाँ अवस्थित हिंगलाजगढ़ की हिंगलाज माता आदिवासी समाज और नाथों की आराध्य देवी आज भी नाथों के द्वारा ही पूज्य हैं। नाथ लोग समय–समय पर वहाँ जाकर रातीजगा देते हैं, जिसे जवा कहा जाता है। दाल–बाटी की प्रसादी बनती है।

मान्यता तो यह भी है कि गढ़ के निर्माण से पूर्व चन्द्रावतों ने अंचल के लगभग 500 नाथों को यहाँ एकत्र किया था और उन्हीं के मठाधीशों (आसन गादीधारियों) द्वारा भूमिपूजन करवाया था। उन्हीं दिनों गढ़ की तलहटी में एक सिद्धनाथ नाभिनाथ का आसन था। वे तक्षक धाम (ताखाजी) में रहकर तपस्या करते थे। दिन में वहाँ कुण्ड से प्रवाहित ताखती नदी में पानी पीने वन में अनेक पशु आते थे। वनराज भी वहाँ आता था। उसी नदी में चरवाहों की गाएँ व बकरियाँ भी पानी पीती थईं। कभी किसी पशु को वनराज ने हानि नहीं पहुँचाई। वनराज रात्रि विश्राम तक्षक धाम पर ही करता था। वह नाभिनाथ का सेनापति था। स्वयं तक्षक वहाँ अपने धाम पर पधारते थे और नाथ जी के आसन पर जाकर दूध पीते थे।

यह रमणीक स्थान धनवंत्री धाम भी कहा जाता रहा है। महाभारत काल में ऋषि श्राप के कारण शापित महाराज परीक्षित की तक्षक दंश से रक्षा करने हेतु स्वयं धनवंतरी अपने शिष्यों द्वारा यहाँ पधारे थे। यहाँ रात्रि विश्राम किया। संयोग वश तक्षक ने भी यहीं विश्राम किया। जब तक्षक को पता चला कि धनवंतरी महाराज परीक्षित का मेरे दंश के पश्चात् उपचार करने के लिए जा रहे हैं, तब उसने छल द्वारा धनवंतरी की पीठ पर डँस लिया, जिस कारण धनवंतरी की मृत्यु हो गई। धनवंतरी की दृष्टि में संजीवनी शामिल थी।

मान्यता यह है कि धनवंतरी की यहीं समाधि बनाई गई है। वे यहाँ प्रत्येक पूर्णिमा की रात्रि में आते हैं। लोक विश्वास है कि नाभिनाथ उन्हीं धनवंतरी के अवतार थे। लोक विश्वास यह भी है कि जब हनुमानजी दिव्य औषधियों का पर्वत उठाकर लंका तट की ओर लौट रहे थे, तब यहाँ का रमणीक वन देखकर कुछ क्षण आकाश में स्थिर हुए थे। उसी समय कुछ दिव्य औषधियाँ इस वन में गिर गई थीं। जो बाद में यहीं उग गईं। यह वन दिव्य औषधियों के लिये ख्यात है। नाभिनाथ यहाँ रहकर अनेक असाध्य रोगों का उपचार करते थे। इसी कारण लोक में उन्हें धनवंतरी का अवतार कहा जाता था।

हनुमानजी ने जब इस रमणीक वन और झरने से बहते जल प्रपात को देखा, तब उनके मुख से अनायास निकला था कि–श्रीराम काज संवारने के पश्चात् मैं यहाँ आकर विश्राम करुँगा और कीर्तन करता हुआ धन्य होऊँगा। लोक विश्वास है कि– हनुमानजी अब भी यहाँ आते हैं और कई दिनों तक यहाँ निवास करते हैं। नाथों के अनुसार तो हनुमान (हणुमान) भी नाथसिद्ध योगी थे। शिव अंश होकर शिव अवतार थे। वे अवश्य इस आसन पर पधारते होंगे। हो सकता है नाभिनाथ हणुमान के ही अवतार हों। जब तक यहाँ आसन रहा, यह धाम नाथों और जन साधारण का आस्था धाम रहा। लोग आज भी यहाँ दर्शन करने आते हैं और मन्नत मनौती लेते हैं।

## नाथ पंथ का प्राचीन आसन कंवला

भानपुरा तहसील मुख्यालय से पश्चिम में 10 किलोमीटर दूरी पर गाँधीसागर जलाशय के ठीक पास अवस्थित प्राचीन गाँव कंवला पुराकाल में कमलापुर कहलाता था। इसे तलाइयों और सरोवरों का गाँव भी कहा जाता है। परमारकालीन मूर्तिशिल्प एवं मंदिर आदि इसी बात का प्रमाण देते आज भी यश गाथाएँ बखानते थकते नहीं है।

एक गाथा का यह अंश यहाँ नाथ पंथ के गौरवशाली अतीत की वरदावली बखान करते हुए कहता है–

*चामल रे करड़े बस्यो, कंवलाँ मोटो गाम।*
*नाथाँ रो डेरो वठे, घणो पवितर धाम।।*
*सरवर निरमल जल भर्यो, मंदर सोभे ठाट।*
*भाँताँ वरणा कमल है, सुरखाबाँ का गाट।।*
*कमलापुर पेल्याँ कहें, अब हे कँवलाँ नाम।*
*नाथाँ रो आसण अठे, नत पूजे दस गाम।।*
*जुगाँ–जुगाँ पेहलाँ अठे, रमता सद्गुरु नाथ।*
*भौमनाथ जी नाम थो, सबै नमावै माथ।।*
*दुख दारिदर मेटताँ, राखे मेहर नाथ।*
*दानाँ–दुखियाँ देखताँ, तुरताँ भर ले बाथ।।*
*बाथ भरया संवरे सबै, हिरदै बसया दूख।*
*तन हरसे दारिद मिटे, सरबस होवे सूख।।*
*भौमनाथ को सूणियों, खूब बड़ो परताप।*
*दरसन वेताँ हीवड़े, आवे सुख रो धाप।।*
*चमतकार ऐसा करे, सबदाँ नहीं बखान।*
*हिंगलाजाँ रो इष्ट थो, परतख बोले कान।।*
*बगलामुखी करतब करे, काला–गोरा साथ।*
*जोगणियाँ जुगती करें, बावन भैरव नाथ।।*
*पगाँ खड़ाऊ पेहरताँ, चाले चामल पार।*
*लोग कहें हे नाथजी, गोरख का औतार।।*
*भौमनाथ कोई–कोई कहे, कोई कवे गोरखनाथ।*
*साँझ सवेरां धाम आ, सबै नमावे माथ।*
*बाड़ा में गायाँ घणी, परभाताँ रंभाय।*
*सिद्धनाथजी खुद सदा, मोरा हाथ फिराय।।*
*सिव समाध हरदम रहे, रहवे आतम लीन।*
*सै पच्चीसी बरस में, होया ब्रह्म समीन।।*

यह लोकवाणी गुरुदेव दलेलसिंहजी यादव के संग्रह में संग्रहीत थी। वाणी पूरी तरह विस्तृत गाथा के रूप में थी। वे उसे छापना भी चाहते थे। मैंने उनकी चार पुस्तकें प्रकाशित की। इसे भी करता।

इतना अंश ही मैंने सुलेखित किया था। उनकी लिखावट बहुत सुन्दर थी। तब यह तय रहा कि वे पूरी गाथा सुलेखित कर दें। मैं उसका अनुवाद करुँगा। यह हो

नहीं सका। वे अस्वस्थ हुए और फिर ब्रह्मलीन हो गए। सारी योजना धरी की धरी रह गई।

उन्होंने भौमनाथजी के कई चमत्कार मुझे सुनाए भी। कुछ तो गाथा के आधार पर और कुछ लोकाधार पर।

यदि इस गाथांश का भी हम अध्ययन करें, तब भी हम भौमनाथजी के बारे में तथा कँवला के बारे में बहुत कुछ जान समझ सकते हैं। हमें यह भी पता चल सकेगा कि कंवला कमलों का गांव था। गाथा के अनुसार मोटा (बड़ा) गांव अर्थात् कस्बा था। नाथों का वहाँ वर्चस्व स्थापित था।

गाथाकार कहता है—चम्बल के किनारे कंवला नाम का बड़ा गांव था। वहाँ नाथों का पवित्र धाम आसन (डेरा) था।

कंवला में सरवरों में कमल खिलते थे। निर्मल जल भरा रहता था। (लोक चर्चा के अनुसार कंवला में श्वेत—रक्त तथा नील कमल उगते थे) सरोवरों के घाटों पर छोटे—बड़े मंदिर बने थे। भाँति—भाँति के कमल खिलते थे। सरोवरों में सुरखाब पक्षी तैरते थे। पूर्वकाल में इस गांव का नाम कमलापुर था। अब कंवला नाम है।

यहाँ नाथों का आसन है। प्रतिदिन आसपास के दस गाँवों के लोग यहाँ दर्शन करने आते थे। युगों पूर्व (800 वर्ष पूर्व) यहाँ एक सिद्ध नाथजी ने आसन स्थापित किया था। वे रमते हुए यहाँ और रमणीक स्थल देखकर यहीं रम गए। नीलकमल की खेती के लिए कँवला प्रसिद्ध था। यहाँ के कमल दूर—दूर तक निर्यात होते थे। दस सरोवरों में कमल खिलते थे।

उन सिद्ध योगीनाथ का नाम भौमनाथ था। सब उन्हें वंदन करते थे। भौमनाथजी सबके दुःख—दारिद्र मिटाते थे। सब पर एक समान कृपावन्त रहते थे। वे दीन—दुखियों को देखते ही उन्हें गले लगाकर अपनी बाहों में भर लेते थे। बाहों में भरते ही उनके सभी दुःख—दारिद्र हर लेते थे। मानों उनके दुःख—दारिद्र उन्होंने अपने भीतर धारण कर लिए हों। जिस प्रकार अश्वत्थ वृक्ष प्रदूषित वायु का पान कर निर्मल प्राणवायु प्रदान करता है, वैसा वे करते थे। सारा गरल वे पी जाते और अमृत जग को बाँटते थे। बाथ (बाहों में) भरते ही सभी दैहिक—भौतिक ताप मिट जाते थे। हृदय के शोक दूर हो जाते थे। तन हर्षित हो जाता था और सभी वांछित सुख प्राप्त हो जाते थे।

भौमनाथ का बहुत प्रताप सुना है। उनके दर्शन होते ही हृदय के संताप मिट जाते थे और सुख की तृप्ति हो जाती थी।

उनके चमत्कारों का बखान शब्दों में नहीं किया जा सकता। उन्हें हिंगलाज माता और बगलामुखी माता का इष्ट था। वे उन्हें प्रत्यक्ष उपस्थित होकर कान में सारी सूचनाएँ देती थी। समस्त चमत्कार बगलामुखी करती थी। काला–गेरा भैरव सदा उनके साथ रहते थे। चौसठ योगनियाँ उनके कहे अनुसार काम संवारती थीं। बावन भैरव नाथजी की अर्दली में रहते थे।

भौमनाथजी खड़ाऊँ पहनकर चम्बल नदी पार कर जाते थे। मानों पृथ्वी पर चल रहे हों। लोग उन्हें गोरख का अवतार मानते थे। कुछ लोग उन्हें भौनाथ कहते थे, किन्तु कुछ लोग उन्हें गोरखनाथ ही पुकारते थे। सांझ–सबेरे लोग उनको धोक लगाने आसन पर आते थे।

बाड़े में बहुत सारी गाएँ थी। प्रभात होते ही वे रंभाने लगती। तब स्वयं जाकर नाथजी उनकी पीठ पर हाथ फेरकर उन्हें स्नेह जताते थे।

वे सदा शिव समाधि में आत्मलीन रहते । एक सौ–पच्चीस वर्ष की आयु में वे ब्रह्मलीन हो गए। जीवित समाधिस्थ हुए। उनकी समाधि आसन के परिसर में थी। अब वह समाधि गांधीसागर विस्तार में डूब गई है।

कहते हैं एक बार चम्बल पार के कुछ पशु चोरों ने (सम्भवत मीणों ने) आसन के बाड़े का ताला तोड़कर सभी गाएँ और भौमनाथजी की घोड़ी सरबती को घेर लिया। घोड़ी तो सिद्धनाथ की सिद्ध घोड़ी थी। उसने तत्काल नाथजी महाराज को सपना दे दिया। नाथजी महाराज ने जागकर कमंडल से अंजली में जल लेकर डाकुओं की ओर छांट दिया। चौसठ जोगणियाँ जागृत हो गई और लुटेरों को जाकर घेर लिया। लुटेरे भी संख्या में बहुत थे। 500 गाएँ और घोड़ी उनके आगे सब लुटेरे चारों तरफ चम्बल किनारे भाग रहे थे। जोगणियों ने गायों को शक्ति देकर अपना रूप दे दिया। सरबती घोड़ी पर एक दिव्य पुरुष सवार हो गया। गायें तो तत्काल वापिस आसन की ओर भागने लगीं और लुटेरों को दिव्यपुरुष और जोगणियों ने घेरकर पीटना शुरू किया। उन्हें पीटते–पीटते वे आसन में घेरकर ले आई।

नाथजी महाराज ने उन्हें भी गायों के बाड़े में भेड़े बनाकर बंद करवा दिया। पूरा गाँव जाग गया। सारा खेल देखते–देखते समाप्त हो गया। सबेरे गायों ने सदा की भाँति रंभाना शुरू किया। नाथजी आए। सबकी पीठ सहलाई।

लुटेरों को फिर से मनुष्य बनाया और आदेश दिया, इस बार क्षमा कर रहे हैं। अब यदि इस पार आकर उत्पात मचाया तो क्षमा नहीं करेंगे। सदा के लिए भेड़े बना

देंगे। उसके बाद कोई भी लुटेरा चम्बल पार लूट करने नहीं आया। सबेरे सभी लुटेरों को दाल बाटी खिलाकर रवाना किया। ऐसे थे भौमनाथजी नाथ महाराज। उनके ऐसे कई चमत्कारिक प्रसंग लोक ख्यात रहे हैं।

कंवला किसी समय नाथों का प्रमुख केन्द्र रहा। यदि हम अध्ययन करें, तब पाएँगे दशपुर जनपद (नीमच मन्दसौर जिला) में मेवाड़ की सीमा में 1331 विक्रमी में आसन दरियानाथ की स्थापना हुई और उधर हाड़ौती अंचल की सीमा में संधारा, इन्द्रगढ़, चौरासीगढ़, कँवला और दूधाखेड़ी धर्मराजेश्वर में लगभग उसी काल में बल्कि और भी पहले नाथों के आसन कायम हुए। नाथों का इस अंचल में बहुत वर्चस्व रहा और लोक में वे सर्वपूज्य रहे।

कंवला क्षेत्र में नाथों का आगमन लगभग 800 वर्ष पूर्व खिलचीपुर से हुआ। गागरोन पतन के पश्चात् जब अचलदास खीची वीरगति को प्राप्त हुआ और गढ़ पर मांडव के हुशंगशाह का शासन कायम हो गया, तब वहाँ से अनेक नाथ परिवार खिलचीपुर की ओर चले गए। कुछ इसी अंचल में अन्य गाँवों में बस गए। खीची राजाओं का नाथों को आश्रय प्राप्त था। गढ़ के भीतर भी नाथों का एक आसन स्थित था। नाथ खीची राजाओं के राजगुरु मान्य थे। उन्हीं नाथों के कुछ परिवार कंवला आ बसे। खिलचीपुर खीचियों की राजधानी बना। वहाँ भी नाथों को राज्याश्रय प्राप्त हुआ।

1805 में भौमनाथ ने जीवित समाधि ली। उनके पश्चात् भूतनाथजी ने कंवला में जीवित समाधि ली। भूतनाथजी भी परम सिद्धनाथ थे। उन्होंने भी अनेक चमत्कार किए। लोक में वे भूतबावजी के नाम से ख्यात थे। उनकी समाधि वर्तमान में शम्भुनाथजी के आँगन में स्थित है। वे रात भर सारंगी पर जलवा गाते थे। आज भी उनकी समाधि से भजनों की स्वर लहरी और सारंगी की संगीत लहरी सुनी जाती है। जब भी ऐसा आभास होता है। वहाँ सब मिलकर जलवा करते हैं, यही उनका संदेश होता है।

शंभुनाथजी बतलाते हैं कि कंवला में 300 वर्षों तक धूनी चैतन्य रही। अभी भी उनके परिवार के हीरानाथ विट्ठलपुरा शिव मंदिर में पूजा करते हैं।

शंभुनाथजी का कथन है कि कंवला में आने से पहले उनका परिवार विट्ठलपुरा में रहता था। वहीं शिव मंदिर पर 500 वर्ष तक हमारी धूनी चैतन्य रही। आज से लगभग 800 वर्ष पूर्व चौरासीगढ़ पर हमारे पूर्वज साधनारत थे। वे भी खिलचीपुर से ही यहाँ आए थे। उनके वर्तमान उत्तराधिकारी केदारनाथ अब भी यहाँ रहते हैं। वे नाथ गले में जनेऊ, चपड़ास धारण करते हैं। जिसमें नादी, पवित्री, रुद्राक्ष तथा काला–गोरा भैरव

के प्रतीक रूप में काला व सफेद मोती मढ़ा रहता है। तंत्र–मंत्र से मनुष्यों व पशुओं का उपचार ये आज भी करते हैं।

इन्हीं के वंशजों ने रामपुरा के निकट अरावली की उपत्यका में केदारेश्वर महादेव की स्थापना की व वहाँ धूनी स्थापित की। यह धूनी आज भी चैतन्य है।

कंवला में शीतलामाता के मंदिर का जीर्णोद्धार अहिल्याबाई होल्कर ने करवाया व जागीर कायम की। आज भी इस मंदिर की पूजा नाथ महाराज करते हैं।

वर्तमान में यहाँ हीरानाथ, शिवनाथ, शंभुनाथ, कान्हनाथ, भवानीशंकर नाथ आदि परिवार रह रहे हैं। कई परिवार यहाँ से अन्यत्र चले भी गए। आसपास के गाँवों में भी नाथों का निवास है।

कंवला का नाथ आसन पूरे अंचल में ख्यात रहा और यहाँ एक से बढ़कर एक सिद्ध चमत्कारी नाथ गादी पर बिराजते रहे। लोक कल्याण के कार्यों के कारण उन्हें लोक ने खूब मान्यता प्रदान की ।

## परमारकालीन नाथ आसन संधारा

भानपुरा तहसील मुख्यालय से लगभग दस किलोमीटर दूरी पर स्थित पुरातिहासिक गाँव संधारा स्थित है। यह गाँव पूर्व काल में व्यापार–वाणिज्य, कृषि तथा कला–संस्कृति के लिए चिरकाल तक प्रसिद्ध रहा है। इसका पूर्व नाम सुन्दरपुर रहा है। यहाँ भी एक बहुत बड़ा तालाब था, जिससे अनेक खेतों की सिंचाई होती थी। आज वह तालाब खेतों में परिवर्तित हो गया है।

संधारा में कोई 400 वर्ष पूर्व नाथ परिवार आए। यहाँ अपना आसन कायम किया। आसन पर सबसे पहले चिरंगीनाथ नाम के सिद्धनाथ ने अपनी गादी कायम की। इनके साथ उस समय 50 शिष्य थे। सभी कनफाड़े जोगी। वे सब किसी राजा से रुष्ट होकर इस अंचल में से गुजर रहे थे। इन्होंने यहाँ रात्रि विश्राम किया। रात भर जलवा हुआ। सेठ–साहूकारों और यहाँ के जागीरदार ने नाथजी चिरंगीनाथजी से निवेदन किया कि आप यहीं अपना आसन कायम करो।

सबकी बात मानकर नाथजी ने संधारा (सुन्दरपुर) में अपना आसन कायम किया। उन्होंने यहाँ खूब तपस्या की। सिद्धियाँ प्राप्त की और लोक कल्याण करते हुए 112 वर्ष की आयु में समाधि ले ली। उनके बाद उनकी गादी आज तक कायम है। धूनी पर शिवरात्रि, दोनों नवरात्रि, मकर सक्रांति पर जलवा होता है। प्रसादी भी होती है। यहीं

से नाथों ने हिंगलाजगढ़ जाकर वहाँ हिंगलाज माता की पूजा तथा वहाँ रहकर साधना की। अहिल्याबाई ने धूनी (आसन) के लिए जागीरें दान में दी। 60 बीघा जमीन थानक (संधारा के पास) दी। यहाँ के नाथ करधनियाँ गोत्र के हैं।

वर्तमान में बालचंद नाथ के अनुसार उसी गादी परम्परा में स्व. माघोनाथ, स्व. मदननाथजी, स्व. जगन्नाथजी, स्व. प्रभुनाथजी हुए। बालचंदनाथ उसी नाथ गादी के उत्तराधिकारी हैं। इन्हीं के दो परिवार चतुर्भुज नाथ और रतननाथ के परिवार गाँव ओसारा चले गए। आज भी उनके परिवार वहाँ रह रहे हैं।

अपनी गादी को ये गुरु गोरखनाथ की गादी कहकर पूजते हैं। भगवान शिव और दुर्ग की उपासना करते हैं।

बालचंद नाथ के अनुसार नकलन गाँव नाथों का ही बसाया हुआ है। वहाँ आज 120 परिवार नाथों के निवासरत हैं। दूसरी जाति का कोई भी परिवार वहाँ नहीं है। केवल एक परिवार सेवकों का है। संधारा से भी कुछ परिवार नकलन गाँव जाकर बसे थे।

संधारा जहाँ व्यापार, वाणिज्य, कृषि, कला–संस्कृति के लिए ख्यात रहा है, वहीं इसकी ख्याति नाथों की सिद्धियों के कारण भी रही है। यहाँ के नाथों ने कई बार तो लुटेरों, डाकुओं व चोरों से मुठभेड़ कर गाँव की रक्षा की है।

इस प्रकार नाथों की ख्याति व लोक स्वीकृति केवल साधना–सिद्धियों या तंत्र मंत्र–झाड़ फूंक के कारण ही नहीं रही, बल्कि वे अच्छे वैद्य भी थे और शस्त्र तथा शास्त्र के साथ संगीत विद्या में भी पारंगत थे। इन्हीं सब कारणों से नाथों को लोक मान्यता मिलती रही।

## लोक शक्तिपीठ दूधाखेड़ी

यह लोक शक्तिपीठ भानपुरा और गरोठ के मध्य स्थित है। मूलतः यह नाथों का ही सिद्ध पीठ है। यहाँ बिराजित लोक देवी दूधाखेड़ी माता पूरे अंचल की आराध्य माँ हैं। यह माता अपने सेवकों के दुःख–दारिद्र दूर करती हैं। विशेषकर लकवा के मरीज यहाँ ठीक होते हैं। माता स्वयं उन्हें आशीर्वाद देकर रोग मुक्त करती हैं। रोगी कंधों पर आते हैं और अपने पैरों पर घर जाते हैं।

दूधाखेड़ी गाँव के नाम से इन्हें दूधाखेड़ी की माता अर्थात् दूधाखेड़ी माता कहा जाता है। जैसे भादवा गाँव की माता अर्थात् भादवा माता हैं। लोक में एक साखी प्रसिद्ध है–

*आदधाम आँतरी, मोड़ी तरवत मंडाण।*
*भादवा जोत ज्वाला की, सतियाँ रो सतजाण।।*
*मसरोली महिमा घणी, महुए मात परवाण।*
*साँगाखेड़ा आवरी, दूदाखेड़ी सकराण।।*

ये सभी लोक माताएँ बहनें मानी जाती हैं। सबकी आस्था लोक में मान्य हैं। दूधाखेड़ी के केशरीनाथ बतलाते हैं कि इनके पूर्वज सीसोदा जागीर से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व इस क्षेत्र में आए थे। सीसोदा मेवाड़ का वही ठिकाना है, जहाँ के महाराणा हमीर हुए। इसी गाँव के कारण ये राजपूत सिसोदिया कहलाए। सीसोदा से हमारा नाथ परिवार खड़ावदा के पास मलकाना में आकर बस गया था। 200 वर्ष मलकाना में रहे। वहाँ संतूरनाथ ने गादी स्थापित कर आसन संतूरनाथ कायम किया। वहाँ से 5 परिवार लगभग 800 वर्ष पूर्व दूधाखेड़ी में आए और अपनी पृथक धूनी कायम की। नाथों से पहले दूधाखेड़ी माता की पूजा गोसाई करते थे। नाथों के आने के पश्चात् उनकी साधना, पवित्रता, निर्मलता को देखकर दूधाखेड़ी माता की पूजा नाथों को दी गई। तब से लगभग 700 वर्षों से नाथ ही माता की पूजा कर रहे हैं।

मलकाना से नाथ सिद्ध जोगी गंगानाथजी दूधाखेड़ी आए थे। वे एक चमत्कारिक पुरुष थे। उन्हें कई सिद्धियाँ प्राप्त थी। उन्होंने दूधाखेड़ी में गोरख गादी की स्थापना की। यहाँ के सीसोदा नाथ नाटेश्वरी गोत्र के नाथ योगी हैं।

वर्तमान में हीरानाथ, जमनानाथ, प्रेमनाथ, माधुनाथ, कंवरनाथ, मोतीनाथ, भेरूनाथ, जमनानाथ, प्रेमनाथ, शंकरनाथ बारी–बारी से माता की पूजा करते हैं।

होलकर नरेश यशवंतराव की आराध्य देवी दूधाखेड़ी थी। वे प्रति पर्व यहाँ दर्शन करने आया करते थे। वे यहाँ आयोजित समस्त धार्मिक आयोजनों में उपस्थित रहा करते थे। यहाँ के नाथों ने बताया कि हमारे पूर्वज परिवार संवत् 1375 के आसपास मलकाना से दूधाखेड़ी आये थे। यहाँ के नाथों ने अपनी साधना, प्रेम, करुणा, तपस्या और जनकल्याण के द्वारा अंचल का मन मोह लिया।

पूरे अंचल में इन आसनों, मठों, डेरों, धूनियों के नाथों और नाथ सिद्धों के प्रति उनकी लोक कल्याणी भावनाओं के कारण लोक में सदा सद्भावना बनी रही।

कुछ भूले–भटके छद्म वेशधारी, तपस्या भंग एवं पंथ भ्रष्ट नाथ साधुओं के कारण कई बार नाथ पंथ के प्रति अश्रद्धा एवं अस्वीकृति का भाव भी बना, किन्तु वह एक ठग द्वारा किए गए आचरण से उपजे आक्रोश की तरह ही सिद्ध हुआ, जो कुछ समय

पश्चात् समाप्त हो गया और नाथ पंथ के प्रति सद्भाव, सद्विचार, लोक मान्यता और लोक स्वीकृति कायम रही।

## धर्मराजेश्वर गुफा मंडल में नाथों की धूनी

दशपुर की पुरा सम्पदा अद्भुत और अनुपम है। यहाँ के मदिर, यहाँ की प्रतिमाएँ यहाँ की शैलोत्कीर्ण गुफाएँ सब मिलकर गौरवशाली अतीत को अभिव्यक्त करते हैं। सम्राट अशोक ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में जीवन का शेष समय बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार में लगाया। इसी काल में भारत में व भारत के बाहर बौद्ध वास्तुकला के प्रतीक गुफाएँ, चैत्य और विहार निर्मित होने लगे। बौद्ध भिक्षु साधना के लिए इन गुफाओं में बने विहारों में रहने लगे। अवन्ती क्षेत्र का उत्तरी पश्चिमी भू–भाग जिसे हम छठी शताब्दी के आसपास अवंती मालवा के रूप में जानने लगे, उसी भू–भाग में भौगोलिक दृष्टि से लेटराइट शैल निर्मित पहाड़ियों की श्रृँखला है। इन पहाड़ियों की तलहटियों में लावा और डेकनट्रप फैला है, जो रासायनिक दृष्टि से हिमेटाइट का बाहुल्य लिये है। इस पहाड़ी में शैलोत्कीर्ण मानव निर्मित गुफाओं की श्रृंखला स्थापित हुई है। यहीं पर धर्मराजेश्वर के नाम से प्रसिद्ध शैलोत्कीर्ण मंदिर शैल स्थापत्य का अनूठा उदाहरण विद्यमान है।

उत्तर पश्चिमी मालवांचल में लेटराइट पहाड़ियों पर मानव निर्मित शैलोत्कीर्ण बौद्ध गुफाओं का निर्माण 5वीं– 6वीं सदी से शुरू होकर 8वीं–9वीं सदी तक चला। स्थापत्य कला के विकास की दृष्टि से इसका आरंभिक स्वरूप हमें आगर के पास गुफा बड़ी से शुरू होकर डग, कोलवी, नियगा, हथियागौड़, पोलाडोंगर, खेजड़िया भूप व धमनार (धर्मराजेश्वर) के चंदनगिरि विहार तक विकसित होता दिखलाई देता है। यहीं उत्तर भारत का एलोरा कहा जाने वाला धर्मराजेश्वर का नागर शैली में निर्मित मंदिर है। जिसमें स्थापत्य कला तद्युगीन चरमोत्कर्ष को देख सकते हैं।

हम इस काल को भारत में व भारत के बाहर बौद्ध शैल स्थापत्य के स्वर्णिम काल के रूप में देखते हैं। 5वीं से 8वीं सदी के बीच भारत में निर्मित बौद्ध गुफाओं में मालवांचल क्षेत्र की बौद्ध गुफाओं में हम हीनयान व महायान शाखाओं से संबंधित प्रतिमानों व लक्षण विधाओं को मुखर होता देखते हैं।

उपर्युक्त उल्लेखित स्थलों में आगर के गुफा बड़ी में लेटराइट पहाड़ी पर प्राकृतिक झील के पास पुर्वाभिमुख पाँच गुफाएँ हैं, जो अब जीर्ण–शीर्ण हो चुकी हैं। इनकी छत चौकार स्तंभों पर टिकी है। ये कला की दृष्टि से ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं है।

यहीं से मालवांचल में बौद्ध गुफाओं की निर्मिति और कला के आरंभिक विकास को हम पाते हैं। यहाँ से तीस किलोमीटर दूर दक्षिण–पश्चिम में डग से आगे क्यासरा के पास पौराणिक युग के महत्त्वपूर्ण स्थल कार्यावर्णेश्वर महादेव के पीछे की पहाड़ी पर मानव निर्मित शैलोत्कीर्ण गुफाओं की उपस्थिति बताती है कि कला साधकों ने बौद्ध भिक्षुओं के लिए राजकीय संरक्षण में इन गुफाओं का निर्माण किया। यहीं से राजस्थान के वर्तमान झालावाड़ जिले में फैली लेटराइट पहाड़ी में शैलोत्कीर्ण कलात्मक बौद्ध गुफाएँ क्रमशः कला का विकसित रूप लिए दिखाई देती है।

भौगोलिक दृष्टि से यह पहाड़ी क्षेत्र पश्चिम की ओर बढ़ता है, जिसके एक बाजू में खेजड़िया भूप की 38 गुफाएँ अच्छी हालात में विद्यमान हैं। दाहिने भाग में पोला डोंगर की श्रृँखलाएँ हैं। डांगरिया से निर्मित इस भू–भाग में यह पहाड़ी पश्चिम में चंबल के तट तक पहुँचती हैं। अश्व नालाकृत पहाड़ी पर शैलोत्कीर्ण गुफाएँ हैं।

पुराकाल में लगभग 15 वीं शताब्दी में इन गुफाओं में एक नाथ जोगी आदिनाथ ने अपने 15–20 चेलों के साथ डेरा स्थापित किया था। उसने सभी गुफाओं की सफाई करवाई और अपनी धूनी प्रज्ज्वलित कर दी। आदिनाथ एक अघोर पंथी विकट तांत्रिक था। विशालकाय और कठोर मुद्रा वाले उस नाथ जोगी ने आसपास के ग्रामीणों में तंत्र विद्या का भयजन्य प्रभाव फैला दिया। वह वहाँ सुरक्षित रहकर कोई बहुत बड़ी साधना करना चाहता था। उसका कहना था कि वह इस साधना के सिद्ध हो जाने के पश्चात् सचमुच आदिनाथ भगवान शिव की शक्तियों से सम्पन्न हो जाएगा।

ऐसी साधना अत्यंत दुष्कर थी। उसने वर्तमान विष्णु मंदिर के परिसर में भैरवनाथ की स्थापना की और वहाँ बैठकर वह अघोर साधना करता था। नित्य–प्रतिदिन पशु बलि होती थी। मदिरा की धार लगती थी और आदिनाथ अपने चेलों के साथ वहाँ मांस मदिरा और मैथुन का उपयोग करता था। आसपास के गाँवों से निरीह और भोली–भाली कन्याओं को अपहृत कर वहाँ लाया जाता था। पूरा अंचल आदिनाथ और उनके चतुर चालाक निर्दयी चेलों के आतंक से भयभीत था। न कोई राजा न कोई जागीरदार उसके आतंक पर अपना अंकुश रख पा रहा था।

अन्ततः इस अंचल की बेटियों ने एका किया। अपने साथ समवयस्क युवकों को जोड़ा और उस नाथ जोगी के आतंक को समाप्त करने का बीड़ा उठाया। उन युवतियों और युवकों ने पूरे गुफा भाग को घेर लिया। अर्द्धरात्रि में मशालें और लाठियां लेकर वे जोगियों पर टूट पड़े। मदिरा में मदमस्त जोगी सम्हले–सम्हले, तब तक उन पर लाठियों की मार पड़ने लगी थी। उन्हें भागने तक का भी अवसर नहीं मिला।

आदिनाथ जोगी पहाड़ी भाग से भागने की उतावली में नीचे तलहटी में जा गिरा। कोई नहीं जानता वह मर गया या फिर दूर किसी दूसरे अंचल में पलायन कर गया।

उनके चेलों की मुश्कें बाँधकर उन्हें पेड़ों से लटका दिया गया। फिर उन सबने क्षमा मांगी और भविष्य में शांतिपूर्वक जीवन बिताने का संकल्प लिया। ग्रामीणों ने उन पर दया दिखाकर क्षमा कर दिया। उनमें से कुछ नाथ जोगी निकट के गाँव चंदवासा में बस गए। जो आज भी वहाँ के वाशिंदे हैं। कुछ इधर–उधार गाँवों में यथा चौरासीगढ़, कंवला, दूधाखेड़ी, संधारा, ओसारा, मलकाना आदि गाँवों में बस गए। बाद में उनके सदाचरण को देखते हुए होल्कर नरेश यशवंतराव व अहिल्याबाई ने इन्हें रुतबे और जागीरें भी प्रदान कीं। धर्मराजेश्वर का यह प्रसंग जहाँ नाथ जोगियों के पंचमकारी साधना की दुर्दांत घटना थी, वहीं नाथों के श्रेष्ठ एवं कल्याणकारी पंथ के लिए दुःख का व लोक लज्जा का प्रसंग भी था। वहीं युवा बेटियों व युवकों के लिए एक चुनौती भरा एवं अन्य युवकों–युवतियों के लिए प्रेरक प्रसंग भी। एक दुर्घटना भयाक्रांत घटना युवा पीढ़ी की जागरुकता के कारण टल गई।

**संदर्भ**


1. डॉ. दामोदर सिंघल–एशिया में बौद्ध धर्म, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
2. मन्दसौर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, म.प्र. 1993
3. चन्द्रभूषण त्रिवेदी, दशपुर, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
4. रिपोर्ट ऑफ आर्केलाजिकल सर्वे ऑफ इडिया, (1905–06)
7. भीली लोकमताएँ, डॉ. पूरन सहगल, आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी, भोपाल, 2009
9. राककट टेम्पल्स ऑफ इंडिया,फर्ग्यूसन
10. फर्ग्यूसन जेम्स खण्ड 2 (लंदन 1920)

# नाथ सिद्धों की वाणी

*सिद्धाँ को आडम्बरों, गोरख लीयो जाण।*
*बरस दो बरस संग ले, पूरी करी पिछाण।।1।।*
*मूरत देवत पूजताँ, मति करो जनम खुवार।*
*अन्तर हिरदै में बसे, जगती को करतार ।।2।।*
*सतगुरु ने ध्यावें नहीं, नहीं सतगुरु को मान।*
*आँखाँ मीचे नाथ जी, सिद्धि घणा गुमान।।3।।*
*सतगुरु साँचा वेद हे, सतगुरु तारण हार।*
*नुगरा–नुगरा डूबसी, सुगरा उतरे पार।।4।।*
*लोभी गुरु लालची चेला, दोई एक सरीख।*
*अलख–अलख हाको करे,मांगण जावे भीख।।5।।*
*सत नहिं त्यागे सूरमा, सत ने लेवे राख।*
*नाथाँ को साँचो धरम, राखे भैरव साख।।6।।*
*सेली सिंगी धार ले, मुदराँ धारे कान।*
*खप्पर राखे हाथ में, नहीं पंथ को ज्ञान।।7।।*
*गोरख ने तपसा तपी, निरमल थाप्यो पंथ।*
*जोगीड़ा घण वटरया, पड़यो नरग के संध।।8।।*
*सत मत रेहवे सिद्ध जन, जगती राखे मान।*
*धोक लगावे नम पगाँ, लेवे साँचो ज्ञान।।9।।*
*सिद्ध कद्याँ वटरे नहीं, वटरे सो नहीं सिद्ध।*
*भोग विलासी टेगड़ा, वटरे सो नहीं सिद्ध।।10।।*
*सिद्ध बसे जणगाम में, सो व्हे तीरथ धाम।*

बहतो पाणी निरमलो, दो दन करे मुकाम।।11।।
सिद्ध सदा निर्मल रहे, ज्युँ पोयण को फूल।
जे भटक्या ते वटर्‌या, गचे पंथ में शूल।।12।।
सद्‌गुरु गोरख ने कह्यो, करो जगत कल्याण।
छोट मोट मति जाणजो, करजो सब को माण।।13।।
जो बच्यो सो बचि रह्यो, गयो खोटे काम।
करणी राखो निरमली, सतमत राखो हाम।।14।।
पेहलाँ खुद ने मेंट दो, फेर मेटो हंकार।
गोरख मेटो क्रोध ने, जगत करे सतकार।।15।।
सेली सिंगी मुद्रणा, अलख–अलख की हाँक।
गोरख सब दिखता भला, अलख भीतराँ झाँक।।16।।
एक ब्रह्म, लख नाम हे, कोटिक रूप सरूप।
गोरख घट के भीतराँ, सूरज चलके धूप।।17।।
गोरख नाथाँ रो धरम, हरे जगत री पीर।
अवडम्बर धारे नहीं, हिरदै राखे धीर।।18।।
कहनी करणी सोचणी, तीनई निरमल होय।
गोरख एसा नाथ ने, नमन करे सब कोय।।19।।
गोरा सुंदर काचरी, कड़वो घणो सुवाद।
थू–थू करने फैंक दे, समझ–बूझ लो साद।।20।।
गंगा नारा में मिले, गंगा नी केहलाय।
सज्जन फँसे कुसंग में, अवस भ्रस्ट वै जाय।।21।।
नाथाँ ने गोरख कह्यो, करो साध को संग।
संग असाधाँ को कर्‌याँ, सुरंग बणे बदरंग।।22।।
नुगरो सो चण्डाल है, सुगरो बामण जाण।
गोरख नगरो–सूगरो, दोई की पेहचाण।।23।।
जात–पाँत बेमतलबी, मतलब करम पिछाण।
गोरख जण रो जो करम, सोई जात प्रमाण।।24।।
दो जाताँ बरमा रची, एक नर दूजी नार।
गोरख बाकी झूठली, सुआरथ को संसार।।25।।
एक पाप को राक्षसो, सौ पुण्य खा जाय।
गोरख एकल पापड़ो, पूरी नाव डुबाय।।26।।
चार वरण मुनि कथिं गया, चारइ वरण समान।

*गोरख फरको नी कथूँ, तऊँ बड़ो स्रम दान।।27।।*
*अगम अगोचर सतपुरुख, अझर अघोर सुनाथ।*
*गोरख आद अनाद सच्च, सो नाथाँ का नाथ।।28।।*
*अवधू मन चंचल घणो, राखो खींच लगाम।*
*गोरख भड़के जुद्ध में, करदे काम तमाम।।29।।*
*सहजे लेणा सहजे देणा, सहजे रहे लौ लाई।*
*सहजे–सहजे चलेगा रे अवधू, बासण करेगा समाई।।30।।*
*जो भी भटकी जगत में, अटकी नाथाँ जाय।*
*सदमत दे निरमल करी, सत री गेल बताय।।31।।*
*बावन भैरव कथि गया, सद्गुरु गोरख नाथ।*
*जोगणियाँ चौंसठ कथी, खास कथ्या नव नाथ।।32।।*
*सौ जोजन पंथों करे, एक छलांग लगाय।*
*हणुमत की गत मत सगत, कोई जाण न पाय।।33।।*
*हणुमत सिव रा रूप हे, आदिनाथ रो अंस।*
*हणुमत सिद्ध सुनाथ हे, अंजना–मारुति वंस।।34।।*
*मांस भखे मछली भखे, देवे मदिरा धार।*
*सिद्धि साधन नाथजी, सेवे पंचमकार।।35।।*
*सिद्धि साधन रे मते, सेवे पंचमकार।*
*सतगुरु गोरखनाथ रो, हुकम दियो हे टार।।36।।*
*सबै धरम सुख शांति रा, सबै पंथ कल्याण।*
*गोरख पाणी पीवजो, मोटे कपड़े छाण।।37।।*
*सतगुरु गोरख कहि गया, शील–सुकर्म–सुयोग।*
*नाथ पीछला भटक्या, लग्यो भोग रो रोग।।38।।*
*जिन नाथाँ सत नी तज्यो, रह्या सुसील सुजान।*
*गोरख ते जन तरि गया, पहुँच्या सिवजी धाम।।39।।*
*नाथाँ रो पेहलो धरम, करे जगत कल्याण।*
*काछ वाच सुथरो रहे, करे न गरब गुमाण।।40।।*
*जिन नाथाँ सत राखल्यो, नी छोड़यो नित नेम।*
*तिन को पग फेरो करे, सुगन कुसल अर क्षेम।।41।।*
*पारस सुवरन कर सके, पारस नी कर पाय।*
*सतगुरु गोरखनाथ ने, मारग दियो बताय।।42।।*

*जे सतमारग चाल्या, कर्‌यो जगत ने मान।*
*सतगुरु रे चाल्या मतो, चढ़ती रही कमान।।43।।*

## लोकवाणी की गद्य समीक्षा

लोक ही सर्वाधिक प्रमाणिक माध्यम होता है। जब भी किसी व्यवस्था में विकृतियाँ आने लगती है उसके लोक का विश्वास टूटने लगता है। उसकी लोक स्वीकृति शिथिल होने लगती है। भले ही वह व्यवस्था धार्मिक हो, राजनैतिक हो अथवा सांस्कृतिक।

बौद्ध धर्म का उदय तत्कालीन बहुदेववाद और व्यर्थ के आडम्बरों के विरुद्ध था। समाज में अनीति, दुराचार, भ्रष्टाचरण का बोलबाला था। बुद्ध ने उस व्यवस्था का विरोध किया। एक सहज मध्यमार्गी व्यवस्था की स्थापना की। लोक को बुद्ध के विचार अच्छे लगे। बुद्ध विचार से धर्म बना। उसे लोक स्वीकृति मिली।

कालांतर में बौद्ध धर्म में भी वही विकृतियाँ प्रवेश कर गईं, जिनको समाप्त करने के लिए भगवान बुद्ध ने एक सहज मार्ग का प्रशस्तीकरण किया था। सिद्धों ने अनेक आढ़म्बर खड़े कर दिए। वज्रयानी सिद्ध तो मुद्रा और मदिरा में लिप्त होकर साधना करने लगे। किसी एक नीच कुल की सुन्दर युवती को मुद्रा के लिए निर्धारित किया जाता और उसे समक्ष बैठाकर साधना की जाती। इसमें मदिरा का भी उपयोग होने लगा और फिर मैथुन का भी। आश्चर्य यह कि इसके लिए अपने गुरु की आज्ञा ली जाती थी। गुरु भी महान। वे भी आज्ञा प्रदान कर देते थे। एक प्रश्न यहाँ यह खड़ा होता है कि मुद्रा के लिए नीच कुल की युवती ही क्यों? वह इसलिए कि उस वर्ग में विरोध की क्षमता नहीं रह गई थी। अपने श्रम और देह का शोषण होता देखना वे अपनी नियति मानने लगे थे। बल्कि वह वर्ग अपने परिवार की युवती को सिद्धि हेतु चयनित होने में अपना सौभाग्य मानते थे। यही भाव उनके मन में सिद्धों ने स्थापित भी कर दिया था।

बौद्ध धर्म के पतनोन्मुख होते–होते गोरख का अवतार हो गया। गोरख ने बुद्ध धर्म की विकृतियों का परिमार्जन किया। वह उनकी संगत में रहा। उनके कर्म–कर्तव्यों को समझा–जाना और जब उसने देखा कि यह धर्म तो बुद्ध के संदेशों–उपदेशों और आदर्शों से भटक गया है, तब उसने एक विकल्प दिया। यदि हम गोरख के गोरख पंथ की समीक्षा करें, तब उसने कुछ अधिक नया नहीं दिया। उसने बौद्ध धर्म के मर्म में पहुँच कर एक नया पंथ स्थापित किया।

बौद्ध तंत्र पद्धति के अनुसार इस भूतल पर सबसे श्रेष्ठ गुरु हैं। वही परमतत्व हैं। वह परमेश्वर है। यही बात गोरख भी कहते हैं। महायानी और गोरखपंथ दोनों ही मध्यम मार्ग को स्वीकृति देते हैं। गोरख ने कहा –

*खाए भी मरिए अनखाए भी मरिए,*
*गोरख कहे पूता संजीमिही ही रहिए।*
*मधि निरंतर कीजै वास, दृढ़ है मनवा थिर है सांस।।*

अर्थात् भोजन खाने पर भी मृत्यु और नहीं खाने पर भी मृत्यु, अतः संयमित रहने पर ही मुक्ति निश्चित हो पाएगी। मध्य का आश्रय ग्रहण करो, तभी तुम्हारा मन दृढ़ हो पाएगा और तभी तुम्हारी श्वास भी नियमित रूप से चलती रहेगी। यही भाव गोरख ने प्रकट किए और यही भाव मध्ययुग में रामानंद के शिष्यों कबीर, पीपा, सैन, धन्ना, रविदास, सीता आदि संतों ने भी प्रकट किया।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि ये उपरोक्त विचार ही लोक कल्याणी है। इनसे भटकने पर लोक का अकल्याण होने लगता है। दुराचार और आचरण भ्रष्टता आने लगती है। समाज में विकृतियाँ आना शुरू हो जाती है। धर्माचार्यों या धर्म धारकों का भटकाव पूरे धार्मिक और सामाजिक ढाँचे को चर्मरा कर रख देता है।

यदि हम विभिन्न धर्मों और पंथों–मार्गों पर दृष्टि डालें, तब हम पाएंगे कि सबका अभिप्राय समान है, वही लोक कल्याण और लोक स्वीकृति। यदि लोक स्वीकृति नहीं होगी तो लोकाचरण नहीं होगा। लोक के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहा गया है– *'यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धमं न करिष्यति न करष्यित।।*

वैदिक धर्म ज्ञान–कर्म और भक्ति को मान्यता देता दिखता है। बौद्ध धर्म शील, प्रज्ञा और समाधि को। केवल नाम बदले हैं भाव या लक्ष्य नहीं बदला।

योगियों या तांत्रिकों की 'समरस' की स्थिति समाधि की स्थिति में ही आ पाती है। इस अवस्था में अजपा जाप का प्रावधान है। जाप ही आगे जाकर अजपा जाप बन जाता है। मंत्र अथवा नाम जब कंठ के भीतर प्रस्फुटित होने लगता है तब अजपा जाप की स्थिति आती है। यही स्थिति नाद की ओर प्रवृत करती है। तन्मय होकर अजपा जाप का श्रवण करना ही तो नाद है। नाद जब संगीतमय हो जाता है, तब अनहद नाद में परिवर्तित हो जाता है। संगीतात्मक ध्वनि ही नाद कहलाती है। 'न' अर्थात् प्राण और 'द' अर्थात् अग्नि। प्राण वायु और अग्नि के योग से नाद की उत्पत्ति होती है।

लौकिक संगीत, गीत और नृत्य आहत नाद की सृष्टि करते हैं। तथा जब प्राणात्मक उच्चारण से अव्यक्त ध्वनि स्फुटित होती रहती है, तब उसकी निरन्तरता से 'अनाहत नाद' की सृष्टि होती है। यही प्रक्रिया आगे चलकर सिद्धियों के क्रम निर्धारित करती है।

इस समूची साधना पद्धति को सभी विचारकों ने थोड़े बहुत विचार परिवर्तन से स्वीकार किया है। नाथों ने हठयोग को अधिक महत्त्व दिया और संयम–नियम तथा शील को स्वीकार किया है। साधक सिद्धों ने सिद्धियाँ प्राप्त करने के लालच में अनेक आडम्बर, अनाचार और अस्वीकार्य योग आचरण करना प्रारम्भ कर दिया। इसका सार संक्षेप पिछले पृष्ठों में स्पष्ट रूप से वर्णित किया जा चुका है। मेरा उद्देश्य नाथ पंथ के आदर्शों या पद्धतियों पर कोई शोध प्रस्तुत करना कदापि नहीं है। किन्तु पंथ का संक्षिप्त परिचय एवं उद्देश्य स्पष्ट किए बिना आगे बढ़ पाना संभव भी नहीं था। इस प्रसंग में दिए गए सबदी साखियों को मैंने किसी एक व्यक्ति से संग्रहीत नहीं किया, बल्कि अनेक लोगों से अनेक संदर्भों में अनेक वर्षों में सुना और संग्रहीत किया है। मेरा मानना है कि ये साखी सबदियाँ नाथपंथ के यश–अपयश, स्वीकृति–अस्वीकृति, उत्थान–पतन, आडम्बर, सहजता–असहजता और आदर्शों का बेबाक बखान करने में अधिक सक्षम एवं प्रमाणिक हैं। सहज भी है। लोक से आएँ हैं। लोक में इनका सृजन हुआ है और लोक कंठों से लोक अधरों पर होते हुए लोक में व्याप्त हो गए हैं। ये साखियाँ तटस्थ हैं। लोक भी तो तटस्थ होता है। जिन साखियों में गोरख की छाप है, वे मेरे मतानुसार गोरख द्वारा रचित न होकर लोक रचित हैं, जैसे की कबीर के बहुत सारे पद–साखियाँ लोक द्वारा रचित हैं।

भले ही ये सबदियाँ या साखियाँ गोरख द्वारा सृजित नहीं है, किन्तु इनमें गोरख का आदर्श निहित है। इस कारण मैं इन्हें गोरख बानी की सहचरियाँ स्वीकार करता हूँ। सहचर या सहचरियाँ अपने सखा, मित्र, बंधु या स्वामी का भाव पूरी तरह जानती हैं। और जो भी कहती हैं वह मूल आदर्श की स्वीकृति में ही कहती हैं। लोक तो सदा जागरूक सचेतक होता है। उसके द्ववारा कही गई साखियाँ भी सचेतक के रूप में ही है, उनका निहितार्थ ही हमारा उद्देश्य है। उसे स्वीकृत देने गोरखवाणी और उनके आदर्शों को स्वीकृति करने के समतुल्य है।

## गोरखवाणी की साखियों में लोक

सिद्धों के आडम्बर को गोरख ने भली–भाँति जान–समझ लिया। एक–दो बरस संगत करके उन्होंने बौद्ध सिद्धों की साधन पद्धति, रहनी–कहनी–विचारणी आदि का

पूरा ज्ञान प्राप्त किया। जब उन्हें लगा कि बुद्ध द्वारा स्थापित आदर्शों से बौद्ध सिद्ध हट चुके हैं और उनमें कई विकृतियाँ आ गई हैं, इनकी लोक स्वीकृति धीरे–धीरे कम होती जा रही है। जिन आडम्बरों के लिए भगवान बुद्ध ने लोक को सुरक्षित कर एक निर्मल चरित्र वाला धर्म देने का प्रयास किया था। वह करुणाशील अब इन मुद्रा साधकों ने नष्टप्राय कर दिया है। भले ही बुद्ध के आदर्श विदेशों में स्वीकृति हैं, किन्तु भारत में वे अब स्वीकृति नहीं रह गए। तब गोरख ने एक नया पंथ स्थापित करने का प्रयास किया। वे कहते हैं मूर्ति और अनेक देवताओं को पूजने में अपना जन्म नष्ट करने के बजाय अपने अंतर–घट में झाँकों, वहाँ विश्व का सृजनहार जगन्नाथ बैठा है। उसकी आराधना करो। यही बात आगे जाकर निर्गुण–भक्तों संतों ने भी कही।

गोरखनाथ सिद्धों–नाथों को सचेत करते है–सद्‌गुरू का ध्यान नहीं करते, उनका मान–सम्मान करने के बजाए आँखें मीचकर समाधि लगाने का आडम्बर करते हैं और स्वयं को सिद्ध बताकर अहंकारी हो रहे हैं।

सत्‌गुरु ही सच्चे वैद्य है। वे ही इस संसार सागर से पार उतारने में सक्षम हैं। जो गुरु विमुख हैं, वे सब डूब जाएँगे और जो गुरु सम्मुख हैं वे पार उतर जाएँगे। यही बात सभी धर्म–सम्प्रदायों के धारकों ने कही है। आगे चलकर निर्गुण संत तो इस विचार पर कि सद्‌गुरु ही संसार सागर से पार उतार सकते हैं। बार–बार बड़ी शिद्‌दत के साथ कही, बल्कि दोहराई हैं–

*बूढ़ थे परि ऊबरे, गुरु को लहि चमंकि।*
*भेरा देख्या जरजरा, उथरी पड़े फरंकि।।*

–कबीर

× × ×

*जगमूआ विषधर धरै, कहें कबीर पुकार।*
*जो सतगुरु को पाइया, सो जन उतरें पार।।*

–कबीर

× × ×

*सतगुरु साँचो खेवटो, कर देवे भव पार।*
*छैहो दुसमण ताड़या, पड़या म्हारे लार।।*

ऐसी वाणी रैदास, पीपा, धन्ना, साध्वी सीता आदि की भी है। 'गुरु बिना ज्ञान नहीं, नाथ बिना मान नहीं' यह उक्ति लोक प्रसिद्ध है। इसमें लोक ने जहाँ गुरु का महत्त्व स्वीकारा है, वहीं नाथ का भी महत्त्व स्वीकार किया है। यह उक्ति लोक में स्थापित नाथों

के प्रति अपनी आस्था तो प्रकट करती ही है। समग्र नाथ पंथ के प्रति लोक स्वीकृति का आभास भी देती हैं।

गुरु की गरिमा और गुरु के पतनोन्मुख के भाव को भी लोक पूरे मन से व निष्पक्ष रूप से व्यक्त करता है। इसीलिए मैं लोक को निरपेक्ष कहता हूँ। लोक कहता है।

*लोभी गुरु लालची चेला, कोई एक सरीख।*
*अलख–अलख हाको करे, मांगण जावे भीख।।*

यदि गुरु लोभी और स्वार्थी हो और उसी प्रकार शिष्य भी लालची हो, तब यह मानना चाहिए कि दोनों एक दूसरे से छल कर रहे हैं। दोनों एक समान है। दोनों अलख का नाद लगाकर दर–दर भीख मांगने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर रहे। दोनों अपना और गादी का अपमान कर रहे हैं।

सच्चा नाथ वह होता है जो वेश की मर्यादा का ध्यान रखता है। जिस प्रकार सूरमा सत्य का त्याग नहीं करता। अपने राष्ट्रधर्म का पालन करने में पीछे नहीं हटता। भले ही वीरगति को प्राप्त हो जाय। सूरमा केवल वही नहीं होता, जो शस्त्र संचालन करता है। वह भी सूरमा ही है जो अपने धर्म का निर्वाह करता है। धर्मनिष्ठ भी सूरमा ही कहलाता है। सत्य की रक्षा में वह सदा सन्नद्ध रहता है।

केवल सेली सिंगी धारण कर लेने से और कानों में मुद्रणा धारण कर लेने से कोई सच्चा नाथ नहीं हो जाता। खप्पर धारण कर वेश बना लेने से कोई सिद्ध या नाथ कैसे कहला सकता है ? मुख्य बात है पंथ के आदर्शों का ज्ञान होना। उन्हें पालन करने की तत्परता होना। दृढ़ता होना।

सद्‌गुरु गोरखनाथजी ने तपस्या की और निर्मल पंथ की स्थापना की, किन्तु ये जोगी भ्रष्ट हो गए। इनके भ्रष्टाचारण से पंथ का यश कम पड़ा। अपयश और लोक अनास्था मिली। ये जोगी तो नरकगामी होंगे ही। पंथ को भी वे लोक से विमुख कर रहे हैं। या यूँ कहें कि लोक को पंथ से विमुख कर उसकी लोक स्वीकृति घटा रहे हैं।

यदि ये जोगी ये सिद्धजन सत्य पर दृढ़ रहें। अपनी मति को शुद्ध रखें तब, लोग उनका बहुत सम्मान करेंगे। उनके चरणों में धोक लगाएँगे। चरणों में नमन करेंगे और उनके सत्य ज्ञान सीखेंगे।

लोक निर्णायक शब्दों में कहता है। सिद्ध कभी भी भ्रष्ट नहीं होते। जो भ्रष्ट हो जाते वे सिद्ध नहीं कहे जा सकते। जो भ्रष्ट हो जाते हैं वे श्वानों की भाँति भोगी हो

जाते हैं। मृतक मांस खाते फिरते हैं। अर्थात् अभक्ष का सेवन करते हैं। लोक की ही क्षमता है जो इस प्रकार प्रताड़ना भरे शब्द कह सकता है। लोक जब मुग्ध होता है, तब सर्वभाव से समर्पित होकर सराहना करता है। स्वीकृति प्रदान करता है। जब लोक क्रुद्ध होता है, तब यह भर्त्सना करने से भी नहीं चूकता।

जिस गाँव में सिद्धों का वास होता है, वह तीर्थधाम के समान पावन हो जाता है। सिद्ध वही लोकमान्य एवं लोक स्वीकृत तथा लोक पूज्य होता है, जो सदा कमल पुष्प की तरह निर्मल रहता है तथा पूरे गांव को भी निर्मल बनाता है। वह सदा निर्लिप्त बना रहता है। किसी भी गाँव में वह दो–चार दिन से अधिक निवास नहीं करता। कहा भी है– बहता पानी और चलता जोगी सदा निर्मल बना रहता है। जो नाथ भ्रष्ट हो गए, वे पंथ से भी दूर हो जाते है। उनका कोई मान नहीं रह जाता है। वे पंथ में कांटे की तरह चुभते रहते हैं। पंथ उन्हें स्वीकार नहीं करता।

सद्गुरु गोरखनाथ ने कहा था कि–जगत का कल्याण करो। किसी को भी छोटा–बड़ा मत मानो। जात–पाँत, वर्गभेद मत स्वीकारो, सबका समान भाव से सम्मान करो।

जो भी नाथ अनाचार, भ्रष्टाचार, छल–कपट, माया–मोह से बच गया, वह बच गया। जो गया वह अपने दुष्कर्मों के कारण। यदि हमारा कर्म निष्फल है। यदि सत्य का मार्ग, मति–विचार हमारे सामने है तो हम निश्चित रूप से समाज में स्वीकृत होंगे। अन्यथा लोक हमारा बहिष्कार और तिरस्कार करके भुला देगा। ऐसा सद्गुरु गोरखनाथ ने कहा है। इसलिए गोरख ने कहा है– यदि समाज में सम्मान पाना है। लोक स्वीकृत होना है तो पहले स्वयं को मिटा दो। खुदी को समाप्त कर दो। अहंकार से मुक्त होकर निरहंकारी बन जाओ। तब फिर क्रोध से मुक्त हो जाओ, तब यह लोक तुम्हारा सत्कार करेगा।

सेली–सिंगी–मुद्रणा ये सब बाह्याडम्बर है। बाहर का स्वरूप हैं। ऊपर से अलख–अलख का घोष करने से लोक मान्यता नहीं मिलने वाली। यह बाहर का स्वरूप भी मान्य तभी होगा, जब तुम इस भेष का मान रख पाओगे। वह अलख तो भीतर बैठा हुआ है। पहले उसे पहचानो। उसको यदि जान लिया, तब तुम्हारा मन निर्मल हो जाएगा। तब तुम्हारा बाह्य स्वरूप भी लोकमान्य हो जाएगा। संतों ने भी यही कहा है। पहले 'स्व.' का अन्त करो, तब संत बन पाओगे।

उस परब्रह्म का सर्वत्र एक ही स्वरूप है। नाम भिन्न हैं। नाम भिन्न होने से ब्रह्म

तो भिन्न नहीं हो सकता, वह तो अभिन्न ही रहेगा। लाख नाम होने पर ब्रह्म के लाख स्वरूप नहीं हो सकते। वह तो ज्योतिस्वरूप है। एक और केवल एक ही है। करोड़ों रूपों में वही विद्यमान है। प्रकृति के सौंदर्य में जितने रूप समाहित है, उन सबमें ब्रह्म ही तो निहित है। घट भीतर केवल एक ही स्वरूप झलमला रहा है। वह किसी भी सम्प्रदाय, पंथ या धर्म का व्यक्ति हो। ब्रह्म का ज्योति स्वरूप एक समान ही है।

गोरख कहते हैं– नाथों का केवल एक ही धर्म निर्धारित है, वह लोक की पीड़ा को दूर करना। नाथ यदि आडम्बर से मुक्त रहे और धैर्य धारण करके रहे, तब उसका मान लोक में बना रहेगा। उसकी मान्यता नहीं घटेगी।

कहनी–करनी और सोच एक होना चाहिए। अर्थात् वह जो कहता है वही वह करे भी और विचारे भी। मन–वचन–कर्म से वह एक जैसा रहे। ऐसे नाथ को लोक नमन करेगा। उसका स्वागत अवश्य करेगा। उसे व उसके पंथ को स्वीकृति प्राप्त हो जायेगी। अन्यथा वह लोक में उपेक्षित ही रहेगा।

गोरख कहते हैं– यदि काचरी (खरबूजे जैसा छोटा फल) कितना भी सुन्दर लगे और यदि उसका स्वाद कड़वा हो, तब सब उसे चखते ही थू–थू करके थूंक देंगे। हे साधुजनों! हे नाथों! हे सिद्धों! इतने से उदाहरण में समझ जाओ। यदि तुम सुन्दर वेश बनाकर भी समाज में प्रस्तुत हुए और आचरण असुन्दर हुआ, तब लोक उस कड़वी कचरी की भाँति तुम्हारी उपेक्षा और तिरस्कार करेगा। तुम्हारी उपेक्षा के फलस्वरूप पूरा पंथ उपेक्षित हो जायेगा।

यदि गंगा नाले में मिल जाए, तब वह गंगा नहीं कहलाएगी। उसे नाला ही कहा जाएगा। उसमें गंदगी भी तो भरी हुई होगी। उसी प्रकार यदि कोई सज्जन पुरुष कुसंग में फँस जाएगा, तब अवश्य ही भ्रष्ट हो जायेगा। नाले के जल में न कोई गंगा की पावनता के भाव से स्नान करेगा, न सूर्य को अर्घ्य देगा और न आचमन लेगा।

इसीलिए गोरख ने नाथों के प्रति कहा है– सदा सतसंगत में रहो। असाधुओं की संगत करने से सुन्दर रंग भी बदरंग हो जाएगा। अर्थात् अच्छे गुण नष्ट होकर बुरे गुणों में बदल जाएँगे। हमारा आचरण भ्रष्ट हो जाएगा।

यदि हम ब्राह्मण और चाण्डाल में अन्तर करें और उका परिचय दें, तो कह सकते हैं जो गुरुमुख है वह ब्राह्मण है। जो गुरु बिमुख है वह चाण्डाल है। अर्थात् जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है न चाण्डल। कर्म से ही उसके पांडित्य की व चाण्डालपने की पहचान हो सकती है।

जाति–पाँति सब व्यर्थ की बात है। अर्थ तो कर्म की पहचान है। जिसका जो कर्म है, उसकी वही जाति मानना चाहिए। ब्रह्मा ने केवल दो जातियों की रचना की है। एक पुरुष एक नारी। अर्थात् एक पुरुष दूसरी प्रकृति। बाकी सब असत्य है। स्वार्थ के संसार ने जातियाँ बना ली है।

मनु ने चार वर्ण कहे हैं। चारों एक समान हैं। गोरख कहते हैं– मैं उनमें अन्तर नहीं करना चाहता फिर भी कहता हूँ सबसे बड़ा श्रमिक वर्ग है। जिस प्रकार एक पाप रूपी राक्षस सौ पुण्यों को खा जाता है, उसी प्रकार एक पापी पूरी नाव को डूबो देता है। पंथ में भी यही हो रहा है। सौ नाथों में कोई एक नाथ भ्रष्ट है। किन्तु उसके कारण पूरा नाथ पंथ लोक में उपेक्षित और अनादरित हो रहा है। उसकी लोक मान्यता घट रही है। एक भ्रष्ट्राचरण वाले नाथ के कारण लोक में प्रत्येक नाथ वेशधारी के प्रति आशंका व अविश्वास का भाव बना हुआ है।

गोरख ने इस साखी सबदी में नाथ की इतनी सटीक परिभाषा दी है, जैसी सबदी मूल रूप से गोरख की नहीं हो सकती, किन्तु यह भी सच है कि यह सबदी गोरख के आधार सूत्रों पर खरी उतरती है। यह लोकोवाच है।

लोक कहता है जो अगम है, अगोचार है, सत्पुरुष है, अजर है, अघोर (शिवस्वरूप है, बल्कि शिव है) जो सत्यं–शिवं–सुन्दर है। और जो सुनाथ है। जो आदि–अनादि और सत्य स्वरूप है, वही नाथों का नाथ आदिनाथ भगवान शिव है।

यह मन बहुत ही चंचल है। जिस प्रकार चंचल अश्व को वश में रखने के लिए लगाम की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार इस चंचल मन को वश में रखने के लिए संयम की आवश्यकता होती है। संयम ही मन की लगाम है। यदि इसे वश में नहीं रखा गया, तब यह मन रूपी अश्व युद्ध में (संसार व्यवहार में) कुरीतियों से लड़ने में भड़क सकता है। असंयमित होकर उच्छृंखल हो सकता है। पराजय दिलवा सकता है। हमारा सारा काम तमाम करके हमें अपयश दिलवा सकता है।

इस साखी में भी गोरख के नाथ पंथ की मूल अवधारणा पर प्रकाश डाला गया है। सहज भाव से कुछ प्राप्त करो। सहज भाव से ही प्रदान करो। सहज भाव से व्यवहार करो और सहज समाधि से साधना करो। यह सहजभाव ही नाथ पंथ का मूलभाव है।

लोक में एक किंवदंती बहुत चर्चित है–

*जो जगत में भटकी वह नाथों के यहाँ आकर अटकी।*

इसका अर्थ लोक में नाथों के आचरण के विरुद्ध किया जाता रहा है। जो जगत में भटकी अर्थात् ऐसी स्त्री जो अधिक पुरुषों से सम्पर्क में फिरती है। ऐसी स्त्री को लोक में 'छिनाल' कहा जाता है। छिनाल–छिबार–छिःनार। ऐसी नारी जिस से लोग छि–छि करें, अर्थात् घृणा करें। अर्थात् दुष्चरित्र वाली स्त्री, कुलटा, ऐसी स्त्री यदि नाथों के चुंगल में फँस जाए, तब वह उनकी होकर रह जाती है। उनकी भोग्या बन जाती है। यह साखी–

*जो भटकी जगत में, अटकी सांधा जाय।*
*सद्मत दे निरमल करी, सत री गेल बताय।।*

इस साखी की दूसरी पंक्ति में सारा भ्रम दूर हो जाता है। जो कुल्टा स्त्री जगत में सत्य से भटककर इधर–उधर या इससे–उससे सम्बन्ध स्थापित कर अमर्यादित होकर अपने धर्म से भटक गई थी। जब वह नाथों या नाथ के सम्पर्क में आई, तब उन्होंने या उसने उस कुलटा को सद्मार्ग का ज्ञान देकर इसकी मति को सतमार्गी बनाकर उसे निर्मल बना दिया। सच्चरित्रा बना दिया। इस प्रकार यह साखी नाथों के लोक कल्याणी चरित्र पर प्रकाश डालकर उन्हें लोक में श्रेष्ठता प्रदान करती है।

गोरखनाथ ने बावन भैरव, चौसठ जोगनियाँ और नौ नाथों की स्थापना की। (यह लोक धारणा है) बावन भैरव और चौसठ जोगणियाँ नाथ (शैव मत) और शाक्तमत दोनों में मान्य हैं। वे वस्तुतः एक प्रकार के सैनिक हैं। सहायक अथवा अपने स्वामी (नाथ) का कार्य सिद्ध करने में सहायक हैं। आयुर्वेद में भी बावन वायु का उल्लेख मिलता है। इन भैरवों व जोगनियाँ को लोक मान्यता प्राप्त है। आगे चलकर भैरव मदिरा सेवी और बलि सेवी हो गए और जोगणियों के स्थलों से वहाँ–वहाँ मदिरा की धार लगती है। कई जगह बलि भी होती है। यह पश्चातकाल के नाथों एवं शाक्तमत अनुयाइयों के भ्रष्ट आचरण एवं स्वयं–स्वाद के कारण परम्परा बनकर एक सामाजिक कुरीति बन गई। जो आज भी चालू है। होने को भैरव को शिव का सेनापति माना गया है। मदिरापान तो वह आज भी करता है। कुछ लोक भैरव (गौत्र भैरव) स्थापित हो गए। उन्हें भी गोत्रजों के द्वारा कहीं दाल–बाटी, कहीं उड़द–घूघरी और कहीं बलि (पशु बलि) का भोग लगाया जाता है। यह प्रथा आज एक कुरीति की भाँति समाज में व्याप्त है। नाथों एवं शाक्तों ने इसे स्थापित किया। फिर यह लोक स्वीकृत प्रथा बनी और आज यह परम्परा बन गई है। इस प्रथा या कहूँ परम्परा ने धार्मिक रूप लेने का प्रयास किया और यह सफल भी हुई। धर्म की सब अपनी–अपनी मति से परिभाषा करते रहे हैं– 'सः धर्म' का अर्थ सबने अपनी–अपनी सुविधा से तय किया है। जो लोग बलि या मदिरा

विरोधी है, उनकी परिभाषा भिन्न है और जो बलि समर्थक है, उनकी परिभाषा भिन्न है। धर्म तो लोचदार है। हिंसक और अहिंसक का अपना–अपना धर्म होता है।

बात नवनाथों की चली थी, तब उनका क्रम तक अपना–अपना निर्धारित है। कुछ नाथ आदिनाथ के बाद सीधा उदयनाथ का नाम लगाते हैं, किन्तु कुछ इस क्रम को आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, उदयनाथ, दंडनाथ, सत्यनाथ, संतोषनाथ, कूर्मनाथ, जलंधरनाथ और गोरखनाथ। यह सूची जोधपुर संग्रहालय के अनुसार है, किन्तु लगभग 18–20 पंथ आदिनाथ, उदयनाथ, सत्यनाथ, संतोषनाथ, अचलनाथ, कन्थड़िनाथ, चौरंगीनाथ, मत्यस्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ क्रम को मानते हैं।

एक छप्पय नाथों में बहुथा बखाना जाता है। जब नवनाथों का आव्हान करते हैं, तब इस छप्पय के अनुसार नवनाथों का आव्हान किया जाता है।

*आव गुरु गोरखनाथ, आव सिध बाल गुदाई।*
*घोड़ा चोली आव, आव खतड़ वरदाई।।*
*सिघ काणोरी आव, आव गोरख मछंदरी।*
*औघड़ भड़ग आव,करण बस पाँचू इन्द्र।।*
*धूंधली पाव हरत्रत, गाहण गोपीचंद भरथरी।*
*नवनाथ आप सिधा सहित, अलू प्राणरिच्छा करी।।*

इस प्रकार यह छप्पय अलूजी का रचा प्रतीत होता है। इसमें नवनाथ और तीन सिद्ध भी गिनाए गए हैं। अंतिम पक्ति में कहा गया है कि– हे नवनाथों! आप सिद्धों सहित पधारो। इसमें पहले क्रम गोरख और पाँचवे स्थान पर मछंदरनाथ का नाम है। ये क्रम आव्हान करने वालों के अथवा अपनी पंथ आस्था के अनुसार है। इनसे कौन सा नाथ पहले हुआ, यह तय करना संभव नहीं है। इतना अवश्य पता चलता है कि गोरख और मत्स्येन्द्रनाथ एक ही काल में हुए। एक सूची में चौरासी सिद्धों के नाम भी गिनाए गए हैं–

(1) सिद्धनाथ (2) कृष्णपाद (3) गंगानाथ (4) विचारनाथ (5) जालंधरनाथ (6) श्रंगारिनाथ (7) लोहिनाथ (8) पुण्यनाथ (9) कनकाबाई नाथ (10) तुषकाईनाथ (11) कृष्णपाद (12) गोविंदनाथ (13) बालगुदाई (14) वीरवंकनाथ (15) सारंगनाथ (16) बुद्धनाथ (17) विभांडनाथ (18) वनखण्डिनाथ (19) मंडपनाथ (20) भग्नभाण्डनाथ (21) धूर्मनाथ (22)गिरिवरनाथ (23) सरस्वतीनाथ (24) प्रभुनाथ (25) पिप्लनाथ (26) रत्ननाथ (27) संसारनाथ (28) भगवंतनाथ (29) उपन्तनाथ (30) चंदननाथ (31) तारानाथ (32)

खारपूनाथ (33) खेवरनाथ (34) छायानाथ (35) शरभनाथ (36) नागर्जुननाथ (37) सिद्धगोरिया (38) मनोमहेशनाथ (39) श्रवणनाथ (40) बालकनाथ (41) शुद्धनाथ (42) कायानाथ (43) भावनाथ (44) पाणिनाथ (45) वीरनाथ (46) सवाईपाद (47) तुकनाथ (48) ब्रह्मनाथ (49) शीलनाथ (50) शिवनाथ (51) ज्वालानाथ (52) नागनाथ (53) गंभीरनाथ (54) सुंदनाथ (55) अमृतनाथ (56) चिड़ियानाथ (57) गेरारावल (58) जोगरावल (59) जगमरावल (60) पूरणमल्लनाथ (61) विमलनाथ (62) मल्लिकानाथ (63) मल्लिनाथ (64) रामनाथ (65) आम्रनाथ (66) गहनीनाथ (67) ज्ञाननाथ (68) मुक्तानाथ (69) विरुपाक्षनाथ (70) रेवणनाथ (71) अड़बंग नाथ (72) धीरजनाथ (73) घौड़ाचौली (74) पृथ्वीनाथ (75) हंसनाथ (76) गैबीनाथ (77) मंजुनाथ (78) सनकनाथ (79) सुनन्दननाथ (80) सतान नाथ (81) सनतकुमारनाथ (82) नारदनाथ (83) निचकेतनाथ (84) कूर्मनाथ।

यहाँ इन 84 सिद्धों की सूची नहीं भी दी जाती, तब भी मेरी कार्ययोजना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु लोक साखियों में 32 वीं साखी में सिद्धों का उल्लेख किया गया है। इस कारण यहाँ नौ नाथों और 84 सिद्धों का खुलासा करना आवश्यक समझा गया। इस सूची के 68 क्रमांक पर मुक्ताई (मुक्ताबाई) का नाम दर्ज है। एक और सूची में भी मुक्तानाथ के नाम को 64 क्रमांक पर दर्ज किया गया है। इस प्रसिद्ध और सिद्धनाथ का वर्णन मेरे द्वारा संकलित सम्पादित भरथरी गाथा में आया है। यह विक्रमादित्य की रानी थी। सूर्योपासना करती थी। परमसिद्ध तपस्विनी थी। इसका नाम सतवंती था। विवाहित होकर भी यह बाल ब्रह्मचारिणी थी। महाराज विक्रमादित्य ने इसे सम्मानजनक उपासना तापस धर्म निर्वाहित करने की अनुमति व सम्मान दिया था। भरथरी प्रतिदिन भिक्षाटन पर आते थे और सतवंती से भिक्षा लेकर जाते थे। एक दिन सतवंती सूर्योपासना में निमग्न थी। नग्न अवस्था में जलकुंड में खड़ी वह सूर्य को जलांजलियाँ दे रही थी, उसी बीच भरथरी ने अलख लगाई। सतवंती उनकी अलख ध्वनि नहीं सुन पाई। भरथरी ने तीसरी बार अलख का नाद किया और सतवंती के बाहर नहीं आने के कारण वह आगे बढ़ गया। इसी बीच तीसरी अलख ध्वनि सतवंती ने सुन ली थी। वह उसी नग्न अवस्था में ही भिक्षा लेकर बाहर आई। तब तक भरथरी आगे बढ़ चुके थे। सतवंती पीछे–पीछे दौड़ रही थी। सतवंती को नग्नावस्था में जानकर भरथरी नहीं रुके। तभी सिद्ध गुरु ने सामने से आवाज लगाकर भरथरी को रोका। भिक्षा लेने का आदेश दिया। भिक्षा देकर सतवंती ने कहा है– सिद्धगुरु (गोरखनाथ) आप मुझे दीक्षा देकर धन्य करें। अब मैं लौटकर महल में नहीं जाऊँगी। सद्‌गुरु ने उसे दीक्षा देकर धन्य किया और अपने सिद्धिबल से उनके शीश के केश इतने लम्बे कर दिए कि

उसका समूचा तन एवं लज्जा ढँक गई। सिद्ध गुरु ने उसका नाम मुक्ता रख दिया। वह समस्त ग्रंथियों से मुक्त हो चुकी थी। मुक्ताबाई या मुक्ताई वहाँ से हिमालय की ओर चल पड़ी। तपस्या में लीन हो गई। फिर किसी ने उन्हें नहीं देखा।

(–देखें– मालवी आख्यान, डॉ. पूरन सहगल भरथरी खण्ड, प्रकाशक– आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी, भोपाल, पृ. 71–72 पद 472 से 493,

सिद्धों की इन दोनों सूचियों में मुक्ताबाई का नाम दर्ज होने से भरथरी का वह प्रसंग प्रमाणित हो गया। इसी प्रकार बुद्धनाथ (आसन दरियानाथ) का नाम सिद्धों में दर्ज होने से आसन दरियानाथ में बुद्धनाथ का वह युद्ध प्रसंग भी प्रमाणित हुआ।

ये नवनाथ और चौरासी सिद्ध अपनी सिद्धियों के बल पर अनेक चमत्कार कर सकते थे। ऐसे चमत्कार जो अविश्वसनीय लगते हैं। वे सृष्टि में कहीं भी अपनी मनोशक्ति के बल पर भ्रमण कर सकते थे और मनोभावों को जान सकते थे। इन सिद्धों व नाथों ने अनेक लोक कल्याणी कार्य किए हैं। इनके प्रति आज भी आस्था भाव कायम है। नाथ सम्प्रदाय इन चौरासी सिद्धों को धूनी देते हैं।

मैंने इन दिनों व पूर्वकाल में भी नाथ मढ़ियो, आसनों, डेरों और मठों का दर्शन किया है। उन सभी सिद्ध स्थलों पर हनुमानजी के मंदिर स्थापित पाए। नाथ हणुवंतजी को भी नाथ ही मानते हैं। जैसा मैंने पिछले पृष्ठों में भी लिखा है। प्रस्तुत लोक साखियों में हणुवंतजी का यश बखानती दो साखियाँ संकलित हैं। साखी क्रमांक 33–34 में हनुमान (हणुंवत) जी की यशावली में कहा गया है कि हणुवंतजी एक छलांग में सौ योजन पंथों के पार कर जाते थे। उनकी गति, मति और शक्ति को कोई भी नहीं जान सकता। वे शिव का रूप हैं। आदिनाथ का अंश हैं और सिद्धनाथ हैं। वे देवी अंजना और मारुति के वंशज हैं। पहली बार किसी साखी में पुत्र को माता और पिता दोनों का वंशज कहा गया है। अन्यथा पुरुष प्रधान व्यवस्था में पिता का वंशज कहा जाता है।

36 वीं साखी में नाथों–सिद्धों के आचरण पर टिप्पणी करते हुए कहा गया है कि सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए मांस–मछली का भक्षण करते हैं व मदिरा की धार लगाते हैं। मदिरापान करते हैं। सिद्धियाँ साधने के लिए सिद्धनाथजी पंचमकारी साधना का उपयोग करते है। (पंचमकारी साधना का उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया गया है)। सिद्धि साधना के लिये ये नाथ जन पंचमकारी का भोग करते हैं। ऐसा करके इन्होंने सद्‌गुरु गोरखनाथजी के आदेश की अवज्ञा की है।

सभी धर्म सुख और शांति के लिए स्थापित किए गए। सभी का लक्ष्य लोक कल्याण करना है। इसी उद्देश्य से सद्गुरु गोरखनाथजी ने कहा है– पानी को मोटे कपड़े में छानकर पीना चाहिए, अर्थात् कोई भी कर्म करते समय अथवा किसी भी आदेश–निर्देश का पालन करने से पूर्व अच्छी तरह उसका भाव व प्रभाव जान–समझ लेना चाहिए। सद्गुरु गोरखनाथजी कह गए हैं कि शील, सुकर्म और सुयोग का पालन करते हुए अपनी साधना करो, तभी आप सिद्ध हो पाएँगे, तभी लोक में तुम्हारा सम्मान हो पाएगा, तभी तुम्हें लोक मान्यता और लोक स्वीकृति प्राप्त हो पाएगी। किन्तु बाद के नाथ अपने पंथ से व पंथ के आदर्शों से भटक गए। उन्हें भोग का रोग लग गया। वे लोक से उपेक्षित होने लगे। उनकी लोक स्वीकृति का भाव घटने लगा। यहाँ तक कि लोग उन्हें भय और शंका की दृष्टि से देखने लगे।

जिन नाथों ने सत्य पर दृढ़ रहकर अपनी साधना में सत्य का परित्याग नहीं किया। शील और सद्ज्ञान पर सुचेत बने रहे। वे नाथ तर गए। उनका उद्धार हो गया और वे भगवान शिव के लोक पर जा पहुँचे।

नाथों का सबसे पहला धर्म है कि वे अपनी करनी व सिद्धियों का उपयोग जगत कल्याण में करें। ब्रह्मचर्य का पालन करें। आचरण और वाणी को निर्मल बनाकर रखे और गर्व और अहंकार नहीं करें।

जिन नाथों ने सत रख लिया, अपना नित नियम नहीं त्यागा, उनके चरण जहाँ भी पड़ेंगे, वह सब शुभ होगा। शगुन ठीक होंगे। सर्वत्र कुशलक्षेम बना रहेगा।

साखी कहती है– पारस पत्थर लोहे को कंचन तो बना सकता है, किन्तु वह अपने स्पर्श से अपने जैसा पारस नहीं बना सकता। सद्गुरु ने जगत को सुमार्ग दिखला दिया है। उसका अनुसरण करते हुए लोक कल्याण हो सकता है। उसी पर चलने पर लोक मान्यता और लोक स्वीकृति मिल सकती है।

जो लोग सत्य के मार्ग पर चले। जगत ने उनका खूब मान–सम्मान किया। जो सद्गुरु के मत पर चले, उन्हें यश मिला। उनकी कमाण सदा चढ़ी रही। यश पताका ऊँचे आकाश फहराती रही।

इस लोक वाणी की अंतिम पाँच साखियाँ मनासा में बिराजित जोगणियाँ रुण्डी वाले नाथजी महाराज की वाणी से मेरे संग्रह में रहीं। आज से लगभग 58 वर्ष पूर्व। वे आज भी सत्य हैं। तब भी सत्य हैं और भविष्य में भी सत्य रहेंगी।

मैंने जिस प्रसंग से एवं जिस लोकमान्य सिद्ध नाथजी के सौजन्य से अपनी बात प्रारंभ की थी। उन्हीं के प्रसंग एवं सौजन्य से अपनी बात को विराम भी दे रहा हूँ। इन थोड़े से पृष्ठों में मैं नाथपंथ या उसके आदर्शों अथवा उसके दर्शन पर अपने विचार प्रकट नहीं करना चाहता था। ऐसा करना न तो मेरा अभीष्ट था और न लक्ष्य। यह संभव भी नहीं था। जितना मैंने व्यक्तिगत रूप से नाथ पंथ को जाना–समझा और पहचाना, उतना भर मैंने यहाँ प्रकट करने का प्रयत्न किया है। मेरी कार्य योजना भी 'नाथ पंथ की लोक स्वीकृति' स्पष्ट करने के लिए थोड़ा सा तो नाथपंथ के विषय में कहना ही था। वही मैंने किया है। मैंने तो अपने पाठकों के सामने एक 'प्रतिप्रश्न' उपस्थिति किया कि वे निर्धारित करें या कर सकें अथवा ऐसा करने/कहने का प्रयत्न करें कि 'नाथ पंथ के प्रति लोक स्वीकृति' और अस्वीकृति के विषय में उनकी क्या राय हैं।

परिशिष्ट– एक

# गोरख कह्यो विचारि

गोरख ने बहुत विचार कर ही अपने पंथ की स्थापना की। अपना संदेश भी खूब विचार कर दिया। यह जो गाथा है– 'रहसी अमर सतगुरु गोरखनाथ'। नाथ पंथ और गोरख के सम्बंध में एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज भी है और नाथ पंथ के लिए आचार संहिता भी।

पिछले तीन महीनों से मैं 'नाथपंथ लोक स्वीकृति' पर शोध जैसा काम कर रहा था। तीन महीनों की यायावरी ने काम पूरा करवा दिया। 6 जुलाई 2015 को मैंने पाण्डुलिपि ' आदिवासी लोककला और बोली बिकास अकादमी, भोपाल की ओर प्रेषित भी कर दी। श्री अशोक मिश्र जी ने तुरंत उसकी पहुँच भी सूचित कर दी। यह काम मेरे अब तक कार्यों में सबसे अधिक श्रमसाध्य, अर्थ साहस और समय साध्य लगा। मैंने यूँ तो कई वर्षों तक एक–एक विषय पर काम किया है, किन्तु लगातार बिना रूके–बिना थके इतना श्रम पहली बार किया। इसक श्रेय श्री अशोक मिश्र जी को जाता है।

इन तीन महीनों में मैं पूरी तरह गोरखमय और नाथमय हो गया। ऐसा होना आवश्यक भी था। मेरा सोना–जगना–ओढ़ना–पहनना, बोलना–चलना, विचारना और कहना, करना सब एकनिष्ठ था। इस जुनून–जज्बे ने यह कार्य करवा दिया। कई बार सोते–सोते परचा हुआ– मानों कोई मुझे कुछ बताना या लिखाना चाहता है। मैंने आधी रात उठकर लिखा भी, विषय जीना इसी को कहते हैं। शायद शोधार्थी इस भाव को समझे। अब विराम देना चाहता हूँ, वर्ना सारा जीवन इसी में बीत जाएगा। लोक में बहुत है। श्रुति–स्मृति का देश है भारत।

एक काम पूरा हो जाने के पश्चात् दिनचर्या में एक ठहराव आता है, उसे मैं शून्यकाल कहता हूँ। दूसरे काम में मन नहीं लगता, तब मैं किसी यात्रा पर चला जाता

हूँ। इस बार भी मैंने यही किया। मैं 8 जुलाई को भरतपुर (राजस्थान) के निकट नदवई नगर के लिए रवाना हो गया। वहाँ मेरे सम्बंधीजन है। सोचा 2–3 दिन रूक जाऊँगा। 9 जुलाई वहाँ प्रातः पहुँचा। मेरे एक सम्बंधी का फ्रेक्चर हुआ था। उनकी पूछताछ की, भोजन किया, तभी वहाँ एक कनफाड़ा जोगी दिख गया। मैंने उससे बात तक नहीं की। चित्त फिर गोरख में जा पहुँचा। मन उद्विम्न हो गया। नाथ से मुक्ति नहीं मिल पा रही थी। दूसरा कार्य सूझ नहीं पड़ रहा था। गवरी बाई पर काम अधूरा था। उसे पूरा करना है। मन ऐसा उचटा कि वापिस लौट पड़ा। 10 जुलाई को मनासा आ गया।

रात भर नाथों के सपने आते रहे। ऐसा लगा मानों मैं नाथ पंथ का जोगी बन गया हूँ। उसी प्रभात सपना हुआ मानों कोई वृद्ध जोगी मुझे कुछ लिखने के लिए प्रेरित कर रहा है। नींद खुली, वृद्ध नाथ जोगी कहीं नहीं था, होता भी कैसे? सपना टूटा, किन्तु जोगी से पिण्ड नहीं छूटा।

तभी अजय गरालिया का फोन आया 'दादा क्या कर रहे हो?' कुछ नहीं, मैंने उत्तर दिया। 'भंवर माता चलने का मन हो तो बताओ'? मैंने तत्काल 'हाँ' कह दी। अगले घण्टे हम रवाना हो गए। बिना घर में बताए। बाजार से खाना बंधवाया। 11 बजे हम भंवर माता धाम पहुँच गए। दर्शन किए। जैसे ही मैं पलटा, देखा एक शिला पर एक वृद्ध जोगी बैठा मुस्करा रहा है। सपना साकार होता लगा।

मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने कहा– 'आ गए?' मैं उनके प्रश्न से अचम्भित था। खैर, बातें होने लगी। वे मुझे नाथजी पुकार रहे थे। मैंने उन्हें अपना नाम पूरन, बताया तो वे पूरन नाथ पुकारने लगे। यह मेरी जोगिया वेशभूषा का प्रभाव था। यही मेरी कार्य शैली भी है। 'पानी तेरा रंग कैसा? जिसमें मिलाओ उस जैसा।' मैंने निःसंकोच कहा– महाराज! क्या नाथ पंथ और गोरख के विषय में कोई भजन, गाथा या आख्यान याद है?

वे मुस्करा कर बोले– इसीलिए तो बुलाया है आपको। उन्होंने बिना विलम्ब किए झोले में से एक पुरानी पोथी निकाली और कहा– लिखो। मैंने भी यंत्र की तरह लिखना शुरू कर दिया। अजय साथ बैठे रहे, जहाँ मैं नहीं समझ–सुन पाता था अजय सहयोग कर रहे थे। लगभग डेढ़ घण्टे में 64 साखियों की गाथा और दो वाणियाँ मैंने लिख ली। वे अत्यंत प्रसन्न एवं तृप्त लगे। मानों उन्होंने जीवन का कोई बड़ा दायित्व पूरा कर लिया हो। उन्होंने पोथी समेटी और उठ खड़े हुए। मैंने कहा– महाराज! भोजन कर लें। वे रूके और बोले– मेरा काम हो गया। उम्र पक गई, अब क्या भरोसा। आपको

लिखवा दी, अब आप जानो। ऐसा कहते ही वे चलने को हुए, मैंने मनुहार की– महाराज भोजन कर लें।

– कहीं है भोज? उन्होंने कहा।
– मेरे पास है, गाड़ी में रखा है।
– यहाँ तो बंदर बहुत है। झपट लेते हैं। मैं तो यहाँ आता रहता हूँ।
– महाराज, चलिए गाड़ी में बैठकर खाएँगे।
– वे चल पड़े।

गाड़ी के पास पहुँच कर बोले– खाना दे दो मैं आगे जाकर खा लूँगा। अजय ने सारा खाना उठाकर उन्हें थमा दिया। वे मुस्कराए उनकी मुस्कराहट में भी मोहक जादू था। उन्होंने निःसंकोच खाना ले लिया और चल पड़े, रूके नहीं। उनकी दिव्य आभा और मुस्कान भुले नहीं भूला पा रहा था

हम अब क्यों रूकते, चल पड़े, सादड़ी में खाना खाया और शाम को घर लौट आए। यह गाथा और लोकवाणी किसने लिखी, कब लिखी इसका कोई उल्लेख नहीं हैं। सम्पत नाथ ने बताया था। यह तीन पीढ़ियों की अमानत रही है। इसमें तीन पीढ़ियों से पहले मेरे परदादा संभवनाथ ने यह गाथा उतारी थी या लिखी थी। बस इतना ही जानता हूँ। जो भी हो यह गाथा लोक से प्राप्त लोक को समर्पित। नाथपंथ और गोरखनाथ के प्रति मेरा अंतिम श्रम पुष्प है। इस विषय से विराम मिले तो ही अगला काम सूझ पड़े।

## रहसी अमर सतगुरु गोरखनाथ

*सारॉं पेलॉं सवरूँ सारदा, सुद–बुद देवणहार।*
*हिवड़े कंवलॉं बेठ ने, सृजन करावणहार।। 1।।*
*संवरूँ तो संवरूँ गणपति, रिद–सिद रा दातार।*
*मन चित राखे धीरतो, सत मत देवणहार।। 2।।*
*सीस नमाऊँ खम्भ कहूँ, हिंगलाजॉं दरबार।*
*तीन ताप परमा करे, आद सगत औतार।।3।।*
*आदनाथ सिव सींवरूँ, सिंवरूँ गिरजा मात।*
*जतियाँ सतियाँ सींवरूँ, धरें सीस पे हात।।4।।*
*नाथ मछंदर सुँवरूँ, सद्गुरू सदा सहाय।*
*गोरख सुँवरूँ आद ने, सिद्धाँ सुमत रखाय।।5।।*

*नवनाथा ने सिंवरतां, जोगणियाँ ने ध्याउँ।*
*गोरख रा गुण गावताँ, भूले नी पड़ जाऊँ।।6।।*
*सिवजी रा औतार हे, हणुमत गोरख नाथ।*
*सिव–सिवाँ रा अंस ने, सदा नमाऊँ माथ।।7।।*
*बिसहत्थी दुर्गा नमूँ, आद सगत जगमात।*
*बीस भाव नवरुप में, अछरा माई सात ।।8।।*
*नंदी सिंवरूँ सदमताँ, अटल नाथ कहलाय।*
*जठे–जठे सिवजी पुजे, नंदी पूज्या जाय।।9।।*
*सात दीप नवखण्ड में, हिंगलाजाँ रो मान।*
*नाथाँ री दाती कहूँ, नाथ राखजो ध्यान।।10।।*
*गोरगसा रे कारणे, क्रसन लियो औतार।*
*गौआँ री रगसा करी, नाम धर्‌यो गोपार।।11।।*
*साधजना रो दुख हरण, साता राखण हेत।*
*जुग–जुग में अवतार ले, प्रगट्या सगत समेत।।12।।*
*आपद आवे धरम पे, परगट वे औतार।*
*मरजादा रे कारणे, गोरख रो निरधार ।।13।।*
*विकरम रे सम्मत समै, गोरख अलख जगाय।*
*आदिनाथ रो हुकम ले, नाथपंथ सरसाय।।14।।*
*आदिनाथ रो हुकम अर, हिंगलाजाँ री दात।*
*नाथ मछंदर री मेहर, गोरख माथे हात।।15।।*
*नाथ पंथ थापित करयो, गो रगसा रे काज।*
*धरती ऊपर आ पड़ी, पाप करम री गाज।।16।।*
*आद पुरख रो हुकम पा, गोरख थरप्यो पंथ।*
*साँच वाच संजम नियम, इन्दीय संजम संथ।।17।।*
*डग–डग में देवत दिखे, पग–पग कपटी साध।*
*अवडम्बर एसा बढ़या, असल धरम में बाध।।18।।*
*चारी पग लुंजो वियो, धरम वियो बेहाल।*
*मारग भटक्या साधजन, बेढब चाले चाल।।19।।*
*ना कोई देखनहार हे, ना कोई राखण हार।*
*धरती रो धीरज छुट्यो, रोवे जारो जार।।20।।*
*गो माता बाँ–बाँ करे, धरती बढ़या पाप।*
*भर्‌यो घडूलो पाप रो, गो माता रो स्राप।।21।।*

आद सगत हिंगलाज ने, करी जुगत निरधार।
आदिनाथ सिव अंस ती, गोरख रो औतार।।22।।
हिंगलाजाँ री सगत ले, सद्गुरू जी रो ज्ञान।
गोरख री दिस्टी मली, पंथ चढ़या परवान।।23।।
दुखियाँ रो दुख मेटणे, भटक्याँ गेल वताण।
गोरख सिरज्यो पंथनव, सूधी करी सिखाण।।24।।
मारण जाणो–मारण आणो, निमती रेहवे आँख।
सद्गुरू गोरख नाथ ने, परबोध्यो सद् पाँख।।25।।
अलख निरंजन आद ने, हिरदा भीतर राख।
तन–मन–चित वे निरमलो, आदनाथ री साख ।।26।।
सूरज ऊगे भीतराँ, चटक उजारो होय।
तमसो मीटे भरम रो, छल नी पावे कोय।।27।।
गोरख सुथरो ज्ञान दे, सूधी कर दी राह।
लोक जगत जागण लगी, नाथ पंथ री चाह।।28।।
जात–पाँत जाणू नहीं, सबै धरम हे एक।
एक ब्रहम एको धरम, साँच नेम री टेक।।29।
एक मात एको पिता, एक अंस रा पूत।
भाँत–भाँत नामो धरे, जाणो कुटल कपूत।।30।।
चलणो फरणो बैठणो, कहणी–करणी दीठ।
गोरख संजम राखणो, भासा बोली मीठ ।।31।।
गोरख वाणी सदमती, सद्गुरू सदा सहाय।
सुगरो रेहवे सदमतो, नुगरो झोला खाय।।32।।
सतगुरू तारण हार हे, गोरख कह्यो विचार।
भोग रोग गहरो लगे, सद्गुरू मेटण हार।।33।।
सतगुरू ने सेवे नहीं, सेवे भोग विलास।
ऐसा नुगरा मनख ने, घोर नरग रो वास।।34।।
भेख धर लियो साध रो, करे कपट रो काम।
भोरा मनखाँ ने ठगे, काँकड़ करे मुकाम ।35।।
भोरी देखे तीमताँ, भर दे भय रो भूत।
गंडा डोरा बाँधताँ, बाँधे कारा सूत।।36।।
दारू में गड़गच रहे, भाँग धतूरा खाय।
गाँजा री चिलमा भरे, गेहरो धुओं उड़ाय।।37।।

*बलि चढ़ावे कूकड़ा, रूच–रूच खावे माँस।*
*अजब–गजब हाका करे, दुरगंध वासे साँस।।38।।*
*एसो कपटी साध वे, नर पसु कह्यो जाय।*
*देह वटारे खूद री, नाथ भेख सरमाय।।39।।*
*मदिरा मुदरा सेवताँ, करे बिलासी भोग।*
*दुरमत भटक्या जोगड़ा, लग्यो भोग रो रोग।।40।।*
*भोग रोग एसो लग्यो, करे पंथ बदनाम।*
*काम क्रोध मद, मोह बंध, गोरख घर ले नाम।।41।।*
*गोरख रा गुण हे नहीं, अलख–अलख गुर्राय।*
*भेदखुल्याँ संसो बणे, लात झपट्टा खाय।।42।।*
*गोरख तो जुग–जुग विया, लियो मनख औतार।*
*भवसागर में डूबताँ, कर दियो सहजाँ पार।।43।।*
*करजुग में तेजल विया, गोरख रा औतार।*
*नारायण देवत विया, गो माता रखवार।।44।।*
*गोरख रा आसीस ती, प्रकट्या गोगापी।*
*विस चूघे सिंवजी समाँ, जगत बंधावे धीर।।45।।*
*रामदेवजी औतर्या, गोरख रा औतार।*
*भैरो रागस मार्यो, जग दुख देवणहार।।46।।*
*सो करोड़ हे देवता, गोमाता रे माँय।*
*गोमाता ने त्रासताँ, सुक्ख मिलण रो नाँय।। 47।।*
*सतगुरू गोरख ने दियो, निरमल रो उपदेस।*
*सहजा रेहवो जगत में, सुथरो राखे भेस।।48।।*
*चलतो जोगी निरमलो, ढबयाँ माया बंध।*
*भेंट जुवारी लेवताँ, पड़े मोह रे फंद।।49।।*
*बहतो पाणी निरमलो, ढबयाँ मैलो होय।*
*कीट पड़े दुरगंध उड़े, मरे ढबे ने कोय।।50।।*
*रात ढबे भोजन भखे, करे अलख रो गान।*
*पेल परोड़े चल पड़े, नत रो रेहवे मान।।51।*
*गोरख ने चेला कर्या, बड़ा–बड़ा गुणवान।*
*राजा जोगी भरथरी, खूब बढ़ायो मान।।52।।*
*सात बरस तपसा तपी, अटल समाधी बैठ।*
*ग्रंथाँ रो सिरजन कर्यो, करी ग्याम में पैठ।।53।।*

*भीख माँग दाता बण्या, भरथरी साँचा नाथ।*
*सद्गुरू गोरख रे चरण, सदा नमायो माथ।।54।।*
*नाथ धजा फर–फर उड़े, गगन मंडल रे बीच।*
*कँवल सदा ऊजल रहे, जलम लियो पण कीच।।55।।*
*कीच मध्य में जलमयो, निरमल जल असनान।*
*ताल ऊपराँ झलमले, जगत करे गुणगान।।56।।*
*नाथ पंथ री साख ले, खूब मले सनमान।*
*नाथाँ–सिद्धाँ ने कर्‌यो, जगती रो कल्यान।।57।।*
*जठे–जठे सिद्ध तपस्या, करयो जठे मुकाम।*
*वठे–वठे कायम विया, आसन, मढ़ी सुधाम।।58।।*
*राजा महाराजा विया, नाथ पंथ रा दास।*
*वका पड़याँ शरणाँ गया, खूब करी अरदास।।59।।*
*दान दिया रूतबा दिया, दियो मान सनमान।*
*सिद्धाँ नाथाँ ने दियो, राजधरम रो ज्ञान।। 60।।*
*सात दीप नौ खण्ड में, नाथ पंथ लेहराय।*
*सतगुरू गोरख नाथ री, धरम धज फेहराय।।61।।*
*जणनाथाँ सत छोड़यो, भूलि गया सत ज्ञान।*
*दर–दर सूकर–स्वान ज्युँ, झेल रहया अपमान।।62।।*
*नाथपंथ ने जाण लो, नदी कनारे दूब।*
*गायाँ गडराँ घुट चरे, काल परोड़े खूब।।63।।*
*जतरे सूरज चंद्रमो, धरा सेस रे माथ।*
*वतरे तो रेहसी अमर, सतगुरू गोरख नाथ।।64।।*

–सौजन्य– लोक गायक– सम्पतनाथ, भंवरमाता शक्तिधाम

## सद्गुरू गोरखनाथ सदा अमर रहेंगे

मैं सबसे पहले माता शारदा का स्मरण करता हूँ। वह हृदय के कँवल में बैठकर मुझसे सृजन करवाती है। वही बुद्धि की देने वाली हैं। फिर मैं रिद्धि–सिद्धि के दातार गणपति का स्मरण करता हूँ। गणपति मन और चित्त में धैर्य रखते हैं और सद्बुद्धि प्रदान करते हैं।

मैं माता हिंगलाज के दरबार में बार–बार क्षमा माँगता हूँ। शीश नवाता हूँ हिंगलाज माता त्रिताप दूर करती हैं। वह आदिशक्ति की अवतार हैं। मैं आदिनाथ शिव

का और माता गिरजा–पार्वती का स्मरण करता हूँ। मैं यतियों और सतियों का भी स्मरण करता हूँ, वे मुझे आशीर्वाद दें। मेरे शीश पर उनका वरदहस्त सदा बना रहे। मैं अपने सद्‌गुरु मछंदरनाथ का स्मरण करता हूँ, वे सदा मेरी सहायता करें। मैं आदि गोरख का स्मरण करता हूँ। मैं चौरासी सिद्धों और नौ नाथों का स्मरण करता हूँ। जोगणियों का ध्यान लगाता हूँ। मैं सद्‌गुरु गोरख का गुणगान करना चाहता हूँ। सभी मेरी सहायता करें, मुझसे कोई भूल–चूक नहीं होने पाए। हनुमानजी व गोरख नाथ ये दोनों शिवजी के अवतार हैं। मैं शिव और शिवा (पार्वती) के इन अंश अवतारों के समक्ष शीश नवाकर वंदन करता हूँ।

इस गाथा में यद्यपि कहीं भी गाथाकार का नाम एवं सृजन समय नहीं मिलता, तथापि यह गाथा नाथ पंथ और उसके संस्थापक गोरखनाथ पर महत्त्वपूर्ण चर्चा करती है।

पहली बार किसी गाथाकार ने 'आदिगोरख' का उल्लेख किया है। आगे चलकर आदि गोरख की अवतार परम्परा का भी उल्लेख किया गया है। इसी कारण यत्र–तत्र कहा गया है– 'जुग–जुग में गोरख विया'।

गाथाकार आगे कहता है– मैं बीस भुजाधारी दुर्गा को भी नमन करता हूँ। वे ही तो आदिशक्ति हैं। वे ही जगजननी हैं। दुर्गा के नौ स्वरूपों (नव दुर्गाओं) और बीस भावों (लोक में शक्ति को बीस भावों में बखाना गया है) का भी वंदन करता हूँ तथा सातों अछरा मायों को भी नमन करता हूँ। मैं अटल नाथ नंदी का भी स्मरण करता हूँ। वे आदिनाथ शिव के साथ–साथ समपूज्य हैं। जहाँ–जहाँ भी शिव विराजित हैं, वहाँ–वहाँ नंदीनाथ भी विराजित हैं। शिव वंदन के पश्चात् नंदी का वंदन अनिवार्य माना गया है।

सातों द्वीपों और नौ खण्डों में माता हिंगलाज का मान है। वह नाथों की कुलदेवी हैं। हे माता! आप नाथों पर सदा कृपा रखना।

गो रक्षा के कारण कृष्ण ने अवतार लिया। उन्होंने गौओं की रक्षा की तथा अपना नाम गोपाल धारण किया। वे भी गोरख अवतार हुए। उन्हें युग का पूर्ण अवतार कहा गया है। उन्होंने सज्जनों (सतपुरुषों–सामान्यजनों ) की रक्षा, उनकी कुशलक्षेम जानने और उनके दुःखों को दूर करने के लिए शक्ति सहित युग–युग में अवतार लिया। (नाथ सम्प्रदाय उन्हें भी नाथ पुकारता है)

जब भी धर्म पर आपदा आती है, तब अवतार प्रकट होते हैं। मर्यादा की रक्षा के कारण गोरख के अवतार का विधाता ने निर्धारण किया। विक्रमादित्य के काल में गोरख

ने अलख का जयघोष किया। उन्होंने आदिनाथ भगवान शिव का आदेश पाकर नाथ पंथ की स्थापना की। ये गोरख का कलयुग अवतार माना जाएगा।

पूर्व में आदिनाथ गोरख तो हुए, किन्तु नाथ पंथ की स्थापना विक्रमादित्य के काल के आस–पास (पूर्व) गोरखनाथ ने की। वे नाथपंथ के आदि संस्थापक माने जाते हैं।

गोरख ने आदिनाथ के हुकुम से, हिंगलाज माता के आशीर्वाद से नाथ पंथ की स्थापना की। उनके शीश पर सद्गुरु मछंदरनाथ का वरद्हस्त था। गोरख ने गोरक्षा के कारण तथा धरती पर पाप कर्म की गाज (हिमपात) के कारण नाथपंथ की स्थापना की।

गोरख ने आदिपुरुष (आदिगोरख अथवा आदिनाथ शिव) के आदेश से पंथ स्थापित किया। आदिपुरुष का आशय भगवान आदिनाथ नहीं हो सकता, निश्चित ही इसक अर्थ 'आदिगोरख' से ही गाथाकार लगाता है।

गोरख ने सत्य, वचन की दृढ़ता, संयम, नियम और इन्द्रीय निग्रह का संदेश अपने अनुयाइयों को दिया। उनके समय डग–डग पर अनेक देवता (बहुदेव पूजा) तथा पग–पग पर कपटी साधुओं की भरमार थी। अनेक आडम्बर समाज में व्याप्त हो गए थे। उनके होते धर्म की मूल भावना लुप्त हो गई थी। धर्म के चारों चरण लुंज–पुंज हो गए थे। वह बेहाल हो गया था। साधु अपना मार्ग भटक गए थे। वे बेढब चाल चलकर समाज को भटका रहे थे। न कोई उस दुर्दशा को देखने वाला था और न कोई रक्षक था। धरती माता धैर्य खो चुकी थी। वह अपनी दुर्दशा पर विलाप कर रही थी। गौमाता दुःखी होकर बाँय–बाँय कर अपनी कातर आवाज से अपनी रक्षा हेतु गुहार करने लगी थी। धरती पर पापाचार बहुत बढ़ गया था। गौमाता के श्राप से पाप का घड़ा भर चुका था।

ऐसी स्थिति में आदिशक्ति हिंगलाज माता ने युक्ति निर्धारित की और आदिनाथ शिव के अंश से गोरख का अवतार हुआ। गोरखनाथ ने माता हिंगलाज की शक्ति के बल पर तथा सद्गुरु मछंरनाथ से प्राप्त ज्ञान के आधार पर नाथ पंथ की स्थापना की। गोरख की सहज दृष्टि के फलस्वरूप नाथपंथ लोक स्वीकृत हुआ। उसकी यश पताका चारो ओर फहराने लगी।

दुखियों का दुःख मिटाने के लिए और भटकों को सुमार्ग बताने के लिए गोरख ने एक नवीन पंथ का सृजन किया। उनका उपदेश अत्यंत सहज था।

गोरख ने अपने उपदेश में कहा– अपने मार्ग आओ और अपने मार्ग जाओ। दृष्टि झुका कर चलो। सद्गुरु गोरखनाथ जी ने यह सत्य पक्ष सबके सामने कहा।

अपने ह्रदय में अलख निरंजन की स्थापना करो। तन–मन और चित्त से निर्मल रहो। छल–कपट को आचरण में मत आने दो। यदि है तो निकाल बाहर करो। यदि अलख निरंजन ह्रदय के भीतर आ जायेंगे तो समस्त बुराईयाँ ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, मद, लोभ, काम–क्रोध, मोह–माया सब बाहर भाग खड़े होंगे। उनके स्थान पर सत्य–शील, शुचिता, करूणा, दया–दान आदि धर्म भाव स्वतः जागृत हो जाएँगे।

भीतर एक ज्योतिर्मय सूर्य का उदय हो जाएगा। उज्ज्वल प्रकाश फैल जाएगा। छल–कपट का तमस मिट जाएगा। तब तुम्हें कोई छली छल नहीं सकेगा। गोरख ने ऐसा सहज ज्ञान देकर भटकाव को दूर कर जीवन की राह सहज बना दी।

गोरख के ऐसे लोक कल्याणी उपदेश का लोगों पर बहुत प्रभाव हुआ। लोक में नाथपंथ के प्रति स्वीकृति का भाव उत्पन्न हो उठा। गोरख ने कहा– मैं जाति भेद पर विश्वास नहीं करता। सभी धर्म समान हैं। विश्व में एक ही ब्रह्म है। एक 'ओंकार' का संदेश देकर उन्होंने कहा– सबके पिता और माता एक हैं। सभी एक अंश से उत्पन्न हैं। हमने भाँति–भाँति के नाम रख लिए। धर्म और परमात्मा एक ही है। सबका स्वामी वही एक है। सृष्टि का सर्जन भी वही एक ब्रह्म ही है।

गोरख कहते हैं– चलना, फिरना, बैठना, कथनी–करनी और दृष्टि (विचार) तथा आत्मसंयम, इन्द्रिय संयम और शुद्ध भाव, ये सब शुद्धाचरण के लिए आवश्यक है। बोली मीठी होना चाहिए।

गोरख की वाणी (उपदेश) सद्मति देने वाली है, सद्गुरु सदा सहायक रहते हैं। जो गुरु सम्मुख होता है, उसकी मति शुद्ध होती है। जो गुरु विमुख होता है, वह अधोगति को प्राप्त होता है।

गोरख कहते हैं– सद्गुरु सक्षम है। कुशल खिवैया है। वे भवसागर से पार उतार सकते हैं। वे ही भोग के रोग मिटा सकते हैं। जो व्यक्ति सद्गुरु का उपदेश आचरित नहीं करता और भोग–विलास में लीन हो जाता है। ऐसे निगुरे (गुरु विमुख) व्यक्ति को घोर नर्क में जाना पड़ता है।

गोरख कहते हैं– जिसने साधू वेश धरण कर लिया और कपट का आचरण करता है, भोले–भाले लोगों को ठगता–फिरता है। नगर के बाहर (कांकड़) जंगल में निवास करता है, भोली–भाली स्त्रियों में भूत–प्रेत का भय उत्पन्न कर उन्हें भयातुर करता है। गंडे–डोरे और काले सूत बाँधकर उपचार के बहाने उन्हें ठगता हैं। दिन–रात मदिरा में मदांध रहता है। भाँग–धतूरे का सेवन करता है। गाँजे की चिलम

पीकर धुआँ उड़ाता है। मुर्गों की बलि चढ़ाकर उसके माँस को रूच–रूच खाता है। डरावने घोष करता रहता है। जिसके मुँह से मदिरा और मांस की दुर्गंध आती रहती है। ऐसे कपटी साधू को 'नरपशु' कहा जाएगा। ऐसा नरपशु साधू होकर दुष्कर्म करता है, इससे वह स्वयं तो भ्रष्ट होता ही है, साथ में नाथ भेष को भी लज्जित करता है।

जो नाथ मदिरा, मुद्रा आदि (पंचमकारी) का सेवन कर नाथ पंथ को अपयश प्रदान करता है। उसे भोग का रोग लग चुका है। भोग का असाध्य रोग ऐसा लगा है कि पंथ बदनाम हो रहा है।

वह काम, क्रोध, मद, मोह के बंधनों में जकड़ा रहता है। फिर अहंकार वश अपना नाम गोरख धर लेता है। उसमें गोरख के गुण तो होते नहीं। व्यर्थ में अलख–अलख गुर्राता फिरता है। जब उसके छली स्वभाव का भेद खुल जाता है, तब मुसीबत में फँस जाता है और लातों और झापड़ों की मार खाता है।

गोरख तो हर युग में अवतरित हुए। उन्होंने मनुष्य रूप में अवतार लेकर लोक कल्याण किया। दुखियों का दुःख दूर किया। भवसागर में डूबने वालों को सहज ही पार उतार कर उनका उद्धार किया।

कलयुग में तेजाजी हुए। वे भी गोरख के अवतार थे। गोरक्षा करते उन्होंने अपने प्राण न्योछावर कर दिए। दूसरे देवनारायण हुए। वे गोमाता के पालक व रक्षक हुए। गोरख नाथ जी के आशीर्वाद से गोगापीर हुए। जिस प्रकार शिवजी ने विष (गरल) पान कर लोक कल्याण किया था, उसी प्रकार गोगापीर भी नाग विष–चूसकर लोगों के प्राणों की रक्षा करते हैं। गायों तथा अन्य पशुओं एवं मनुष्यों को नाग विष से मुक्त करते हैं। रामदेव जी हुए वे भी गोरख के अवतार माने जाते हैं। कृष्ण भी तो गोरख थे। रामदेव जी कृष्ण के अवतार अर्थात् गोरख अवतार। रामदेव जी ने दुराचारी भैरव राक्षस (नाथ) को मारकर लोक कल्याण किया। जाति भेद समाप्त किया। वे सदा जागृत पीर कहलाये हैं। गौ चोरों से गायों की रक्षा करते हैं। दुःखियों की पीड़ा दूर करते हैं। वे 'हाजिर हजूर' कहलाते हैं। पुकारते ही उपस्थित होते हैं। गोमाता में सौ करोड़ देवी–देवता निवास करते हैं, जो भी गो को त्रास देगा उसे कभी भी सुख नहीं मिल सकता है।

सद्‌गुरु गोरखनाथ ने सदा शुद्धता का उपदेश दिया। उन्होंने कहा– सहज रहो और शुद्ध जीवन बिताओ। जो जोगी चलायमान रहेगा। वह निर्मल रहेगा। जो अधिक दिन नगर–गाँव मुकामी रहेगा, वह निर्मल नहीं रह पाएगा। वह माया मोह के बंधन में

बंध जाएगा। वह भेंट और उपहार लेना प्रारंभ करेगा। माया के बंधन में बधेंगा। चरित्र में विकार आएगा। जो जल बहता रहता है, वह निर्मल रहता है और जो रूका रहता है वह दुर्गंध युक्त हो जाता है। उसमें कीड़े पड़ जाते हैं। उसके निकट कोई नहीं रूक सकता। इसलिए साधू को चाहिए जहाँ रात रूके, भोजन करे, वहाँ रात में अलख का गुणगान करे और पहली प्रभात प्रस्थान कर दे। इससे उसका मान सदा बना रहेगा।

गोरख ने बड़े–बड़े गुणवान शिष्य बनाए। उनमें राजयोगी भरथरी का यश खूब बढ़ा। भरभरी ने अपने गुरु गोरखनाथ का और नाथ पंथ का खूब यश बढ़ाया। भरथरी ने सात वर्षों तक (इस अवधि के लिए भिन्न–भिन्न मत हैं। कहीं–कहीं बारह वर्ष भी कहा गया है) अटल समाधि में बैठकर तपस्या की। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की। वे भिक्षा माँग कर दाता बन गए। (दाता–नाथ–स्वामी–ज्ञान दाता) साधू तो वैसे भी आशीर्वाद दाता होता है। वे सच्चे नाथ सिद्ध हुए। उन्होंने सदा अपने गुरू का चरण वंदन किया।

नाथ पंथ की यश पताका गगन मंडल में फहरा रही है। कमल कीचड़ में पैदा होता है, फिर भी सदा निर्मल रहता है, वह जल में स्नान करके निर्मल बनता है। किन्तु जल में लिप्त नहीं होता। उसी प्रकार सच्चा योगी भी संसार रूप कीचड़ में जन्म लेकर भी निर्मल व सत्चरित्र बना रहता है। निर्लिप्त बना रहता है। नाथों और सिद्धों ने नाथपंथ का यशवर्द्धन किया। नाथपंथ के यश को धारण कर उनका खूब मान हुआ।

नाथ सिद्धों ने जहाँ–जहाँ तपस्या साधना की, वहाँ–वहाँ उनके आसन, मढ़िया, मठ स्थापित हुए। वे तीर्थ बन गए।

बड़े–बड़े राजा–महाराजाओं ने नाथ पंथ के प्रति आस्था जताई और नाथों को मान दिया। जब –जब भी राजा–महाराजाओं पर संकट आया, वे नाथ–सिद्धों की शरण में गए। उनसे खूब प्रार्थना कर समाधान माँगा। खूब दान, रूतबा और मान–सम्मान दिया। सिद्ध–नाथों ने भी उन्हें समय–समय पर परामर्श देकर उन्हें समाधान दिया।

सातों द्वीपों और नौ खण्डों में नाथपंथ का यश विस्तारित है। सद्‌गुरु गोरखनाथ की यश पताका सर्वत्र फहरा रही है। जिन–जिन नाथों ने सत्य का त्याग किया और पंथ के ज्ञान से भटक गए। उनकी दुर्दशा हुई। वे ग्रामशूकर और श्वान की भाँति दर–दर भटककर अपमानित हो रहे हैं।

नाथपंथ तो नदी किनारे की दूब की तरह है। जिस प्रकार दूब को दिन भर गायें और भेड़ें खूब चरती हैं। किन्तु अगली प्रभात में फिर वह खूब हो जाती है। उसकी जड़े

खूब गहरी होती है। वह कैसे सूख सकती है।

जब तक सूर्य और चन्द्रमा कायम हैं, जब तक शेष के शीश पर धरती सुरक्षित है, तब तक सतगुरु गोरखनाथ अमर रहेंगे। उनका पंथ भी अमर रहेगा।

(टीप– यह अंतिम साखी परम्परागत गाथाकार लोक नायकों, लोक–देवताओं के यश में लिखना है।)

## गोरखनाथ की लोकवाणी

### सतगुरु

*जोगी एसो ज्ञान विचारो, जण में झलमल जोत उजारो।।*
*जठे जोग वठे भोग नी व्यापे, साँच गुरु निरधारो।*
*तन–मन–इन्दी कबजे राखो, सतगुरु होय सहारो।*
*काल–जंजाल मिटे रे अवधू, तप करि होवे सूरो।*
*भीतर जग उजियारो दीसे, जो गुरु पावे पूरो।।*
*पंच तंत्र री काय पींजरा, भीतर बैठ्यो सूवा।*
*सतगुरु मिल्याँ भव बंध छूटें, नीतर सूवा मूवा।।*
*चेला मूरख गुरु अधूरा, दोनोइ डूबें गहरा।*
*गोरख कहे सुणो रे अवधू, सत रा राखो पेहरा।।*

– गोरख कहते हैं– हे जोगी! ऐसा ज्ञान प्राप्त करो, जिससे तुम्हारे भीतर एक प्रकाश प्रकट हो जाय। पूरा अंतर्मन जगमगा उठे। अज्ञान का तमस समाप्त हो जाये। जहाँ जोग का प्रभाव होता है, वहाँ भोग नहीं पनप सकता, ऐसा सद्‌गुरु ने कहा है। सच्चे योग साधन के लिए अपनी समस्त इन्द्रियों को कब्जे में रखना होगा सद्‌गुरु अवश्य सहाय होंगे। योग साधना से काल का जंजाल मिट जायेगा। मृत्यु भय से मुक्ति मिल जाएगी। निर्भयता आने से शौर्य जागृत हो जायेगा। यदि सद्‌गरु पूरा मिल जाय, तब गुरु कृपा से भीतरी जगत में ज्ञान का सूर्य जगमगा उठेगा। अन्तर्मन ज्योतिर्मय हो जाएगा। यह तन रूपी पिंजरा पाँच तत्त्वों से बना है। उसमें जीव रूपी तोता बैठा हुआ है। यदि सद्‌गुरु मिल जाय तो इसकी मुक्ति सम्भव है। यह भवबंधन से मुक्त हो जाएगा। अन्यथा भीतर ही भीतर छटपटाता रहेगा। वही मृत्यु को प्राप्त होकर आवागमन के फेर में पड़ा रहेगा। यदि शिष्य मूर्ख हो और गुरु भी अपूर्ण हो, तब दोनों ही भवसागर में डूब मरेंगे।

गोरख कहते हैं– अरे अवधूतों! सुनो, सदा सत्य का पहरा रखो। सत्य ही तुम्हारी रक्षा कर सकेगा।

**एक–अनंत एकरूपा**

*एकै बीच अनंतो जाणो, अनंता बीचे एका,*
*एकै अनंत उपाया।*
*एकै –अनंत रा दरसन होवे, तद अनंत एक बीच समाया।।*
*ज्युँ जल कुंभ में कुंभमय जल हे, कोई केह नहीं पाया।*
*जल भरयो कुंभ सागर डूबे, जल बिच नीर समाया।*
*जल ती बूँद–बूँद ती जल हे, जल ती बूँद दिखाया।*
*जद जा बूँद मिले जल भीतर, एक रूप एक माया।।*
*एकै राची सृष्टि अनंती, एकै सृष्टि एक रूपा।*
*एकै ब्रह्म एकै सृष्टि, दोनोई एक सरूपा।।*
*एकै साँच तिन सृष्टि साँची, फरको कसतर होवे।*
*दोनोई ने एक कर द्रस्टे, एकै रा दरसन होवे।*
*अनाहद नाद बिंद हथौड़ो, रवि ससि साँसा पवना।*
*मूल दाबि द्रढ़ आसन बैठ्याँ, मीठे आवन गवना।।*
*सहज सवारी पवना करताँ, लय लगाम द्रढ़ राखो।*
*चेतन असवार ग्यान गुरु थापो, अन सब परमा नाखो।।*
*तिल की ओट एक 'हंपायो', सदगुरु मारग देवे।*
*गोरख कहे सुणो अवधूता, सहज समाधी रेहवे।।*

एक ब्रह्म और अनंत सृष्टि एक ही स्वरूप है। एक ब्रह्म के बीच में अनंत सृष्टि समाहित है। इसी प्रकार अनंत में ब्रह्म समाहित है। जब हम ब्रह्म और उसकी सृष्टि सृजन को एकाकार करके देखेंगे, तब यह प्रतीत हो जायेगा कि दोनों एक दूसरे में समाहित हुए हैं। सृष्टि के कण–कण में उसका सृजनहार परब्रह्म विराजित है।

जिस प्रकार कुंभ में जल है या जलमय कुंभ है, यह निर्णय करना कठिन हो जाता है। जब जलपूरित कुंभ सागर में समा जाता है, तब दोनों एकाकार हो जाते है। बूँद की उत्पत्ति सागर से है और जल से ही उसका अस्तित्त्व है, किन्तु वह पृथक दिखती है। जब बूँद जल में मिल जाता है, तब बूँद का अस्तित्त्व मिट कर जल का रूप हो जाता है।

यह सृष्टि एक ब्रह्म ने ही रची है। सृष्टि एक रूप ही है। इसलिये सृष्टि (जगत) में ब्रह्म और ब्रह्म में सृष्टि समाहित है। दोनों एक स्वरूप है। हमारी दृष्टि द्वय है। यदि हम ब्रह्म और जगत को एक मानकर देखें, तब हमें पता लगेगा कि दोनों एक ही है। तब हमें एक ब्रह्म के दर्शन हो जायेंगे।

अनहद नाद है बिन्दु हथौड़ा है। उसी से नाद वादित होता है। इसी बिन्दु से सृष्टि का सृजन होता है। रवि–ससि (सूर्य–चन्द्रमा), इड़ा–पिंगला और साँसों को साधो। इड़ा–पिंगला और सुषुम्ना की साधना से तथा मूलचक्र को दाबकर दृढ़ आसन लगाकर बैठो। तब सहज समाधि लगेगी। आवागमन मिट जाएगा। पवन (साँस–उसाँस, आरोह–अवरोह) पर अनुशासित ढंग से साधना करने पर सहज भाव से पवन रूपी अश्व पर लय की लगाम लगाकर दृढ़ता कायम करो। वह एक (ब्रह्म) तिल की ओट में स्थित है, छुप रहा है। सद्गुरु मार्ग प्रशस्त करेंगे। गोरख कहते हैं– हे अवधूतों! सहज समाधि में रहकर सत्य रूपी ब्रह्म की साधना करो।

परिशिष्ट– दो

# मध्ययुग में गोरखनाथ

इसी कृति में एक गाथा संकलित है, जो कहती है– 'गोरख तो जुग–जुग हुए' कितनी भी लम्बी आयु क्यों न हो। युग–युगांतर तक तो कोई रह नही सकता। न राम रहे, न कृष्ण, न गौतम बुद्ध, न कबीर। गोरख भी नहीं रहे।

प्रत्येक युग में कई प्रकार के नामधारी गोरख रहे। यह सत्य है। एक सुगरे गोरख दूसरे नुगरे गोरख। एक यशस्वी और तपस्वी गोरख जिन्हें लोक ने सिर आंखों पर बैठाया। खूब मान–सम्मान दिया। दूसरे कपटी–छली, अहंकारी गोरख जिन्हें अन्ततः लोक में अपमानित होना पड़ा। लोक ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। अमान्य कर दिया। परवीन जोगी इसी श्रेणी के गोरख माने जा सकते हैं।

यह गाथा अन्यत्र भी कही जाती है। मेरे ही ग्रंथ 'सीता सुलक्षणी' में भी यह गाथा संकलित है। तनिक पाठ भेद के साथ लोक में ऐसा परिवर्तन स्वाभाविक है। यहाँ यह गोरख गाथा इस आशय से संकलित है, जिससे 'जुग–जुग में गोरख हुए' का स्पष्टीकरण किया जा सके–

*हात जोड़ वंदन करुँ पारवताँ रे पूत।।1।।*
*सरसत पूजूँ नेम ती, लुर–लुर ने परनाम।*
*सतगुरु सदमत देवजो, होवे पूरन काम।।2।।*
*सती सीता चरणा लगूँ, पीपा जी रे धोग।*
*भूल चूक होवे नहीं, मीटें रोग अर सोग।।3।।*
*वचन लिखूँ परवीन रा, कनफड़ जोगी एक।*
*पीपा रे संवाद में, सीता राखें टेक।।4।।*

रामानंद रा सिस्य हा, कबिरा रा गुरु भाय।
बारह गुरुभाइयां कहूँ, हगरा राम रजाय।।5।।
सैन भगत रविदास का, संग सगाती खास।।
संत संगत कर संग चलें, हृदय राम रो वास।।6।।
सीता सतवंती रही, सती साध्वी संग।
परम विदूसी तपस्वनी, भिजी राम रे रंग।।7।।
गाम–गाम को डोलते, करताँ नाम उजास।
सत्त तत् उपदेसता, राम कुरां री आस।।8।।
एक दनाँ जा पौंच्या, ठोठाती रे गाम।
सिस्याँ संग कर्‌यो वठे, मंदर हाम मुकाम।।9।।
कनफोड़ो जोगी रह्‌यो, परवीन नाथ थो नाम।
अलख–अलख उच्चारतो, आयो सतसंग धाम।।10।।
जग में खुद कहते फिरे, गौरख रो औतार।
काम क्रौध हिरदै भर्‌या, खूब भर्‌यो हंकार।।11।।
सिंगी सेली धारयाँ, चिमटो लिया हाथ।
जटाजूट माथे बंध्या, त्रिपुंड तिलक ललाट।।12।।
अलख–अलख हाको करे, वेंडा ज्यूँ भमताय।
धम्म–धम्म अडगी चालणी, धरती ने धूजाय।।13।।

× × ×

वोह उदंड जोगी कनफोड़ो, तंत्र–मंत्र करे अखोड़ो।।1।।
जोगीसर परवीन कहातो। चमतकार को धाम चलातो।।2।।
पीपा जी रो सुणि परभावा। मदमयो पीपा तहं आवा।।3।।
तहाँ पउँच अति ही बौराई। अलख–अलख री हाँक लगाई।।4।।
पीपा जी अति आदर कीयो। राम उच्चरि कै उत्तर दीयो।।5।।
नाथ कह्‌यो क्या जपते रामा। सिव बिन नाई मिले सुखधामा।।6।।
पीपा कह्‌यो नाथ सुण स्वामी। सरवग्य राम हे अन्तरजामी।।7।।
कहे नाथ भगत सुण भोला। सिव–सिव बिना मटे नहिं झोला।।8।।
सीता सुण नाथ रो कह्‌यो। बेढ़ब सुण गयो न रह्‌यो।।9।।
हात जोड़ बोली सुणनाथा। जड़ जेसी क्यूँ केवो भाखा।।10।।
राम अने सिव भेद न जानूँ। राम रूप में सिव पेहचनाऊँ।।11।।
राम अने सिव एक समाना। ऐसा मरम आप नहीं जाना।।12।।

*तुरत जाओ सद्‌गुरु रे सरना। सीस नमाओ गुरु रे चरना।।13।।*
*सद्‌गुरु भेद मिटावण हारा। क्यूँ फिरि रह्या हो मारा मारा।।14।।*
*नाथ कह्यो सुण सीता नारी। नरक गमन री करो तियारी।।15।।*
*भगत संग भगतण रो वासो। दोई होय भोग रो दासो।।16।।*
*सीता कहे सुण नाथ स्वामी। पीपा संत गणो निष्कामी।।17।।*
*नाथ कहे तुम सुणो साधणी। राम राम री खोल बाँधणी।।18।।*
*राम एक मूरत रो नामो। मनुज रूप हे थारो रामो।।19।।*
*आम जुगत बिन मुगति नाहीं। गोरखनाथ याऽज बतावहीं।।20।।*
*पीपा कहे सुनो हो जोगी। राम नाम बिन जनम बियोगी।।21।।*
*सीता कहें राम सरवज्ञो। कण–कण में राम ही पग्यो।।22।।*
*नाथ कहे हे साधणी नारी। राम रूप री कहे निरधारी।।23।।*
*सीता कहे सुणो हे नाथा। सहजाँ कहूँ सबद री गाथा।।24।।*
*एक राम दसरथ रो बेटो। एक राम जगत में लेटो।।25।।*
*एक राम रो सकल पसारो। एक राम अग–जग ती न्यारो।।26।।*
*भीतर झाँख निहारो नाथा। भीतर दिसे राम रो माथा।।27।।*
*नाथ कहे थें राम न छोड़ो। सिव संकर ती रिस्तो जोड़ो।।28।।*
*सिव–सिव कह्याँ निर्भय होओ। सिव री रगसा चेनती सोओ।।29।।*
*पीपा कह्यो हे नाथ मूढ़ मति। राम नाम बिन होय नहीं गति।।30।।*
*जुगति जोग राम रे सरना। राम रखैयो कण ती डरना।।31।।*
*गोरख कहे सुण निर्गुण बानी। जण ती होय मान री हानी।।32।।*
*नाम रूप तुम जाणे माया। जोग बिना काल जिव खाया।।33।।*
*पीपा कहे सुण जोग विधाता। राम नाम बिन काल ले जाता।।34।।*
*जोग जुगत क्रिया करतूता। मन संकल्प सुनो अवधूता।।35।।*
*जण ने नाम सबद उर धारा। वणे होय अवस भव पारा।।36।।*
*गोरख कहे नहीं करी समाधी। जनम–मरण नहीं छूटे व्याधी।।37।।*
*पीपा तुम कलपित कह दीना। निज आतम तुमने नहीं चीना।।38।।*
*मुख ती राम करत उच्चारा। देख्याँ बिन नहीं है निरधारा।।39।।*
*सीता कहे सुणो खट करमी। नहीं तुम विया सबद रा मरमी।।40।।*
*राम नाम री ताड़ी लाओ। भीतर अहणद नाद जगाओ।*
*इंड़ा–पिंगला खुद जग जावें। सुषमन अमरत रस बरसावे।।41।।*
*सिद्धि पाय सिव नहीं लग पाओ। बिरथा अलखरी हाँक लगाओ।।42।।*
*पीपा कहे सुणो हे नाथा। सरवग राम सो सरवस हाथा।।43।।*

षट् समाध साध भये सिद्धा। राम नाम बिन काल ती बिद्धा।।44।।
षट् समाध प्रकृति री झाईं। पीपा कह सुण नाथ गुसाई।।45।।
गोरख कहे रे सुण अज्ञानी। जोग गति कोई बिरला जानी।।46।।
कानफड़ ने जोग सिखाऊँ। चौरासी रो फंद छुड़ाऊँ।।47।।
सीता कहे सुणो अभमानी। भगती री गति नहीं तुम जानी।।48।।
पीपा कह्यो तज गोरख धंधो, थारे पड़ो हे मोह रो फंदो।।49।।
तंतर मंतर जुगत जुड़ावे। सीधा मनखा ने बेहकावे।।50।।
भयवस कर तू करे लूटणी। थारे हिरदे कपचट चूरणी।।51।।
चिलम पिये मद को मदकावे। मांस मैल रो भोजन खावे।।52।।
गुरु हमारो रामानंदा। चौरासी रो काटे फंदा।।53।।
दास कबीर हमरे गुरु भाई। राम नाम री जुगत बताई।।54।।
सैन भगत रविदास कहावे। भटकयाँ ने सद् मारग लावे।।55।।
सीता सदी सदा सत धरमा। मरजादा राखे सतकरमा।।56।।
हम हैं राम भगत के दासा। वाद विवाद ते रहें उदासा।।57।।
सीता कहें क्युँ अलख उचारो। अलख रूप नहीं जाणो पारो।।58।।
अलख लखे सो भवतर जावे। हरसित मन परमानंद पावे।।59।।
अलख सबद रो भेद नी जाणो। बेअरथाँ रो सबद बखाणो।।60।।
नाथ अलख रो अरथ वताओ। अरथ वता फेर मरम वताओ।।61।।
कह्यो गोरख कह दीना। अलख मंत्र मच्छंदर दीना।।62।।
अलख कह्याँ सिव राजी रहवे। आद गुरु मच्छंदर दीना।।63।।
सीता कहयो सुणो हे नाथा। अलख लखूँ नमाता माथा।।64।।
अगम अगोचर निरगुण कहिए। लखयो नहीं सो अलखो कहिए।।65।।
नहीं द्रग नहीं कान नहीं नासा। हाथा पाँव नहीं सासा–वासा।।66।।
करता नहीं करम को कारक जनम–मरण रो अलखो धारक।।67।।
नाथ कह्यों तू देख तमासा। परगट करुँ अगन परगासा।।68।।
अगन देखताँ तू डर जावे। प्राण रगस नहीं मारग पावे।।69।।
पीपा कह्यो रे अधम अघोरी। खीज भर्‌यो क्युँ होवे खोरी।।70।।
क्युँ पंथ को नाम डुबाये। कपट कुमति हरदा में लाखों।।71।।
क्युँ गोरख रो जस वटरावे। जोगी वेताँ पाप कमावे।।72।।
गोरख रो जस जोगी गावे। आदिनाथ रो जस बरदावे।।73।।
नाथ पंथ धर्मां रो सारो। गोरख ने ऐसो निरधारो।।74।।
चमतकार तब नाथ दिखाया। पीपा–सीता नहीं घबराया।।75।।

*अगनी वरसा नाथ कराई। सीता ने खोरा में सिमराई।।76।।*
*पीपे कह्यो रे मूरख नाथा। सद्‌गुरु रो हे पूरो हाथा।।77।।*
*खूब रचाई माया जोगी। पीपा ने नमन कर भोगी।।78।।*
*पड़पच करत नाथ तब हारा। रगसा करे राम रणकारा।।79।।*
*पीपा सीतल सबद सुणावा। बारक जेसा रूप दिखावा।।80।।*
*सीता धर्‌यो रूप दुरगा रो। बिसहत्थी न्हार सुरगा रो।।81।।*
*नाथ देख–देख हैरानो। पावे नहीं कोई ठोर ठिकानो।।82।।*
*राम नाम री साँची भगती। तंत्र–मंत्र में नी हे सगती।।83।।*
*अलख लखूँ और सीस नमाऊँ। राम–सिवाँ ने हिरदै लाऊँ।।84।।*
*कोई भेद न जाणो नाथा। सगुण निगुण राम रघुनाथा।।85।।*
*कहत नाथ भगत तू पूरा। समदृष्टि तई गुण्यो हजूरा।।86।।*
*सीता सती साध्वी पूरी। सतवंती समद्रस्टी सूरी।।87।।*
*ज्ञानवान देखी नहीं ऐसी। साध संगनी देखी जैसी।।88।।*
*धन्न–धन्न कह नाथ पुकारा। पीपा भगत राम रा प्यारा।।89।।*
*राम नाम जिन उर में धारा। तिनरी साय करे करतारा।।90।।*
*एसी सहजी सीख उर धारे। उनको काल कबहूँ नहीं मारे।।91।।*
*सीता सतवंती सतधारी। मनख रूप धर्‌यो औतारी।।92।।*
*धन्न–धन्न जोगी कहे, पीपा भगत सुजान।*
*राम–नाम उर धारताँ, लीयो आतम ग्यान।।93।।*

**भावार्थ**

मैं हाथ जोड़कर पार्वती पुत्र गणेश का वंदन करता हूँ। मैं हनुमान जी का नमन करता हूँ जो रामजी के दूत हैं। मैं नियमानुसार विधि–विधान से सरस्वती की पूजा करता हूँ। उन्हें बार–बार प्रणाम करता हूँ। हे सब गुरुदेव! आप मुझे सद्‌बुद्धि देना, जिससे मेरे सब काम पूरे हो जाएँ। मैं सती सीता जी के चरणों में तथा पीपाजी के चरणों में धोक लगाता हूँ। मुझसे कोई भूल–चूक नहीं हो तथा मेरे समस्त रोग–शोक समाप्त हो जाएँ।

मैं कनफाड़े नाथ जोगी परवीनाथ और संत पीपा जी का संवाद लिख रहा हूँ। हे सीता जी! आप मेरी टेक रखना। संत पीपा जी रामानंदजी के शिष्य थे। कबीर साहब के वे गुरुभाई थे, वे रामानंदजी के बारह प्रधान शिष्यों में विशेष थे। राम की उन पर विशेष कृपा थी।

सैन भक्त और रविदास के वे खास सत्संगी थे। वे सत्संग करते हुए कई बार साथ रहे। इन सबके हृदय में राम का निवास था। संत पीपा जी गाव–गाँव में भ्रमण करते थे और नाम का प्रकाश फैलाते थे। सत्य के तध्व का उपदेश देते थे और सदा अपने सद्‌गुरु का ध्यान मन में बनाए रखते थे। उन्हीं से वे आशा रखते थे। सती साध्वी सीताजी सदा उनके संग रहती थीं।

एक बार वे भ्रमण करते–करते ठाठोली गांव में जा पहुँचे। वहाँ अपने शिष्यों के साथ मंदिर के सामने मुकाम लगाया। तभी वहाँ एक कनफोड़ा जोगी आ पहुँचा, जिसका नाम परवीनाथ था। संतों के मुकाम पर आकर उसने जोर–जोर से अलख–अलख का घोष करना शुरू कर दिया।

वह जगत में स्वयं को गोरखनाथ का अवतार बतलाता था। उसके हृदय में काम, क्रोध, लालसा और अहंकार भरा हुआ था। सिर पर जटाजूट व भाल पर त्रिपुंड था। वह पागलों की तरह अलख–अलख की हाँक लगाकर धरती को कंपायमान कर रहा था।

उस अंचल में पीपा जी का प्रभाव सुनकर वह अहंकार के मद में मदमंत होकर वहाँ आया और भक्तों के बीच अलख–अलख की हांक लगाकर अपना प्रभाव जताने लगा।

पीपा जी ने उसे अत्यंत आदर से सत्कार और अलख के उत्तर में राम कहकर स्वागत किया। नाथ ने कहा– अरे! तुम राम–राम क्या जपते हो ? शिव के बिना सुख प्राप्त नहीं हो सकता। पीपा जी ने कहा– अरे नाथजी! सुनो। राम तो सर्वज्ञ है। वे अन्तर्यामी हैं।

नाथ ने कहा– अरे भोले भगत सुनो! शिव–शिव कहे बिना जीवन के कष्ट दूर नहीं हो सकते।

सीताजी ने जब नाथ से ऐसे बेढ़ब वचन सुने, तब उनसे रहा नहीं गया। वे हाथ जोड़कर बोलीं–

हे नाथ जी! आप ऐसी जड़ भाषा क्यों कहते हो? राम और शिव में मैं कोई भेद नहीं मानती। मैं तो राम में ही शिव के दर्शन करती हूँ। राम और शिव एक ही हैं। यह मर्म आप नहीं जानते हैं। इसलिए आप तुरंत अपने गुरु के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर और उनकी शरण प्राप्त कर इस मर्म को जानो। सद्‌गुरु भेद–भ्रम को मिटाने वाले हैं। आप क्यों इधर–उधर भटक रहे हैं।

सीता जी की ऐसी उपदेशक बात नाथ को सहन नहीं हो पाई। उसने कहा–अरे सीता सुनो। तुम नर्क में जाने की तैयारी कर लो। यदि किसी भक्त के साथ भक्त का साथ रहता तो वे भोग के दास हो जाते हैं।

नाथ की बात सुनकर सीताजी ने कहा– हे स्वामी जी! सुनिए। संत पीपाजी निष्काम संत हैं। उन्होंने अपनी समस्त कामनाओं को अपने वश में निवास कर लिया है। आप उनकी चिंता छोड़कर स्वयं की चिंता करो। स्वयं का उद्धार करने के लिये राम–नाम का जाप करो।

सीताजी के वचन सुनकर नाथ ने क्रोधित होकर कहा– अरे साध्वी! तुम अपने ऊपर से राम नाम की खोल (आवरण) उतार फेंको और इस बंधन से मुक्त हो जाओ। अरे! राम तो एक मूर्ति का नाम है। तेरा राम तो मानव है। वह शिव कैसे हो सकता है। ओम् की साधना के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। ऐसा गोरखनाथजी ने कहा है।

नाथ की सीताजी के प्रति ऐसी वाणी सुनकर पीपाजी ने कहा– अरे जोगी! सुनो। राम नाम के बिना तो यह जीव विरही की भांति कल्पने लगता है।

इसी बात को सीताजी ने पुष्ट करते हुए कहा–'राम तो सर्वज्ञ हैं। कण–कण में व्याप्त हैं। मूर्ति में भी वे ही स्थित हैं।

तब नाथ ने कहा– अरे साधणी नारी (साध्वी)! तुम राम रूप की व्याख्या करो। सीताजी ने कहा– अरे नाथ जी सुनो! मैं आप को 'शब्द' की व्याख्या समझाती हूँ। राम तो अनेक रूपों में स्थित हैं। एक वे राम जो दशरथजी के पुत्र कहलाते हैं, वह भी उसी परमात्मा का अवतार रूप हैं। वह एक रामजी संसार में सर्वत्र व्याप्त हैं। एक वे राम जो सृष्टि के सर्जक हैं। एक वे राम जो संसार से पृथक हैं। सबसे न्यारी हैं। हे नाथ! आप अपने अन्तर्मन में झांककर देखो। भीतर राम का झलक दिख जाएगी।'

सीता की यह व्याख्या सुनकर नाथ ने कहा– तुम राम से संबंध तोड़कर शिव शंकर से संबंध बनाओ। शिव–शंकर से नाता जोड़कर शिव–शिव रटने से तुम निर्भय हो जाओगे और शिव की रक्षा में चैन की नींद सो सकोगे।'

तब पीपाजी ने कहा– हे मूढ़मति नाथ! राम के बिना गति नहीं है। योग साधना भी राम के ही शरण में संभव है। जब राम रक्षक हो, तब किससे डरना? फिर कैसा भय?

नाथ ने कहा– तू सुन! निर्गुण वाणी सुनने से, शिव–शिव उच्चारण से माया नष्ट हो जाती है। नाम तो केवल माया है। योग के बिना काल का भय नहीं मिटता।

पीपाजी ने कहा– अरे योग के विधाता योगी! सुनो– राम नाम के बिना काल भय रहता है। योग और साधना आदि तो आडम्बर पैदा करते हैं। मन का संकल्प समझो। हे अवधूत! राम नाम से ही निर्भयता आती है। जिसने भी अपने मन में राम नाम को धारण कर लिया, वह अवश्य ही भवसागर पार हो जाएगा।

तब नाथ ने कहा–जिसने समाधि नहीं लगाई, उसकी जन्म–मृत्यु की व्याधि नहीं मिट सकती। अरे पीपाजी! तुमने जो कहा है, वह मात्र कल्पना है। सत्य नहीं है, तुमने अपनी आत्मा को जाना ही नहीं है। मुख से राम के उच्चारण से कोई हित नहीं। बिना देखे–जाने कुछ भी निर्धारित नहीं हो सकता।

नाथ की ऐसी अनर्गल बातें सुनकर सीताजी ने कहा– अरे खटकर्मी! तुमने शब्द के मर्म को नहीं जाना है। समाधि लगाना है, तब राम नाम की लगाओ। राम नाम में तल्लीन हो जाना ही सच्ची समाधि है। अपने भीतर अनहद नाद जागृत करो। इड़ा–पिंगला स्वयं ही जाग जाएँगी तथा सुषुम्ना स्वयं ही अमृत बरसाने लगेगी। सिद्धियाँ पाकर शिव को नहीं लख (देख) सकते। आप व्यर्थ ही, अलख–अलख की हाँक लगाते फिरते हो। अलख को तो तुम जानते ही नहीं।

सीताजी की इस बात को पुष्ट करते हुए पीपाजी ने कहा– अरे नाथ! सुनो, सर्वज्ञ राम ही सारस्वत हैं। वे ही धारक–मारक व पारक (पालक) हैं।

षट् समाधि से सिद्ध तो हो सकते हैं, किन्तु काल से तो बंधे ही रहेंगे। षटसिद्धियाँ तो प्रकृति की ही छाया–माया है। हे नाथ! यह बात सदा स्मरण रहे।

सीता जी और पीपाजी के वचन सुनकर नाथ विचलित हो उठा। उसने कहा– 'अरे अज्ञानी! सुन, योग की गति कोई बिरला ही जान सकता है। तुम मेरे शिष्य बन जाओ। मैं तुम्हें कानफड़ा जोगी बनाकर योग की शिक्षा देता हूँ। तुम्हारा चौरासी का फंद मिटा दूँगा।

जोगी की बात सुनकर सीताजी ने कहा– अरे अहंकारी! तुम भक्ति का महत्त्व व मर्म नहीं जानते। तभी पीपाजी ने कहा– अरे नाथ! तू यह गोरखधंधा त्याग दे। तुझे मोह के फंदे से तभी मुक्ति मिल सकेगी। तू तंत्र–मंत्र द्वारा लोगों को बहकाकर लूटता फिरता है। तेरे मन में कपट के सिवा कुछ भी नहीं है। (शिव है न शंकर) लूटना–खसोटना ही तेरा धंधा है। इससे धन कमाकर तू चिलम पीता है और मदिर पान करता है तथा मांस भक्षण करता है।

हमारे गुरु तो रामानंद स्वामी है। वे ही हमारा चौरासी का फंदा काटेंगे।

संत महात्मा कबीरदास हमारे गुरुभाई हैं। उन्होंने हमें राम–नाम की युक्ति बताई है। सैन भक्त और रविदास हमारे संगी–संगाती है, वे भटकों को सुमार्ग दिखाते हैं।

सती सीताजी सत्य धर्म की पालनकर्ता हैं। वह सदा मर्यादा का पालन करते हुए सुकर्म करती हैं। हम तो राम भक्तों के दास हैं। वाद–विवाद से सदा दूर रहते हैं।

तभी सीताजी ने कहा– अरे जोगीराज! आप बार–बार अलख–अलख का उच्चार करते हो। आप तो अलख की अपारता तक नहीं जानते। अरे जोगी! जो अलख को लख लेता है, (देख लेता है, जान–समझ लेता है) वह तो भवसागर से पार उतर जाता है। हर्षित हृदय रहकर परमानंदजी को प्राप्त कर लेता है। अरे! आप तो अलख शब्द का भेद तक नहीं जानते। बिना जाने केवल व्यर्थ में शब्द का उच्चारण भर कर रहते हो। सीताजी की बात सुनकर नाथ ने कहा 'अलख' शब्द गोरख ने दिया, मच्छंदरनाथ ने यह शब्द उन्हें दिया। अलख कहने से शिव प्रसन्न हो जाते हैं। ऐसा आदिगुरु मच्छंदरनाथ ने कहा है। नाथ की यह बात सुनकर सीताजी ने कहा– अरे नाथ! सुनो, मैं 'अलख' को शीश नमाकर प्रणाम करती हूँ और कहती हूँ। अगम–अगोचर तो निर्गुण है, जिसे देखा नहीं, उसे अलख ही कहेंगे। उसके न आँखें हैं न कान हैं। न नाक है, न हाथ–पाँव है और न ही वह साँस लेता है, न सुगंध लेता है। इसके अतिरिक्त वह कर्ता भी नहीं है, कर्म से मुक्त होकर भी कर्म का धारक है। वह कर्म का कारण (कारक) भी है। वही अलख जन्म, मरण और पालन का भी धारक है।'

सीताजी की ऐसी व्याख्या सुनकर नाथ खीज उठा। उसने कहा– ठीक है। तू अब सावधान हो जा और मेरा खेल (तमाशा) देख। मैं अग्नि प्रकट करता हूँ। तू भयभीत हो उठेगी और स्वयं की रक्षा भी नहीं कर पाएगी। तुझे अपनी रक्षा का कोई मार्ग नहीं सूझेगा। उस नाथ की ऐसी अहंकार भरी बात सुनकर पीपाजी ने कहा कि– अरे अघोरी! तू ऐसी खीज भरी बातें क्यों करता है? अरे मूर्खनाथ! तू क्यों नाथपंथ का नाम डूबोता है। तेरे भीतर तो कपट और कुमति का वास है। अरे! तू तो गोरख और नाथ पंथ को भ्रष्ट कर रहा है। तभी उस नाथ जोगी परवीन ने अपना चमत्कार दिखाकर अग्नि प्रकट की। उसके उस चमत्कार से सीताजी और पीपाजी तनिक भी नहीं घबराए। नाथ ने जो अग्नि वर्षा करवाई, उसे सीता सती ने अपने (आँचल) में समेट लिया।

पीपाजी ने कहा– अरे मूर्ख नाथ! हम पर सद्गुरु की पूरी कृपा है। उनका वरदहस्त हमारे शीश पर है।

उस खीज भरे जोगी ने अपनी लीला खूब दिखाई। पीपा जी ने नमन करके उस लीला को सहन व स्वीकार लिया। जब वह नाथ प्रपंच करते–करते हार गया, तब उसने

कहा– मेरी रक्षा करो। उसने राम–राम का उच्चारण शुरू कर दिया। पीपाजी ने शीतल मधुर वाणी से कहा– 'राम' सबकी रक्षा करते हैं। आपकी भी करेंगे। उन्होंने बालक रूप धारण कर लिया। यह संकेत दिया कि हम तो बालक स्वभाव के होकर राम व सद्‌गुरु की रक्षा में है। हमारा तो वही रक्षक है। जिस प्रकार माता अपने बालक की रक्षा करती है, उसी प्रकार सद्‌गुरु रामानंदजी व परमेश्वर राम प्रभु हमारी रक्षा करते हैं। सती सीता ने बीस भुजा दुर्गा का रूप धारण कर नाथ जोगी को सिंहवाहिनी का रूप दिखाकर धन्य कर दिया। पीपाजी का बालक रूप देखकर व सीताजी का सिंह वाहनी बीस भुजी दुर्गा का रूप देखकर नाथ अचम्भे में पड़कर व्याकुल हो उठा। उसे कोई ठोर–ठिकाना नहीं दिख रहा था। वह न तो वहाँ ठहर सका और न वहाँ से जा पा रहा था।

उसने हाथ जोड़कर सीताजी व पीपाजी की शरण में आकर कहा– 'राम नाम की भक्ति ही सच्ची भक्ति है । तंत्र–मंत्र में कोई शक्ति नहीं है। मैं अलख का दर्शन कर पा रहा हूँ। राम और शिव को मैं अपने हृदय में धारण करता हूँ।

पीपाजी ने कहा– हे नाथ! दोनों में कोई भेद मत जानो। सद्‌गुण और निर्गुण राम रघुनाथ ही हैं। सगुण और निर्गुण का भेद जान जाओ। राम और शिव भी एक ही जानो।

नाथ ने कहा– अरे हजूर (स्वामी)! तू पूरा भक्त है। तू समदृष्टि वाला महात्मा है। सीता सती पूरी साध्वी हैं। वह भी सतवंती व समदृष्टि सम्पन्न हैं। वह शूर वीरांगना हैं। जिसने कामनाओं को जीत लिया है। षड्‌रिपुओं को पराजित कर दिया है। उसे ही सच्चा शूरवीर कहा जाता है। वही जितेन्द्रीय भी कहलाता है। मैंने ऐसी प्रज्ञावान साध्वी नहीं देखी। आपकी ऐसी संगिनी है। आप धन्य हैं।

नाथ ने धन्य–धन्य कहकर कहा– पीपाजी आप राम के प्रिय भक्त हैं। जिसने अपने हृदय में राम का नाम धारण कर लिया है, उसकी रक्षा स्वयं कर्तार करते हैं।

ऐसी सहजी सीख जो अपने हृदय में धारण कर लेता है, उसका काल भय समाप्त हो जाता हैं। वह कालजयी हो जाता है। सीताजी सतवंती और सत्य धारक हैं। वे मनुष्य रूप में कोई अवतारी शक्ति हैं।

धन्य–धन्य कर उस जोगी ने कहा– पीपाजी! आप ज्ञान पुरुष हैं। उसने अपने हृदय में राम–नाम को धारण किया और आत्मज्ञान प्राप्त कर धन्य हो गया।

मध्य युग में ऐसे अनेक संदर्भ हैं, जब हम गोरख नामधारी नाथों को लोक चर्चा में सुनते हैं। जैसा कि कहा भी जा चुका है कि– 'गोरख तो जुग–जुग विया' प्रत्येक

युग में गोरख हुए। कभी लोक कल्याणी भाव लेकर, कभी लोक अकल्याणी अथवा मिथ्यावादी भाव लेकर। लोक कल्याणी भाव वाले नाथों–सिद्धों को लोक ने गोरख के समान मान दिया, सत्कार किया और उन्हें लोक स्वीकृति भी प्रदान की। इसी प्रकार जितने अहंकारी, छली और लोक में मिथ्या भाव प्रदर्शन करने वाले नाथ–जोगी हुए उनकी भर्त्सना भी की। उन्हें अपमान भी सहना पड़ा। लोक ने ऐसे मिथ्यावादी तथा छद्म नामधारी गोरखों को अस्वीकार कर दिया।

इस प्रकार नाथ पंथ की स्वीकृति–अस्वीकृति का निर्णय लोक परिस्थितियों के मान से करता चला आ रहा है।

**संदर्भ–**


1. नाथ पंथ और निर्गुण संत परम्परा– डॉ. कोमलसिंह सोलंकी।
2. सिद्ध साहित्य–डॉ. धर्मवीर भारतीय, पृ. 105
3. नाथ पंथ (सम्प्रदाय)– डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी।
4. मध्यकालीन धर्म साधना– डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी।
5. गोरख बानी– डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थवाल।
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ. रामकुमार वर्मा।
7. नाथ इतिहास–प्रकाशनाथ चौहान।
8. गोरखनाथ (महिमा एवं उपदेश)– प्रकाशनाथ शास्त्री।
9. संत पीपाजी एवं भक्ति आंदोलन– डॉ. पूरन सहगल।
10. संत सैन भगत– डॉ. पूरन सहगल।
11. कबीर ग्रंथावली– श्याम सुन्दरदास, बी.ए.।
12. सद्‌गुरु कबीर की साखी– महाराज राघवदासजी
13. मालवा के संत भक्त–डॉ. पूरन सहगल।
14. भीली लोक माताएँ–डॉ. पूरन सहगल।
15. उत्तरी भारत की संत परम्परा– पंडित परशुराम चतुर्वेदी।
16. श्री भक्तमाल–नाभादास कृत।
17. गौतम बुद्ध–बौद्ध कालीन धर्म एवं शिक्षा– डॉ. अमित जोशी, लोटखेड़ी, भानपुरा ।
18 लोह पट्टण पड़दाँ– डॉ. पूरन सहगल।
19. शोध समवेत, सम्पादक– डॉ. श्यामसुन्दर निगम, कावेरी शोध संस्थान, उज्जैन
20. मेरे शीघ्र प्रकाशित होने को तत्पर रामकथा आधारित उपन्यास 'मर्यादा' में गोरख और मछंदरनाथ की जिज्ञासा से कथा प्रारम्भ होती है। जिस प्रकार रामचरित्र मानस में माता पार्वती जिज्ञासु हैं और शिवजी जिज्ञासा शांत करते हैं। उसी प्रकार मर्यादा में गोरख जिज्ञासु हैं और मछंदरनाथ जिज्ञासा शांत करते हैं। दोनों का संवाद उपन्यास में एकाधिक बार होता है। यह लोक उपन्यास आदिवासी लोक कथाओं और गीतों पर आधारित हैं। गोरखनाथ और मछंदरनाथ के प्रति आस्था का यह एक बहुत बड़ा प्रमाण है। लोक में नाथपंथ की स्वीकृति का यह सम्भवतः पहला उदाहरण है।